मासिक पत्र ।

बाबूगोपालराम गहमरनिवासी द्वारासम्पादित

नागरी भवन जैपुर से प्रकाशित ।

भाग १ | जैपुर श्रावण सं० १९५९ वि० JAIPUR–August 1902. | अङ्क १

मुद्रित विषय ।

यूनियन प्रेस कम्पनी लिमिटेड—जबलपुर में मुद्रित ।

नियमावली।

१—"समालोचक" हर अङ्गरेजी महीने के दूसरे सप्ताह में निकला करेगा।

२—दाम इसका सालाना १॥) है। साल भर से कमका कोई ग्राहक न होसकेगा और ≈) का टिकट भेजे बिना नमूना भी नहीं पासकेगा।

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी। कोई विज्ञापन बिना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा।

४—आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी। किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी। जिस वस्तु की समालोचना छापी जायगी उसकी न्याय और युक्ति पूर्ण पक्षपात शून्य समालोचना छापी जायगी।

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा। जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होगी उसके प्रचार का उचित उद्योग किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसापत्र व पुरस्कार प्रदानादि से उत्साहित किया जायगा।

६—जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होगी वही छापी जायगी। समालोचक की छपी समालाचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझना चाहिये।

७—समालोचक के लिये लेख, समाचार पत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाज़ीपूर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र विज्ञापन के मामिले की चिट्ठी पत्री सब समालोचक के मेनेजर मिस्टर जैमवैद्य जौहरी बाज़ार जैपुर के पते पर भेजना चाहिये।

समालोचक।

आगमन।

अभ्यागत का परिचय पहले ही देना चाहिये, लेकिन पहले आगमन में जो परिचय होगा उसकी बिसात ही क्या? उतना परिचय तो नाम ही से पढ़नेवालों को हो सकता है अधिक परिचय होते २ होगा। किन्तु इतना कह देना उचित है कि साधारणतः सब के मुख्य और गौण दो उद्देश्य होते हैं। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य समालोचना होगा उसके साथ साहित्य की आलोचना भी इस में रहा करेगी। अपने उद्देश्य साधन में समालोचक साध्यानुसार त्रुटि नहीं करेगा, लेकिन बहुधा देखा जाता है कि मनुष्य जो बनाना चाहता वा बनाता है प्रतिकूल स्रोत उसे तोड़ बहाता है। उस सर्व्व सिद्धिदाता मङ्गलमय भगवान से आरम्भ में यही चाहना है कि हज़ार प्रतिकूल स्रोत और विघ्नव्याघात में भी हम लोगों का सङ्कल्पित उद्देश्य स्थिर रहे।

समालोचना।

—०—

आजकल हिन्दी साहित्य में समालोचना का चर्चा चला है। हिन्दी प्रेमी, हिन्दी पाठक, हिन्दी ग्रन्थकार, और हिन्दी समाचार पत्र सम्पादक सब समालोचना के लिये झँखते पटकते हैं। हिन्दी के प्रेमी हिन्दी साहित्य में जघन्य, निन्दित सारहीन और अनहित-कारी पुस्तक और लेखों की बढ़ती देखकर कहते हैं: हिन्दी में समालोचना का प्रचार हुए बिना साहित्य में कूड़ा कर्कट भरनेवाले लेखक और ग्रन्थकारों का दोष दूर न होगा। हिन्दी पाठक कोरे नाम और सारशून्य विज्ञापनों से पुस्तक मँगाने पर दाम खोकर कहते हैं, समालोचना का प्रचार होता, समालोचक नवविकसित ग्रन्थपुष्पों की सुगन्धि दुर्गन्धि वा उपकार अपकार का वर्णन अपनी नीर छीर विलगावनी लेखनी से करते रहते तो हम लोगों का दिन* और दाम बेकाम नहीं जाता। हिन्दी अच्छे ग्रन्थकार नाम के भूखे बुद्धि के छूछे अनुभव विहीन लेखक और ग्रन्थकार बनने की लालसा लादे हुए लोगों की धूम और चहल पहल में अपने उत्तम और उपयोगी उपदेश भरे पाण्डित्यपूर्ण पुस्तकों की दबती कुम्हलती दशा देखकर कहते हैं: आज हिन्दी में समालोचक और समा-लोचना का आदर होता तो इस तरह सुवर्ण, रत्न और जवाहिरात राख और कंकड़ पत्थर के तले दबकर लोप नहीं होते। हिन्दी समाचार पत्र सम्पादक उत्तम और कर्त्तव्यपरायण समाचार पत्रों की हीन दशा देखकर कहते हैं समालोचकों की चलती न होने से ही समाचार पत्रों का आदर हिन्दी जगत में नहीं बढ़ता।

सारांश यह कि समालोचना बिना हिन्दी की अतिहीन दशा है। अब साहित्य वाटिका में पड़ा कूड़ा कर्कट का ढेर अपने उदर से दूषित और अस्वास्थकर वाष्प फेंकने लगा है।

खुशी की बात है कि समालोचना की चाह अब हिन्दी की दुनिया में देखी जाती है। कुछ समाचार पत्रों के सम्पादक और लेखक समालोचना की ओर झुके हैं। लेकिन अभी वह दिन दूर है जब समालोचना पर हिन्दी प्रेमी और हिन्दी पाठकों की पूरी आस्था होगी और समालोचकों के भय से ग्रन्थकार अपनी लेखनी से जघन्य और अहितकर लेख उगलना बन्द करेंगे।

सब काम क्रमशः होता है। जो एकायक उन्नति की चोटी पर चढ़ बैठता है वह जल्दी गिर जाता है, जो सरपट दौड़ता और इधर उधर का ध्यान छोड़कर भागता है वह ठोकर खाकर खन्दक में गिरता है। जो आसपास देखकर नीचा ऊँचा विचार कर चलता है वह जल्दी धोखा नहीं खाता। इसी कारण जब हिन्दी साहित्य में समालोचना का कुछ चर्चा होने लगा है तब भरोसा है एक दिन समालोचना और समालोचकों का उचित सन्मान भी होगा.

इन दिनों दो तरह की समालोचना प्रचलित हैं। समालोचना और संक्षिप्त समालोचना। संक्षिप्त समालोचना एक पेराग्राफ़ होता है। इस में संक्षेप रूप से दो चार पंक्ति में पुस्तक वा प्रवन्ध पर मतामत प्रकाश होता है। और दूसरी साधारणतः कई पृष्ठ तक की होने पर भी पुस्तक के गुणागुण से लेखक पर अधिक निर्भर करती है।

एक बात में पुस्तक वा प्रबन्ध को अच्छा या बुरा कह देना समालोचना नहीं है। इस में कुछ वैसी दक्षता वा पाण्डित्य का काम नहीं पड़ता। लगातार पानी बरसता देखकर आकाश को

मेघाच्छन्न कहना वा उज्ज्वल सूर्य्यकिरण देखकर सवेरा हुआ है बतलाना समालोचक की सूक्ष्मबुद्धि वा विचक्षना का कुछ विशेष परिचय नहीं देता।

व्यक्तिगत मतामत (Personal Opinion) अथवा "पोथी मुझे कैसी जँची" इसी आधार पर समालोचना करना कुछ मूल्यवान नहीं होता। क्योंकि यह बात किसी एक के ही पसन्द ना पसन्द पर होती है। उस में एक देश दर्शिता और सङ्कीर्णता की छाप लग जाती है। और बहुधा सूर्य्यालोक प्रदीप्त मध्याह्न को समालोचक महाशय अपने तर्कजाल और तामसी वाक्यच्छटा से अन्धकार साबित करने जाकर उपहास उठाते हैं। और वही बढ़कर जब बात का बतङ्गड़ होता है तब समालोचना की दीवार लाँघकर समालोच्य लेखक और समालोचक गाली गलौज और कुवचन प्रहार के अखाड़े में जाकर दण्ड पेलने लगते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन बातों को पढ़सुनकर आनन्द उठाते है। उदाहरण के लिये बङ्ग साहित्य में ईश्वरचन्द्र गुप्त और गौरीकान्त भट्ट का संग्राम, रामप्रसाद और आजू गोसाईं का सवाल जबाब, राजा राममोहन राय और उनके समय के पण्डितों का वादविवाद कम नही है। इस के सिवाय सर्वोपरि सुसभ्य पाश्चात्य देश में सत्तरहवी सदी का मिल्टन और सालमेसियस (Salmasius) का जो वाक्युद्ध तथा छापे के अक्षरों में विद्वेष प्रगट हुआ था वह उल्लेख योग्य है।

उस समय और एक दल के लोग थे जो कुछ भी नूतनता नही सह सकते थे। मान्धाता के राज की प्राचीन प्रथा से पान का ज़रा चूना खस पड़ने पर भी कुशल नही था।

इङ्गलैण्ड की उस प्राचीन प्रथा के अन्धकूप से जानसन ने ही समालोचना को प्रकृत साहित्य के उपालोक में आनयन किया।

साहित्य पर प्रभूत प्रभाव, स्वाधीन और असीमज्ञान, और सूक्ष्म दृष्टि ने ही उस को समालोचना के काम में अग्रसर किया था। लेकिन उसकी समालोचना को भी व्यक्तिगत कुसंस्कार और सङ्कीर्ण मतामत के हाथ से रिहाई नहीं मिली। और सच बात यों कि इसी से समालोचक के कठोर दायित्व का अनुभव किया जाता है।

जानसन के बाद "एडिनबरा रिवियू" मुख्यतः इङ्गलैएड में समालोचक के सिंहासन पर बैठा था। उसकी मूल नीति यही थी कि एक अयोग्य लेखक सर्वसाधारण की आँख में धूल झोंककर साहित्य मन्दिर में प्रवेश करे इससे बहुप्रतिभा और क्षमतावान लेखक का अयथा निय्यातिन अच्छा है। इसके सिवाय वह उस समय के "ह्विग" नामी राजनैतिक दल का मुखपत्र था।

उसका फल यही हुआ कि जो पुस्तक समालोचकों को अच्छी नहीं लगती उसके निय्यातिन की सीमा नहीं रहती थी और जो पोथी उनको अच्छी लगी अथवा किसी ह्विग की लिखी हुई तो बस उसकी अयथा सुख्याति और अतिरञ्जित समालोचना होती थी। बस इस तरह अनुचित और क्रमान्वय अत्याचार का फल क्वार्टरली रिवियू की सृष्टि हुआ।

उस "क्वार्टरली रिवियू" में समालोचक के शीर्ष स्थान पर मेकाले का नाम देखा जाता है। मेकाले प्रतिभावान पुरुष थे सन्देह नहीं किन्तु वाक्यविन्यास में वह जितने निपुण थे समालोचन शक्ति में उतने नही थे। विषय वर्णन में जितने कृती थे चरित्र आँकने में उतने सिद्धहस्त नही थे। वह अपनी ओजस्विनी मनोमोहिनी भाषा से जब Southry का उपहास करके अप्रसिद्ध Fany Burney को सर्व्वश्रेष्ठ उपन्यासिक के पद पर विठा रहे थे तब समालोचना करते समय उनकी एक देशदर्शिता फूट निकली

थी । लेकिन समालोचना के समय जजी करना जितना श्रेष्ठ है वकीली करना उतना नही ।

उन्हीं दिनों फ्रांसीसी साहित्य में समालोचना बहुत कुछ सफलता प्राप्त करचुकी थी ।

मासिक वा त्रैमासिक पत्र और पत्रिकाओं में समालोचना के नीचे नाम लिखने की रीति से ही उस शुभफल का सूत्रपात हुआ था । इङ्गलैण्ड के समालोचक जब मेघनाद की तरह पत्रिकाओं की आड़ मे छिपकर अजस्र वाक्यबाण बरसा रहे थे तब फ्रांसीसी समालोचकों को शक्तिशैल के सामने होकर बड़ी सावधानी से आत्मरक्षा करनी पड़ती थी । इस कारण इङ्गलैण्ड में रिवियू के दायित्वहीन समालोचकगण आक्रमण की आशङ्का न करके अपने सौभाग्यवान प्रियपात्र लेखकों पर जब अजस्र सुख्याति की वर्षा करते थे या विद्वेष कलुषित और अक्षम समालोचना में जब बायरन को मदगर्वित युवक, वर्ड्सवर्थ को कविता की विफलता का आदर्श, कीट्स को ठग धूर्त्त और टेनिसन को अति अक्षम कवि कहकर आनन्द अनुभव करते थे तब फ्रांसीसी समालोचक को सब दायित्व अपने कन्धे पर लेकर डर से यत्नपूर्व्वक ग्रन्थों का सौन्दर्य्य और कुत्सिताङ्गः साफल्य और विफलता; विशेषरूप से दर्शाकर उनके गुण दोष का सरटिफिकेट लेने के लिये साहित्य समाज के आगे रखना पड़ा था । और उन्हीं दिनो फ्रांसीसी साहित्य में प्रकृत समालोचना की सृष्टि हुई थी ।

वस्तुतः प्रकृत समालोचना का दायित्व बड़ा गुरुतर है । समालोचक को निरपेक्षचित्त से जगत में जो कुछ महत सत्य और सुन्दर है उसी को यत्न से पाठकों के आगे रखना होगा । और प्रत्येक विषय बड़ी सतर्कता के साथ माप तौल कर देखना होगा । सच तो यह कि उसका ज्ञान और युक्ति ही उसका आश्रय है ।

ज्ञान ही उसका बल है। स्थैर्य्य और दृढ़ता ही उसका निर्भर है। सूक्ष्म सौन्दर्य्यानुभूति से उसका हृदय रमणीय होगा। विनय और सहृदयता से ही उसे कमनीय करना होगा। और तभी समा-लोचना की सफलता होगी। समालोचक को दिखलाना होगा कि पुस्तक वा प्रबन्ध कैसे पढ़ा जाता है और कैसे पढ़ना उचित है। उसको पुस्तक से बिखरे हुए सौन्दर्य्य परमाणु बटोर कर पूर्ण-मूर्त्ति से पाठकों के सामने रखना होगा। ग्रन्थ के अन्तर प्रदेश में घुसकर ग्रन्थकार और पुस्तक का साफल्य विचार करना होगा। और अस्वास्थ्य कर कुत्सित अंश तोड़ फोड़कर साहित्य देह से निकालना और उसके सांक्रमिक प्रभाव से जातीय जीवन और साहित्य की रक्षा करनी होगी। और स्वयम् क्षमताशाली होकर जितना जन समाज का उपकार साधन किया जासकता है। उससे और वैसे ही इस क्षमतावानों को साहित्य जगत में परिचित और अग्रसर करदेने से उससे अधिक उपकार साधित होता है, रास्किन की इस महती उक्ति को भी उसे याद रखना होगा।

किन्तु प्रकृत समालोचना में विघ्न भी कम नहीं हैं। व्यक्तिगत रुचि, शिक्षा और मन की परिणति का भेद, समालोचक पर इन का प्रभाव भी कम नहीं है। कुछ ऐसे भी होते हैं जो एकही ओर देखकर समालोचना की चाबुक फटकारने लगते हैं। कुछ लोगों को बाहर ही का रूप अच्छा लगता है। कुछ लोग भीतर का गुण चाहते हैं। कुछ लोग ललित पदावली की समष्टि को अति मधुर कविता जानकर बाहरी चिकचिकाहट और पालिस में फँस जाते और मोहान्ध नयनों से दोष नहीं देख पाते। कितने लोग ऐसे भी होते हैं जो भीतर अजस्र भाव प्रवाह होते भी बाहर के दोष ही में तन्मय हो रहते हैं।

इन दिनों एक और तरह की समालोचना विज्ञापन स्तम्भ के

रूप में व्यवहृत होती है इसके समालोचक गण किसी स्नेहवश भक्तों के अनुरोध, अथवा और किसी के सङ्कीर्ण स्वार्थ में पड़कर कर्त्तव्यच्युत हो पड़ते हैं । अभाग्य की बात यह कि इस तरह ज्ञान देवी सरस्वती के चिरपवित्र मन्दिर को कलङ्कित करनेवालों के लिये पिनलकोड में भी कोई धारा नहीं है । अधिष्ठात्री देवी के हाथ भी हाथियारों में वीणा मात्र रहगया है ।

अतएव सब तरह से यही देखा जाता है कि समालोचना सुगमसाध्य नही है और ऊपर से विघ्न भी खूब हैं । लेकिन साहित्य की उन्नति और उत्कर्षता के लिये वह बहुत ही आवश्यक है इसके बिना हिन्दी साहित्य अधम और अयोग्य रचना से दिनों-दिन भरता और श्रीहीन होता जाता है । भगवान से यही विनती है कि शीघ्र समालोचना का प्रचार और आदर हो जिससे हिन्दी साहित्य का सब तरह से उत्कर्ष साधन संभव है ।

साहित्य समालोचना ।

---:o:---

जैसे चतुर शिल्पकार अल्प मूल्य के पत्थर को अपनी कौशलता से गढ़कर बहुमूल्य बनादेता है वैसे ही मनुष्य शिक्षा के प्रभाव से जन समाज में गण्य मान्य होकर देश का अनेक उपकार कर सकता है । राजा का शुभचिन्तक बना रहता है । शिक्षा दो प्रकार की है एक लौकिक सुख की देनेवाली, दूसरी परलौकिक सुख दायिनी । जो दोनों प्रकार की शिक्षा से भूषित होता है वह पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त करता है । आजकल इस देश में इस दूसरे प्रकार की शिक्षा का अभाव है । ऐसी शिक्षा वहाँ सुगमता से प्राप्त होती जहाँ राजा और प्रजा का एक मत (मजहब) हो या देश के लोग

जहाँ अपनी शिक्षा का प्रबन्ध स्वयम् करते हों। इस भारतवर्ष के निवासी अभी इस योग्य नहीं हैं। यहाँतक कि सरकार उनकी गर्दन पर सवार होकर शिक्षा देने को तैयार है तौ भी वालक जैसे हितकर औषधि थूक देता है वैसे ही भारतवासी शिक्षा से भागते और सुशिक्षा उगल देते हैं। इसके सिवाय यहाँ अनेक सम्प्रदाय और मत के आदमी वसते हैं। राजा का मत उनसे भिन्न है, और यहाँ के वैभवशाली पुरुषों को इस हितकर सुकार्य्य में द्रव्य व्यय करना असह्य जान पड़ता है। यहाँ के लोग प्रजा को शिक्षा देना सरकार का ही कर्त्तव्य समझ कर बेफिकर रहते हैं। ऐसी दशा में दोनों प्रकार की शिक्षा देना सरकार को असाध्य है।

यद्यपि सरकार का मत प्रजा से भिन्न है। तौभी, वह उपयोगी और लौकिक शिक्षा के साथ वह साधारण धर्म्म शिक्षा जो लौकिक पारलौकिक सुखदायिनी और सर्व्वादि सम्मत तथा सर्व मत ग्राह्य है, दिलाती है। अर्थात जो पाठ्य पुस्तक सरकारी पाठशालाओं में जारी की गयी हैं उनमें कुछ २ ऐसे अकाट्य उपदेश रहते हैं जिनसे विद्यार्थियों को लौकिक पारलौकिक सुख प्राप्त विषयक अभिज्ञता प्राप्त होती है। सब मतवालों को वह स्वीकार होता है। किसी का किसी पर विरोध नहीं रहता।

इस प्रबन्ध में हम अङ्गरेजी, फारसी, बङ्गला आदि के पाठ्य पुस्तकों को छोड़कर हिन्दी के उन्हीं पुस्तकों पर कुछ विचार करेंगे जो इन प्रान्तों की पाठशालाओं में आजकल पढ़ाई जाती हैं।

इन दिनों मृत राजा शिवप्रसाद सी. एस. आई. के बनाये हुए गुटका नामक पुस्तक के स्थान में मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल के ऊँचे दरजे के विद्यार्थियों को भाषासार संग्रह पढ़ाया जाता है। वह संग्रह काशी की नागरी प्रचारिणी के सभ्य महाशयों का तैयार किया हुआ है।

पाठ्य पुस्तकों में जो विषय लिखे जाते हैं उनमें अपने देश की रीति, नीति, सदुपदेश, उत्तम जनों का वृत्तान्त या उपयोगी अद्भुत वार्ताओं को विद्यार्थी जिस श्रद्धा और प्रेम से पढ़ते हैं वैसे दूसरे देश की रीति नीति आदि विषयों को नहीं पढ़ते हैं। हाँ यदि अपने देश की रीति नीति और सत्पुरुषों के चरित्र से अन्य देशीय रीति नीति प्रभृति उत्तम हो तो उन पुस्तकों में संग्रह करना दोषावह नहीं है। यही समझकर राजा शिवप्रसाद सी. एस. आई. ने अपने गुटका के पहिले और दूसरे खण्ड में भारतीय ग्रन्थकारों के उत्तम २ गद्य पद्य लेखों का संग्रह किया था जिनको विद्यार्थी बड़े प्रेम और श्रद्धा से पढ़ते और उनसे मातृभाषा का विशेष ज्ञान प्राप्त करते थे। उक्त गुटका में ऐसे २ उत्तम विषय लिखे गये हैं जिनको विद्यार्थी पठनकाल ही में नहीं वरञ्च पाठशाला छोड़ने पर भी अवकाश पाकर चित्तविनोद अथवा बन्धु बान्धवों में प्रगट करने के लिये पढ़ा करते और सबको सुनाते रहते थे। जिनसे सर्वसाधारण को सुखदायनी शिक्षा मिलती थी और भाषा विषयक ज्ञान प्राप्त होता था। यद्यपि राजा साहिब जैन सम्प्रदाय के थे तथापि अपनी समझ में सर्व साधारण के उपकार और भाषा विषयक ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्राचीन विद्वानों के रचे ग्रन्थों से अनेक उत्तम प्रबन्ध संग्रह उन्होंने किये थे, जिनको आजकल के विद्वान एक पक्ष का उपकारी समझकर पाठ्य पुस्तकों में रखना नहीं चाहते। उससे उत्तम संग्रह बनाने की चेष्टा कर रहेहैं। यह कुछ जरूरी बात नहीं है कि सदा राजा साहिब ही का गुटका पढ़ाया जाय लेकिन इतना जरूर चाहिये कि उसकी जगह पर जो गुटका व संग्रह पढ़ाया जाय उससे उत्तम हो।

इन दिनों नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सभ्यों का भाषा सार प्रथम और द्वितीय भाग पाठ्य पुस्तकों में है। यह सभा आज

कल हिन्दी भाषा की दुनिया में परिचित सी है। और काम भी अपनी शक्ति से बाहर करती हुई बतलाती जाती है। फिर जो पाठ्य पुस्तक है वह अवश्य उत्तम गुणों से भरा होगा। इसी विचार से उसे मँगाकर देखा तो सब पढ़जाने पर भी यह नहीं मालूम हुआ कि कच्ची समझ के बालकों को पढ़ाने के वास्ते उन गुटका आदि के स्थान पर यह संग्रह किन गुणों से योग्य समझा गया। बालक विद्यार्थी कच्ची मिट्टी के समान हैं उनको जैसी शिक्षा देकर जिस साँचे में चाहें ढाल सके हैं। ऐसे बालकों के लिये यह पाठ्यपुस्तक क्योंकर योग्य हुआ। राजा शिवप्रसाद साहिब के "गुटका" में पहिले भाग में १७ अध्याय प्रेमसागर, परीक्षा गुरू, नीति मंजरी, प्रेमरत्न, कबीर की साखी, बिहारी की सतसई और मित्रलाभ यह सात पाठ हैं उनको पढ़कर विद्यार्थी जो ज्ञान प्राप्त कर सके हैं। भाषा सार के पढ़ने से उसका आधा भी कर सके हैं या नहीं इस का विचार करने योग्य है। भाषासार संग्रह में टेम्स नदी पर हिम का मेला, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भूचाल का वर्णन, राबिन्सन क्रूसो (अधूरा,) नीति शिक्षा, बंशनगर का व्यौपारी, अहिल्याबाई, सर ऐजक न्यूटन, नीति विषयक इतिहास, बिदुरनीति, कर्त्तव्य और सत्यता, और रामचन्द्र का बनवास है।

इन में पारलैकिक सुखदायक विषय खूब ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। कहाँ कबीर की साखो के वह गूढ़ मर्म्म भरे दोहे और कहाँ टेम्स नदी पर हिम का मेला। हम इस नये संग्रह के एक २ विषय पर आज संक्षेप से टिप्पणी करके बतलाते हैं कि इस संग्रह से विद्यार्थियों का क्या उपकार होगा।

टेम्स नदी पर हिम का मेला—यह ऐसा वृत्तान्त है कि लड़के कहानी की तरह पढ़ेंगे कुछ इस से उपदेश नहीं मिल सकता। इससे इतना ही मालूम होगा कि वहाँ इतनी सर्दी पड़ती है कि

पानी जमकर पत्थर होजाता है और लगातार नदी में जमे हुए बर्फ़ की पीठ पर बाज़ार तक लग सकता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—इस प्रबन्ध से विद्यार्थी को केवल इतना ज्ञान हो सकता है कि बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु अच्छे कवि थे। उदार थे। बहुतसी भाषाओं के ज्ञाता थे। सज्जन और विद्वानों का आदर करते थे। उनका आदर भी भाषा रसिकों ने किया और भारतेन्दु की पदवी दी थी। इसके सिवाय और कुछ भी उन को ज्ञान नहीं प्राप्त होसकता। जैसा किसी एक सुप्रसिद्ध महा-पुरुष के जीवनचरित पाठ से होता। किसी सुप्रसिद्ध महात्मा का जीवनचरित् विद्यार्थियों को संसारयात्रा निर्वाह, और पारलौकिक सुख प्राप्त के लिये संबल या गुरू रूप होता है।

भूचाल का वर्णन—इस में भूचाल का कारण उसके लाभादि का वर्णन नही है। केवल इतना ही लिखा है कि भूचाल से अमुक २ नगर नष्ट होगये। इससे विद्यार्थी क्या लाभ उठावेंगे? इस को तो वह शिक्षावली नं० ५ और भूगोल नं० २ (हिलसाहिब) से पढ़ते ही हैं।

राबिन्सन क्रूसो का इतिहास—एक विदेशी पुरुष का वृत्तान्त होने के कारण विद्यार्थी को रोचक नहीं होगा। यह कथा विद्यार्थी उस समय पढ़ सकता है जब अपने देश के कुछ बहादुर सत्यशील और सहिष्णुता प्रिय महात्माओं का जीवनचरित पढ़ चुका हो और विदेश के बहादुर, सत्यशील, और विपद में धैर्य्य धारण करनेवाले कैसे होते थे इस बात के जानने की इच्छा हो। ऐसी कथा इनाम में रखने से ही यह उद्देश्य सफल होसकता है पाठ्य पुस्तकों में रखने से नहीं। इस कथा से अधिक प्रेम और श्रद्धा से विद्यार्थी नीचे लिखे छोटे २ श्लोकों को पढ़ सकने और राबि-न्सन क्रूसो के पाठ से जो ज्ञान लाभ होगा उससे बढ़कर लाभ

उठा सकते थे ।

दोहा—गुरु स्रुति सम्मत धरम फल पाइ यविनहिं कलेस ।
हठ वस सब सङ्कट सहै गालव नहुस नरेस ।

इस के सिवाय यह बात विचारने की है कि जबतक कोई किसी का सविस्तार या संक्षेप वृत्तान्त आद्योपान्त नहीं पढ़ता तबतक उसके पढ़ने से क्या फल होता है ? उस का चरित पूरा कैसे जान सकता है ? हम मानते हैं कि राबिन्सन क्रूसो का इतिहास मनोरञ्जनकर है परन्तु इस भाषासार संग्रह में ऐसा कुढङ्ग लिखा गया है कि पढ़नेवाले के चित्त पर उस का प्रभाव बहुत ही कम होगा । इस में राबिन्सन की इच्छा, पिता का उपदेश, उस की माता का पति के वाक्यों पर समर्थन, इत्यादि स्पष्ट रीति से वर्णन कियागया है परन्तु माता पिता की आज्ञा न मानने से जो २ दुःख उसने पाये हैं उसका कुछ भी बयान नहीं दियागया । संग्रहकर्त्ता ने अन्त में अपनी ओर से इतना लिख दिया है कि—"आज्ञा न मानने के कारण जो कुछ आपत्तियाँ झेलने पड़ीं वे अकथनीय हैं ।" आपत्ति अकथनीय हैं; वा असह्य थीं ? ऐसे अधूरे वृत्तान्त से विद्यार्थी को क्या लाभ होगा ?

वंशनगर का व्यौपारी—इस के पढ़ने से जैन सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को आन्तरिक कष्ट होगा । क्योंकि इसमें कथा के छल से एक जैनी की निन्दा है, दूसरे दो स्त्रियों का पुरुष के वेष में वकालत करना भारतीय रीति नीति और वर्त्तमान शिक्षा के विरुद्ध है । अभी थोड़े दिन की बात है एक यूरोपियन लेडी को जो बेरि-स्टरी पास करके बम्बई और प्रयाग की हाईकोर्ट में अपना व्यवसाय (वकालत) करना चाहती थी उस को आज्ञा नहीं दी गयी । जब स्वाधीनताप्रिय शिक्षित समाज में भी स्त्रियों की वका-लत दूषित समझी गयी तब कब सम्भव है, भारत की हिन्दू नारी

जो परपुरुष से सम्भाषण निन्दित कर्म्म समझती है वकालत करें। इसके सिवाय अनन्त और वसन्त का जो ब्याह इस पुस्तक में करायागया है वह भगवान मनु के कहे विधानों से भी परे है। वोनिस के ब्यौपारी का किस्सा जो सन् १८७८-७९ ई० में काशी पत्रिका में छपा और अन्यत्र साधुभाषा में छप चुका है उसे इस में लेखक ने अपनी इच्छानुसार संग्रह करके हिन्दुस्तानी नाम धाम से सजाया है। वोनिस को वंशनगर, अन्टेनियाको अनन्त, वसेनिया को वसन्त, और सायलाकको शैलाक्ष बनाया है नाम तो हिन्दुस्तानी दिया काम विलायती रखा इससे विद्यार्थी कौनसा लौकिक पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करेंगे ?

अहिल्यावाई—इससे अहिल्या का पातिव्रत, गुरुजनसुश्रूषा, कार्य्यदक्षता, और उदारता आदि सद्गुणों का ज्ञान होता है, यह प्रबन्ध निन्दनीय नहीं है। विद्यार्थी इसे अपने गृह पर पढ़ेगा तो उसके घर में कथा सुननेवाली स्त्रियों को उपदेश मिलेगा, वह अहिल्यावाई का गुण सीखेंगी। इसको राजा शिवप्रसाद ने अपने पुराने गुटका में रक्खा था लेकिन नया गुटका बनाते समय उसे न जाने क्या विचारकर निकाल दिया। फिर त्याज्य प्रबन्ध को लाने से क्या लाभ ? माना कि प्रबन्ध उत्तम है लेकिन जब नया संग्रह होता है और उससे भी उत्तम प्रबन्ध मिल सकता है तब उसे रखने की क्या आवश्यकता है ? इससे बाबू सीताराम जी साहब का सावित्री सत्यवान या बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु का मदालसा उपाख्यान अच्छा होता।

सर ऐज़क न्यूटन—जितना जीवनचरित इस संग्रह में दिया गया है वह बहुत लाभकारी नहीं होगा। इसकी जगह भारत के किसी प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वा अन्य विद्या विशारद की जीवनी लिखी जाती तो बहुत अच्छा होता। देश में ऐसे विद्वानों का

चरित्र रहते भी विदेश से पात्र ढूँढ़ लाना अच्छा नहीं जँचता।

नीति विषयक इतिहास—इस का शीर्ष पढ़ने से पढ़नेवाले के मन में यह बात आती है कि इस में नीतिशास्त्र बनने के काल, उस की उन्नति अवनति के कारण, अभिप्राय आदि जैसा इतिहास में लिखा जाता है, वैसा ही इसमें भी होगा। लेकिन नीचे लेख में और बात है नीति के कतिपय सिद्धान्तों पर उदाहरण ही उदाहरण मिलते हैं। यह और विदुरनीति दोनों प्रबन्ध उत्तम हैं यह दोनों "भाषासार" नामक पुस्तक में दिये जाचुके हैं जो विहार प्रदेश की पाठशालाओं में पाठ्य पुस्तक है। संग्रह नया तैयार किया गया तो दूसरे संग्रह से लेने की क्या आवश्कता है। यदि वैसे ही रखना है तो उस में जो और उत्तम प्रबन्ध हैं उनको भी लेलेते या वही संग्रह इन प्रान्तों का भी पाठ्य पुस्तक बना देते। इतने बड़े संग्रह में वर्त्तमानकाल के-उपयोगी उपदेशजनक प्रबन्ध यही विदुर नीति, राम का बनवास को चलना, और नीति वि० इ० हैं।

(क्रमशः)

तार्किक।

(प्राप्त)

कोई २ कहते हैं, जिन के साथ मत का मिलान नहीं है, बात २ में लाठी चलने का योग होता है, तर्क वितर्क किये बिना जो लोग एक पग नहीं चलने देते, उनकी सङ्गत से उपकार होता है। जिन के मारे कच्ची बात नहीं कह सकते। दुर्बल मत जिन से त्राहि २ करता रहता है। खूब पक्का मत हुए विना जिनके आगे नहीं टिक सकता उन की सङ्गत हम को ठीक नहीं जँचती न उन से उतना उपकार समझ पड़ता।

हम लोगों का कोई भाव अहिरावण की तरह जन्म लेते ही तो कुछ युद्ध करना नहीं शुरू कर सकता। लेकिन उसे कुछ दिनों तक बड़ाई, बन्धुबान्धवों की ममता और अनुकूल युक्ति के लघु-पाक तथा पुष्टिकर खाद्य सेवन कराने चाहिये। जब वह पाँव के बल खड़ा हो सकेगा तब उसे बीच २ में धक्का लग जाय, सिर में ठोकर लगे, या गिर जाय तो चिन्ता नहीं, लेकिन ज्योंही हमारे भाव का जन्म हुआ त्योंहीं यदि हमारे नैयायिक पहलवान हाथ-लफाकर उसका गला दबा बैठें तो उसके बचने का कम भरोसा रहेगा।

हित-मित्रों से बात करते में हम लोगों के अनेक नये २ मत जन्म लेते रहते हैं किसी विषय में हमारा यथार्थ मत क्या है: हमारा यथार्थ विश्वास क्या है: सहसा पूछ बैठने पर हम लोग नहीं कह सकते। बन्धुबान्धवों से बातचीत और वादविवाद में किसी विषय पर मत वा विश्वास प्रगट हो पड़ते हैं, तभी हम लोग उनको पहलेपहल देखते हैं। उन कच्चे भावों को अभी हमने युक्ति का आवरण नहीं दिया है, उन्हें अभी कठोर मिट्टी पर चलना नहीं सिखलाया, न नाना शास्त्रों से चुनकर उनके चारों ओर अनुकूल मतों का बाडीगार्ड ही खड़ा किया, इतने में अगर किसी नैयायिक शिकारी की ललकार से देशी विलायती नवीन प्राचीन सम्पूर्ण न्यायशास्त्र की युक्तियों के भूखे और कटहे कुत्ते दाँत दिखाते और हाँ भाँ करते उस असहाय पर टूट पड़ें तो वह बेचारे कहाँ खड़े होंगे?

तुम नैयायिक हो Facts नाम के कितने ही लठैत तुम्हारे हाथ में हैं। तुम्हारे पास जो कुछ है उसके लिये मान्धाता के राज से सब तरह का जोड़ तोड़ चला आता है। और हमारा भाव शिशु अभी जन्मा है। इसपर वार करने में तुम्हारी क्या बहादुरी होगी

अभी ठहरो। अभी हमारा बिचारा भाव शिशु बादाबिवाद की गोद में घूम रहा है जब वह साहित्यक्षेत्र की रणभूमि में खड़ा होगा तब उससे तुम्हारी बूझवरात होसकेगी।

यह न्याय शास्त्र विशारद बात २ में कैफियत माँगते हैं। व्यङ्ग व हँसी ठट्ठा से कोई सङ्गत असङ्गत बात निकल गयी तो तर्क से उसकी अयोग्यता साबित करने लगते हैं। बात करते समय किसी एक ऐतहासिक Fact का उल्लेख करें तो वह और विषयों में कितनी ही सङ्गत क्यों न हो उसकी तारीख में तनक इधर उधर होने से कचकचा कर चढ़ बैठेंगे, और उसे दबा मारेंगे। अगर योंही किसी की किसी से तुलना करो तो तार्किक झट हाथ में फीता लेकर नाप जोख करने लगेंगे। जैसे कहें कि अमुक आदमी बिल- कुल गधे के बराबर है। बस इतना कहते देर नहीं कि वह बोल उठेंगे—"वाह जी! कैसी बात करते हो उसको तो चार पैर नहीं हैं न उसके कान ही वैसे बड़े हैं। उसकी आवाज़ वैसी अच्छी नहीं है सही, लेकिन इसी से तो उसको गदहे के बराबर नहीं कह सकते। अगर कहा जाय कि बुद्धिमान जी! उसकी बुद्धि की बराबरी गधे की बुद्धि से की थी। और बातों में बराबरी करने की याद नहीं रही। इतना सुनते ही वह बोल उठेंगे—"यह भी तो ठीक नहीं उतरा, पशु वस्तुओं को देखता है, लेकिन उसमें वस्तुत्व क्या है सो कहाँ समझ सक्ता है? वह सफेद चीज मन में समझ भी सकता है किन्तु श्वेत वर्ण नामक पदार्थ अतिरिक्त एक भाव मात्र है यह उसके मन में कहाँ धारणा हो सकती है? इत्यादि इत्यादि। अब अन्त को कातर होकर कहना पड़ा कि माफ़ करो! बाबा माफ़ करो! हमारी भूल हुई। अब उसकी बुद्धि गधे की बुद्धि के बरा- बर न कहकर तुम्हारी ही बुद्धि के बराबर कहेंगे।

(क्रमशः)

हिन्दी की चिन्दी।

आजकल हिन्दी लेखकों में मनमानी खँचातानी होरही है। कोई किसी की आन नहीं मानता। सारसुधा तो अपनी निधि उठाकर वसुधा से विदा होगयी। कादम्बिनी ने साहित्य वाटिका में आनन्द छिड़कना बन्द कर दिया। ब्राह्मण बाबा—"दरो दीवार पर हसरत से नज़र करते हैं। खुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं।" सुनाकर स्वर्ग को पधारे, उचितवक्ता भी चुप होरहा, रसिकपञ्च से रस के टाइप अब नहीं ढलते। भारतोदय और भारतेन्दु अस्ताचल को गये। अब हिन्दी साहित्य में परिष्कृत आलोक का अभावसा होरहा है। श्रीमान् गोस्वामी जी को झाँकी से छुट्टी नहीं, सुयोग्य श्री चौधरी का चित्त चधुरॉव ही में डावाँ-डोल रहता है, कालिकागली के पण्डित बाबा को अपनी स्टडी से ही छुट्टी नहीं मिलती, मान्यवर मालवीय जी अपनी वकालत और कांग्रेस के मारे दम नहीं लेने पाते, मिश्र जी महाराज पारिवारिक शोक में सन्तप्त हैं, अब हतभागिनी हिन्दी की पुकार कौन सुने? आज-कल अङ्गरेज़ी भाषा के पण्डित हिन्दी सूँघकर हिन्दी समाचारपत्रों के लेखक और सम्पादक बने हैं, हिन्दी को उसी अङ्गरेज़ी के क़ायदे क़ानून के रस्से में बाँधकर घसीटते जाते है, जो लेखक मारवाड़ी या गुजराती हैं जिन्हों ने माता से मारवाड़ी अथवा गुजराती भाषा में मुँह फाड़ना सीखा है जो मारवाड़ी या गुजराती ही में पाल पोसकर बड़े किये गये वह सयाने होने पर लेखक वा सम्पा-दक हुए तो हिन्दी में भी अपनी मातृभाषा के मुहावरे डालने लगते हैं, जिनकी मातृभाषा बङ्गाली है; जिन को सदा बङ्गभाषा का संसर्ग रहा है वह हिन्दी लिखते समय अपनी हिन्दी में बङ्गभाषा की गन्धि छोड़ते हैं। जो फ़ारसी अरबी के पण्डित हैं जिनके घर उर्दू,

इसुअसा बोली जाती है वह हिन्दी में सब फ़ारसी क़वायद की गलती मानते हैं। जो नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सभ्य या उस के कार्य्यकर्त्ताओं की प्रचारित पत्रिकाओं से सम्बन्ध रखनेवाले हैं वह उसी सभा के चलाये नियमों पर हिन्दी लिखते हैं वह नियम ठीक हैं या नहीं इस का विचार नहीं करते।

जब श्रीवेंकटेश्वर समाचार के सम्पादक लखनऊ के खत्री थे तब उस की हिन्दी और ढङ्ग की थी, जब गुजराती भाषा के जाननेवाले सम्पादक हुए तब उसी वेङ्कटेश्वर समाचार में "हम हमारी पुस्तक को उठा लेगये।" "तुम तुमारी चीज़ साथ लेते जाव" इसी तरह के वाक्य छपने लगे। आजकल श्री वेङ्कटेश्वर समाचार की भाषा ने नया रूप धारण किया है। सुन्दर वाक्य योजना के साथ "देके" समझेके, लेके, रहेके इत्यादि लिखा जाने लगा है। "वाहियात अकर्म्मण्यता," आदि बेजोड़ शब्द लिखकर हिन्दी का नये ढङ्ग से सुधार करने की चेष्टा होरही है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के लोग और उनके अनुयायी लेखक याकारान्त शब्द का बहुवचन एकारान्त करके लिखते हैं जैसे किए, बनाए, गए आदि।

यह एक सहज ही बोधगम्य है कि याकारान्त शब्द का बहुवचन येकारान्त करके लिखना चाहिये जैसे किया से किये, गया से गये, बनाया से बनाये आदि।

"य" व्यञ्जनाक्षर है। इस कारण बहुवचन में याकारान्त का येकारान्त ठीक है "आ" स्वर है। जिस आकारान्त के अन्त में "आ" स्वर हो उस को बहुवचन में एकारान्त करना उचित है जैसे हुआ से हुए। इसी तरह गयी को गई और हुई को हुयी लिखकर भी कुछ लोग हिन्दी की चिन्दी करते हैं।

नागरी प्रचारिणी काशी के लोग (अर्थात् उक्त सभा के निय-

मानुसार लिखनेवाले) छठा को छठवाँ लिखते हैं यह 6th का अनुवाद है। एकाध जगह ऐसी भूल हो तो छापे की भूल समझी जाय लेकिन उन लोगों में सदा छठवाँ लिखा जाता है।

हिन्दी में अनेक शब्द ऐसे हैं जिनका बहुवचन कहीं २ क्रिया के बहुवचन से व्यक्त किया जाता है। और कहीं संख्यावाचक शब्दों से और आवश्यकतानुसार सब, गण, लोग आदि अनेक-वाचक शब्दों से उन का बहुवचन प्रगट होता है। जैसे सब पुस्तक बिक गयीं। सब बैल जोत दिये गये। इस को कुछ लोग लिखते हैं पुस्तकें बिकगयीं, इस के अनुसार बैल का बहुवचन बैलें बनाना चाहिये।

अनेक शब्द ऐसे होते हैं जिन का अन्तिम अक्षर अविकारी होता है अर्थात् उन के अन्त का अक्षर विभक्तिप्रयोग अथवा वचन भेद से नहीं बदलता। उन का बहुवचन जब सचिह्न विभक्तिप्रयोग हो तब ओं, यों और वों लगाकर बनाया जाता है जैसे राजाओं को बुलावो; विभक्तियों से अलग रक्खो, टीकावों (कहीं २ टीकों) को मिला देखो।

आजकल अनेक समाचार पत्र सम्पादक राजा का बहुवचन राजे और राजों बनाते हैं "राजा चला गया" का बहुवचन राजे चले गए अच्छा नहीं है सब राजा चले गये या राजा लोग चलेगये। कई समाचार पत्र लिखते हैं—राजों के लिये अलग स्थान * * यहाँ राजों की जगह राजाओं लिखना चाहिये।

(क्रमशः)

पद्य की भाषा।

हिन्दी की कविता ब्रजभाषा में हो या खड़ी बोली में इस विषय पर आजकल [illegible] झगड़े हो रहे हैं। जो लोग पुरातन

हैं। साहित्य सेवी और भाषा साहित्य के मर्म्मज्ञ हैं वह खूब जानते हैं कि इस विषय में बृजभाषा के प्रेमियों का झगड़ा अड़ाना भूल है। एक भाषा की उन्नति तभी सम्भव है जब उसी का सब तरह से प्रचार हो। लिखने में, बोलने में, कविता करने में, राज दरबार में, घर के कारोबार में इत्यादि।

जो भाषा सभ्य समाज की बोलचाल और लिखने पढ़ने में काम आती है वह यहाँ की हिन्दी (खड़ी बोली) है उस को कविता में भी अधिकार मिले यह सभी भाषा मर्म्मज्ञों का अभीष्ट होगा। और उसी भाषा घर के कारोबार और राज दरबार में प्रचलित हो इस का उद्योग सब देशहितैषी मात्र का कर्त्तव्य है। हमारी युक्त प्रदेश की सरकार ने हिन्दी को राज दरबार में भी अधिकार दिया ही है फिर कविता करने के लिये खड़ी बोली छोड़कर बृजभाषा की शरण लेना हिन्दी की उस उन्नति में बाधा डालना है जो देश की उन्नति का मूल कारण है।

सब भाषाओं मे यही देखा जाता है कि जो भाषा सभ्य समाज की बोलचाल में प्रचलित है उसी का कविता में भी आदर है। एक हिन्दी ही में क्यों भाषा की उन्नति के मार्ग में काँटा बिछाया जाय। किसी भाषा का पण्डित यदि हिन्दी का यह भीतरी भेद जानेगा तो जरूर हँस पड़ेगा। माना कि बृजभाषा में कविता बहुत दिनों से होती आती है और अनेक कवियों ने बृजभाषा ही में कविता की है लेकिन इसी के वास्ते खड़ी बोली में कविता नहीं करना और बृजभाषा ही को कविता का अधिकारी कहना तथा करते जाना अन्याय है, अन्याय ही नहीं हिन्दी की उन्नति में बाधा डालना है, इससे हिन्दू और हिन्दुस्तान की उन्नति में भी बाधा पड़ती है। किसी देश के लोगों की उन्नति तभी होती है जब उस देश की भाषा उन्नत होती है। और जब किसी देश की भाषा

और देश के लोगों की उन्नति होती है तभी वह देश पूर्णरूप से उन्नत समझा जाता है ।

अतएव पद्य की भाषा भी वही होनी चाहिये जो गद्य की भाषा है, इस देश की अन्य देशी भाषाओं की भी तभी उन्नति हुई है जब उन का गद्य पद्य दोनों में अधिकार हुआ है । वङ्गभाषा, गुजराती और मरहठी में भी जो भाषा गद्य में लिखी जाती है उसी में कविता की जाती है ।

जो लोग खड़ी बोली का नाम सुनकर चौंकते हैं और ब्रजभाषा के अनुराग में खड़ी बोली को कविता के अयोग्य अथवा खड़ी बोली की कविता को नीरस कहते हैं वह भूलते नहीं हैं तो खड़ी बोली का मर्म्म नहीं जानते । उन्हों ने खड़ी बोली की उत्तम कविता देखी नहीं है ।

जो लोग कहते हैं कि खड़ी बोली की कविता अच्छी वा हृदय-ग्राहिणी नहीं होती उन को आजकल के बड़े २ उपाधिधारी काव्याचार्य्य; साहित्याचार्य्य, भारतसर्वस्व, कविकुल मुकुटमणि, ऐसे ही लोगों की पूर्त्ति पढ़ने से जान पड़ेगा कि काव्य का हृदय-ग्राही और सरस होना कवि की क्षमता पर निर्भर है भाषा पर नहीं । ऐसा कहनेवालों को पं० श्रीधर पाठक का एकान्तवासी योगी और बाबू हरिश्चन्द्र का रामचन्द्र का वनवास को जाना, पं० चन्द्रशेखर धर मिश्र जी का वर्षावर्णन और हिन्दुस्तान पत्र द्वारा प्रकाशित वसन्त वर्णन पढ़ना चाहिये ।

समालोचक समिति ।

जिस समालोचक समिति का प्रस्ताव श्री वेङ्कटेश्वर समाचार में किया गया था और जिस के साथ सहानुभूति करके अनेक विद्वानों

ने सभ्य होना स्वीकार किया था वह अब पूर्णावयव सम्पन्न होकर स्थापित होगयी है। उस के सभापति हिन्दी के प्रसिद्ध सुलेखक कलकत्ते के अनेक हिन्दी पत्रों के प्रवर्त्तक अधिष्ठाता अर्थात् भारतमित्र, सारसुधानिधि, उचितवक्ता, विद्याविलास, सारस्वत प्रकाश आदि के पूर्व्व जन्मदाता सम्पादक परमपूजनीय पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र निर्वाचित हुए हैं। उक्त पण्डित जी ने हम लोगों का अनुरोध स्वीकार करके सहर्ष सभापति होना स्वीकार किया है। उक्त पण्डित जी हिन्दी के जैसे मर्म्मज्ञ और योग्य समालोचन क्षमता सम्पन्न हैं वह हिन्दी रसिक मात्र पर विदित है। इस के सिवाय पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी झाँसी, राय देवीप्रसाद जी साहब (पूर्ण) कानपुर निवासी, बाबू तोताराम लीडर अलीगढ़, पं० श्रीधर पाठक पन्नीगली आगरा, पं० शिवनाथ शर्मा बड़ी कालका स्ट्रीट लखनऊ, पं० गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री नागपुर निवासी, काव्यकुशल पं० शिवप्रसाद शर्म्मा दर्भङ्गा, बाबू मुन्नीलाल जी वकील अलीगढ़ आदि हिन्दी ज्ञाताओं ने सभ्य होना स्वीकार किया है।

सभापति ने आनन्द कादम्बिनी और नागरी नीरद के भूतपूर्व्व सम्पादक हिन्दी के क्षमताशाली लेखक पं० बद्रीनारायण चौधरी मिरज़ापुर और विद्याधर्म्म दीपिका के सम्पादक पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र का नाम मान्य सभ्य मण्डली में लिखने की आज्ञा दी है। इस समिति के नियमादि यथावसर प्रकाशित होते रहेंगे।

सूचना ।

सम्पादक के दूरस्थ होने और प्रेस के कम्पाजिटरों की भूल से कई जगह अशुद्ध होगया है इस की सूचना नीचे दीजाती है। पढ़ने से पहले दया करके सुधार लेना चाहिये। भरोसा है आगे इन का प्रतिकार हो जायगाः—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१३	हिन्दी अच्छे	हिन्दी के अच्छे
६	१२	इल	दल
११	१३	सर्पव्यादि	सर्वव्यादि
१२	१३	चित्र	चित्त
१२	१५	दायनी	दायिनी
१३	२	बतलाती	बतलायी
१५	१५	झेलने	झेलनी
१६	१४	को	को भी
१८	२३	लठेत	लठैत

इनके सिवाय पुस्तक शब्द को कहीं स्त्री लिङ्ग कहीं पुलिङ्ग, सकना क्रिया के रूप को सकता, सकते आदि की जगह सक्ता, सक्ते छाप दिया है। वेनिस का वोनिस होगया है। आशा है सम्पादक और पाठक क्षमा करेंगे।

मैनेजर

यूनियन प्रेस कम्पनी लिमिटेड—जबलपुर।

समालोचक।

मासिक पत्र।

सम्पादक।

बाबू गोपालराम गहमरनिवासी।

वर्ष १ला } सितम्बर सन् १९०२ ई० { अङ्क २

मुद्रित विषय।

प्रोप्राइटर और प्रकाशक।

श्रीयुत मि० जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर।

Printed at the Dharmik Press—Prayag

नियमावली !

१—"समालोचक" हर अङ्गरेज़ी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करेगा।

२—दाम इसका सालाना १॥) है। साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा और ≈) का टिकट भेजे बिना नमूना भी नहीं पासकेगा।

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी। कोई विज्ञापन बिना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा।

४—आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी। किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी। जिस वस्तु की समालोचना छापी जायगी उसकी न्याय और युक्ति पूर्ण पक्षपात शून्य समालोचना छापी जायगी।

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा। जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होगी उसके प्रचार का उचित उद्योग किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसा पत्र व पुरस्कार प्रदानादि से उत्साहित किया जायगा।

६—जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होती है वही छापी जाती है। समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझना चाहिये।

७—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाज़ीपूर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र विज्ञापन के मामिले की चिट्ठी पत्री सब समालोचक के मेनेजर मिस्टर जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जैपुर के पते पर भेजना चाहिये।

हिन्दीसाहित्य

की

वर्त्तमान दशा

सहित के भाव को साहित्य कहते हैं अर्थात् विद्वान लोग मनुष्यों के विद्या सम्बन्धी मनोविस्तृत व्यापार के फल को साहित्य शब्द से अभिहित करते हैं अतएव इस शब्दसे केवल रसात्मक वाक्य (काव्य) ही नहीं वरक् विद्या सम्बन्धी सभी विषय समझे जाते हैं।

जिस देश के जो साहित्य होते हैं उनसे उस देश के लोगों की रुचि, प्रकृति, विद्या, और धर्म्मपरायणता अथवा सारी अवस्था ज्ञात हो जाती है।

मनुष्य बिना किसी अभिमत देश में गये उस देश की सारी बातें साहित्य के बल से जान लेते हैं अतएव साहित्य मनुष्योंको सर्वज्ञ बना सकते हैं यह कहना अनुचित नहीं होगा।

हम लोग वाल्मीकि रामायणादिक से पुरावृत्त, चरक, सुश्रुत से औषधव्यवहार, और सूर्य्यसिद्धान्त से ग्रह गति प्रभृति जानते हैं यदि संस्कृत साहित्य के ये भी ग्रन्थ लुप्त होते तो हम सब पूर्वजों की विद्या और बुद्धि अथवा उनकी अवस्था कुछ भी नहीं जान सकते।

साहित्य दशा और देश दशा इन दोनों का परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है इनमें से जहाँ एक की दशा सुधरी तहाँ वह दूसरे की दशा तुरन्त सुधार देती है अथवा जहाँ एककी दशा बिगड़ी तहाँ दूसरेकी अवस्था बिगड़ते देर नहीं लगती।

इनका बनना और बिगड़ना ऐसी सूक्ष्म रीति से होता है कि अनुसन्धानशील पुरुषों के अतिरिक्त दूसरों को शीघ्र अवगत नहीं होता।

आलोचना के द्वारा इनकी दशा के अनुसन्धान करनेवाले ही साहित्य और देश की उन्नति करते हैं इसमें सन्देह नहीं है

लोग इन्हीं को समालोचक कहते हैं और इनके व्यापार को समालोचना ।

जिस देश के लोग साहित्य की दशा जानने के लिये समालोचकों का आदर करते हैं अथवा जिस देश के समालोचक सैकड़ों कष्ट सहकर साहित्य की आलोचना करते हैं उस देश का मंगल अवश्य होता है अब हमारे पाठक हिन्दी साहित्य की वर्त्तमान दशा लिखने का प्रयोजन समझ जायंगे अतएव विषय भेद से हम साहित्य दशा लिखना प्रारम्भ करते हैं ।

—:o:—

व्याकरण

किसी भाषा के साहित्य ज्ञान के लिये यह अत्यावश्यक विषय है जिस भाषा में इसकी दशा अच्छी है उसकी उन्नति शीघ्र हो जाती है और अवनति होतीही नहीं अथवा बहुत दिनों में होती है । यद्यपि संस्कृत का प्रबल आश्रय दाता कोई नहीं है तथापि उसके व्याकरण के बहुत परिष्कृत होने से अभी तक उस भाषा का नाम संसार से नहीं मिटा ।

हिन्दी व्याकरण की दशा अत्यन्त शोक जनक है अभीतक इस भाषा में कोई अच्छा व्याकरण नहीं बना अतएव स्वयं हिन्दी वैयाकरणों के मन में सन्देह रहही जाता है कि मेरे लिखे हुए वाक्य शुद्ध हैं कि नहीं देखिये "भाषाप्रभाकर" कार ने लिखा है कि "आकारान्त स्त्री लिंगमे जबकर्त्ताका चिन्ह शून्य रहताहै (!) तब बहुवचन में 'एं' कर देते हैं और ह्रस्व वा दीर्घ ईकारान्तमें 'या' ऐसेही ह्रस्व वा दीर्घ उकारान्त में 'वां' करते हैं" इत्यादि* परन्तु उदाहरण लिखने के समय ह्रस्व अकारान्त बात शब्द में 'एं' जोड़ दिया और सिन्धु शब्द में 'वा' नहीं जोड़ा, "भाषाभा-

---

* स्वर्गवासी अम्बिकादत्त व्यासजी की टिप्पणी इस पुस्तक पर है और उन्होंने इसे शुद्ध किया था, न जाने 'वा' जोड़ने का बखेड़ा कैसे रहगया तथा बातें और पुस्तकें इनका साधुत्व नहीं किया गया ।

इकार" कार ने पूर्वोक्त अवस्था में आकारान्त स्त्री लिंग में केवल अनुनासिक अकारान्तमें 'एं' इकारान्तमें 'यां' और उकारान्तमें शून्य लिखना निश्चित किया है, लिखने वाले दोनों से विरुद्ध अनिष्ट रूप स्त्रिएं और वस्तुएं इत्यादि लिखते हैं। हिन्दी वैयाकरणोंके संशय युक्त होने ही से एक २ क्रियाके जायगे जायेंगे और जावेंगे इत्यादि तीन २ रूप हो गये। प्राचीन लोग अपादान का चिन्ह 'से' और करण कारक का चिन्ह 'करके' भी मानतेथे नवीन लोग प्रायः इस बात को नहीं मानते। इस विषय पर एक स्वतंत्र विचार होने वाला है अतएव आज इतनाही सही।

—:o:—

पद्यकाव्य

(श्रव्य)

गद्य और पद्य के भेद से काव्य दो भागों में विभक्त होते हैं उनमें से जो छन्दोवद्ध होता है उसे पद्य कहते हैं। प्रायः प्रत्येक भाषा में पहले पद्य काव्य बनता है और उसके बाद गद्य-काव्य, इसका कारण यह है कि पद्य नियताक्षर होता है अतएव शीघ्र कण्ठस्थ हो जाता है और लोगों को याद करने में अधिक परिश्रम करना नहीं पड़ता। हमारी समझ मे पद्य बनाना सहज है और गद्य लिखना कठिनहै क्योंकि दो चार शब्दों के सुन्दर होने से सम्पूर्ण पद्य मनोहर जँचने लगताहै इससे बहुत प्रशंसा होने लगती है। गद्यमे वह बात नही है जब तक सारा सन्दर्भ अच्छा नहीं होता तबतक कोई उसकी स्तुति नहीं करता। विचारे गद्य लेखकों को यह भी कहने का स्थान नहीं है कि हम छन्द और अन्त्यानुप्रासों से जकड़े हुए हैं इससे अच्छी कविता नहीं कर सके।

हिन्दी (जिसमें आजकल पुस्तक और समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं) विलक्षण ढङ्ग की भाषा है जिसमें अभी तक लोग

पद्य लिखने से हिचकते हैं परन्तु ब्रज भाषा में बने हुए काव्यों को हिन्दी का पद्य काव्य मानते हैं।

इस समय पद्यों की बड़ी दुर्दशा हो रही है। कोई कहता है कि ब्रजभाषा में पद्य रचना होनी चाहिये। कोई उसके विरुद्ध बोल चाल की भाषा अर्थात् खड़ी बोली में पद्य काव्य लिखना स्वीकृत करता है परन्तु दोनों में से कोई अपनी बात को कार्य्य रूप में परिणत नहीं करता है।

आज कल ब्रजभाषा के नाम से जैसी भाषा में कविता हो रही है। वह ब्रज भाषा नहीं है वह अनिर्दिष्ट नाम धेय कवियों की बनाई स्वतंत्र भाषा है। खड़ी बोली के कवि भी ब्रज भाषा पक्ष पातियों की क्रियाओं को जहीं २ पर लिखने लगे हैं जिन्हे बोल चाल में कभी नहीं सुनते हैं। इसका उदाहरण सरस्वती में छपी हुई खड़ी बोली की कविताओं में मिलता है।

कितने लोग कहते हैं कि हम जिस भाषा में कविता लिखते हैं उसे कोई ब्रज में नहीं बोलता इससे कोई हानि नहीं क्योंकि तुलसीदास प्रभृति ने भी पंचरंगी भाषा में कविता लिखी है वह जैसे दोष रहित समझी जाती है वैसे हमारी कविता भी समझी जानी चाहिये इसका उत्तर लोग यह देते हैं कि वह धार्मिक थे सब को धर्म्म पथ में प्रवृत्त करने के लिये उन्हों ने सब भाषाओं के शब्द अपनी कविता में रख लिये अथवा अपनी कविता की भाषा को वह कभी ब्रजभाषा कहते भी नहीं थे अतएव उनके साथ आप का साम्य नहीं है।

कैसा अन्धेर है कि जो लोग यह भी नहीं जानते कि ब्रज भाषामें शकार, षकार और णकार नहीं होतेवे भी अपनेको ब्रज भाषा का कवि समझते हैं और अपनी कविताओंको इन अक्षरों से दुष्ट करते हैं।

कविगण स्वभावतः निरङ्कुश होतेहैं परन्तु उनकी निरङ्कुशता की सीमा होती है सीमोल्लङ्घन करके वे जो चाहें सो नहीं लिख सकते कवि माधुर्य्यता लाने अथवा छन्दों के बैठानेके लिये शुद्ध शब्दो के रूपों को अपभ्रंश करके लिखतेहैं, आजकल इसकी

रीति ऐसी उच्छृङ्खल हो गयीहै जिससे पढ़नेवालों को शब्दोंके पूर्व रूप शीघ्र ज्ञात नहीं होते और कविताओं मे अप्रयुक्त तथा अश्लीलादि दोष आ जुटते हैं इसके थोड़े से उदाहरण "विक्टो-रिया अष्टादशी" से चुन कर लिख देते हैं जैसे औशि, निन्दितार, पनधारी, मे और कै इत्यादि ।

आजकल जिन्हें अन्त्यानुप्रास (तुकान्त) जोड़ने नहीं आता वेही अपना नाम कवियोंकी श्रेणी में नहीं लिखवाते सो तुकान्त हिन्दी की बड़ी रक्षा कर रहा है नहीं तो गुण, दोष, रीति और अलङ्कारों से अनभिज्ञ रसिक नामधारियों से हिन्दी का श्राद्ध होता और बड़ी हानि होती । न जानें क्यों थोड़े से पढ़े लिखे बिना तुकान्तकी कविताकर बड़ाभारी बखेड़ा मचाया चाहते हैं।

जिस छन्द में अक्षरों की गिनती होती है उसे वृत्त और जिसमे मात्राओं की संख्या होती है उसे जाति कहते हैं । सवैया (यह किसी विशेष छन्द का नाम नहीं दुर्मिल प्रभृति कई छन्दों को सवैया कहते हैं) छन्दको प्राचीन कवियों ने वर्ण वृत्त और जाति दोनों में परिगणित किया है आजकल वर्णवृत्त सवैया छन्द की बड़ी दुर्दशा कुकवियों ने कर डाली है जिससे लक्ष्य में किसी वृत्त सवैया का लक्षण ही नहीं सङ्गत होता है अब इसकी ओर एक दो विद्वानों का ध्यान गया है वे इसके सरल अथवा सा-मान्य दोषों को सूक्ष्म विवेचनाके द्वारा क्षन्तव्य और विशेष दोषों को त्याज्य बतलाते हैं, हमारी समझ में तो यह बात आती है कि जिस सवैया के पद्य में दुर्मिल, किरीट, और मंजरी इत्यादिक के लक्षण नहीं मिलें उसे सर्वतोभाव से अशुद्ध ही समझ लेना चाहिये, चाहे वह किसी बड़े से बड़े सुकवि का ब-नाया हो ।

कवित्त छन्द (मुक्तक के अवान्तर भेद) में भी ऐसी उलझन आगयी है उसके सुलझाने के लिये "छन्दप्रभाकर" मे भानुकवि ने बड़ा परिश्रम किया है वह बहुत अंश में समीचीन जान पड़ताहै क्योंकि कवित्त वर्ण वृत्त और गणोंसे मुक्तहै अतएव मुक्तकके अन्त-र्गत समझा जाता है उससे सम और विषम का विचार सहृदया-

नुमव से किया जाता है । वर्ण वृत्त सवैया गद्यवद् है अतएव उसमें आज कल की कल्पनाकी आवश्यकता नहीं है ।

वर्त्तमान साधारण कवि इन्हीं दो चार छन्दोंसे अपना काम निकालते हैं इस लिये इनपर हमने कुछ थोड़ीसी बातें लिख दीं ।

जिन्हें भगवान्ने छन्द का परिज्ञान दिया है वे अब एक नये ढङ्ग का अन्धेर मचा रहेहैं अर्थात् पांच २ पन्नेकी पुस्तकमें भिन्न २ प्रकार के पचीसों छन्दों का प्रयोग करते हैं जिससे पुस्तक पढ़ने वालों के मनोयोग नष्ट हो जाते हैं और उनकी आनन्दधारा विलीन हो जाती है ।

कितने लोग मन गढ़न्त छन्दोंमे कविता करतेहैं और इसका कारण पूछने पर उत्तर देते हैं कि यह छन्द प्रस्तार से निकल आवेगा यदि कोई उनसे पूछे कि किस छन्द की किस संख्या के प्रस्तार का यह रूप है तो चुप हो जाते हैं ।

काव्यसुधाधर और रसिकमित्र प्रभृति से पद्य की दशा सुधरने की आशा हुई थी परन्तु उनके नेता लोग द्वेष से भरे, भ्रान्तियुक्त और निरर्थक साहित्य हत्या तथा हत्याहरण प्रभृति प्रबन्धों के प्रकाशित करने और शाल और दुशालों के बांटने में लगे हुए हैं ।

एक सहस्त्र वर्ष से भारतवर्ष की बुरी अवस्था है अतएव यहां के लोगो की रुचि विद्या, व्यापार, वीरता और प्राकृतिक छटाओं की ओर नहीं है इसी से इन विषयोंकी कविता मिलती नहीं । कवि गण ने भी गिरते भारत को नहीं सम्हाला पिछली पर धक्के की कहावत चरितार्थ कर शृङ्गार रस की कविताओं से सब को भोग विलासी (ऐयाश) बनाही दिया । अब दो चार कविता देशोपकारीय विषयों की दृष्टिगोचर होने लगी है ।

—:०:—

गद्य काव्य
अथवा
उपन्यास
(मन्तव्य)

जिसमें छन्दों का विचार करना न पड़े उसे गद्य कहते हैं अर्थात् जो सुनने में पूर्ण रूप से पद्य सा प्रतीत नहीं होता है वह गद्य है।

गद्य काव्य "साहित्यदर्पण" में दो प्रकारके, "अग्निपुराण" में पांच प्रकार के और "गद्यकाव्य मीमांसा" मे नव प्रकार के माने गये हैं परन्तु पहले के दो ग्रन्थों में कहीं पर गद्यकाव्य के लिये उपन्यास शब्द व्यवहृत नहीं हुआ है, अन्तिम ग्रन्थ में श्री अम्बिकादत्त व्यास जी ने लिखा है कि "प्राचीन समय में उपन्यास पद गद्यकाव्य वाचक न मिले तौ भी अब यह शब्द ऐसाही हो गया है" इत्यादि।

दृश्य काव्य में प्रसङ्ग से कार्य्य के कीर्त्तन को और अन्यत्र वाङ्मुख अर्थात् वचनारम्भ को उपन्यास कहतेहैं। अतएव संस्कृत में उपन्यास शब्द का अर्थ गद्यकाव्य (विशेष) नहीं है और यह शब्द संस्कृत ही का है। बङ्गाल, पश्चिमोत्तर, राजपुताना, सिन्धु, मालवा, मध्यप्रदेश, उत्कलदेश, गुजरात और पञ्जाब में प्राय: गद्यकाव्य विशेष (नौवेल) को उपन्यास कहते हैं किन्तु इस नाम के होने का कारण कोई नहीं बतलाता। जिसके नाम का ठिकाना नहीं उसकी और कीर्ति कहाँ तक अच्छी होगी। इस समय हिन्दी के उपन्यासों से भारत वर्षीय लोगों के हृदय पर विष वृक्ष अङ्कुरित हो रहे हैं और हिन्दी भाषाके लिखनेकी शैली बिगड़ रही है। बिचारी हिन्दी को चौपट करने, और पाठकों को अकर्मण्य, निरुत्साह तथा विलासी बनाने के लिये काशी में कई एक उपन्यास के कार्य्यालय खुले हैं और उनसे कई उपन्यास सम्बन्धी मासिकपत्र निकलते हैं। (क्या भोलानाथ इन

उपन्यास मासिक पत्रों (पुस्तकों) के द्वारा भारत का संहार करेंगे)।

इस समय उपन्यासों में मनोकामना, अन्तःकरण, उपरोक्त, ग्रसित, विद्रुप और सत्यनाश इत्यादि सैकड़ों अशुद्ध शब्द लिखे जाते हैं और व्याकरण की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है।

इनका कथा भाग प्रायः एकंही ढङ्ग का होता है अर्थात् कोई राजकुमार (कभी साधारण मनुष्य) किसी स्त्री पर आसक्त होता है और उससे मिलने के लिये तड़पता है। दूसरा उसमें बाधा डालता है और चाहनेवाला बड़े परिश्रम से प्रेयसी को प्राप्त करता है अथवा उसके वियोग में अकथनीय अवस्था को पहुँच जाता है इत्यादि।

यहाँ की क्षत्रिया वीरसुता, वीरप्रसविनी और बड़ी धर्म्मवती होती थीं और क्षत्रिय अपने कुल और धर्म्म की मर्यादा रक्षा करने में तनिक भी नहीं चूकते थे देखिये एक इतिहास लिखनेवाले ने लिखा है कि क्षत्रियों ने अपनी पुत्रियों के बदले में दासी बादशाहों को दी थीं और उनकी पुत्रियों ने धर्म्म बचाने और अपने पिता की राजनैतिक चाल की रक्षा के लिये अपने प्राण गुप्त रूप से देदिये थे। राजपुताने के वृद्ध लोग कहते हैं कि क्षत्रिय समाज ने अपनी पुत्रियों के बदनाम करने और दासियों को धर्म्म च्युत कराने वाले क्षत्रियोंका सम्पर्कछोड़ दिया था अतएव सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति किसी प्रकार से निन्दा का भाजन नहीं है।

आजकल "जादूगर" इत्यादि उपन्यासों में क्षत्रियोंकी बड़ी दुर्दशा की गयी है उक्त जादूगर मे एक क्षत्रिय कन्या मुसलमान बादशाहको प्रेयसी बनायी गयीहै और उसके सम्बन्धी भडुए बनाये गये है चाहे इसका बचाव अन्त मे हो परन्तु ग्रन्थकार ने हिन्दी भण्डार को दूषित किया (न जाने कलम की काली स्याही किस के मुँह पर फिर गयी) यदि इसके समान ग्रन्थोंके बनानेवाले हिन्दी

में ऐसा लिखना छोड़ देंगे तो हिन्दू, हिन्दुस्तान और हिन्दी तीनों की अवश्य भलाई करेंगे।

बड़े लोग अपने घर के दोषों को छिपाते हैं आज कल के सुपूत लोग काल्पनिक कथाओं से अपने घर पर झूठे दोषों को आरोपित करते हैं भला ऐसे लोगों के बिना भारतवर्ष का कौन काम रुका था जो इन लोगों ने इस पददलित देश को पवित्र किया।

मान लिया जाय कि दो चार क्षत्रियों ने मुसल्मानों को अपनी कन्या दी थीं और इसका लिखना उपन्यासों में अत्यावश्यक है तो ग्रन्थकार सच्चे नाम धाम और सच्ची कथा लिखें और इसका आनन्द लूटें। वे झूठे नाम और ग्रामके द्वारा झूठी कथा कल्पित कर सम्पूर्ण क्षत्रिय समाज को निन्दित न करें क्योंकि जो बात जिस समाज के झूंठे नाम ग्राम से कही जाती है वह सामान्य रूप से सारे समाज के लिये समझी जाती है।

सुनते हैं कि "राजपूत महासभा" ऐसे २ ग्रन्थकारोंकी सुधि लेनेवाली है अतएव ग्रन्थकार लोग ऐसी पुस्तकोंका बनाना बन्द कर देवें और प्रकाशक छपी हुई भ्रष्ट पुस्तकों को गङ्गा जी में बहवा दें नहीं तो लेने के देने पड़ जायँगे।

संस्कृत में उपन्यास के ढङ्ग की पुस्तकों के नाम कथा और आख्यायिका प्रभृति होते हैं। प्राचीन कवियों ने इस प्रकार की पुस्तकों की उन्नति नहीं की क्योंकि वे समझते थे कि ऐसी पुस्तकों से बड़ी हानि होगी।

आज कल राजा और महाराजा उपन्यास लेखकोंकी सहा-

चला कर एक विष वृक्षका बाग़ (आराम) प्रस्तुत कर रहेहैं जिस के पुष्प और फल दोनों भारतवर्षियों को सम्मोहित कर ज्ञान शून्य कर देंगे जिससे सब के सब एक बार धूल में मिल जांयगे यदि उन लोगों की सहायता करनी अभीष्टहै तो व्याकरण और विज्ञानादिक की पुस्तकों के लिखने वालों की सहायता करें जिससे देश का मंगल हो।

घुणाक्षर न्याय से दीनानाथ और दलित कुसुम इत्यादिक दो चार उपन्यास अच्छे बन गये हैं और बङ्किमचन्द्र के ग्रन्थों के जो हिन्दी में अनुवाद हुए हैं वे भी बुरे नहीं है।

"गद्यकाव्यमीमांसा" के मत से "जासूस" में छपती हुई कथाओं की गिनती उपन्यासों मे है वे अत्यन्त सुन्दर और शिक्षा दायक हैं।

बहुत से स्कूली लड़के आजकल के उपन्यासों के पढ़ने में आसक्त होकर परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते और विलासी बनते जाते हैं।

एक बनिये ने उपन्यास पढ़ने के समय ग्राहकों को फेर देने के कारण अपने लड़के को कुछ कड़ी बात कही इसपर लड़का भी रुष्ट हुआ अतएव दोनों मे वैमनस्य हो गया न जाने इन बुरे उपन्यासों के कारण कैसी कैसी घटना होती होंगी।

रूपक और गीति

अथवा

नाटक और गाना

सभी दृश्य काव्यों को संस्कृत में रूपक और हिन्दी में नाटक कहते हैं। बाबू हरिश्चन्द्रजी के बाद भी इसकी ओर लोगों की रुचि बहुत थी अतएव उस समय कुछ नाटक अच्छे लिखे गये अब लाला सीताराम बी०ए० इसकी सुध लेतेहैं नहीं तो हिन्दी अक्षर के लिखने वाले बहुत से महात्मा प्रायः उपन्यासों की ओर झुक पड़े हैं। आजकल सामाजिक सुधार के लिये दो चार नाटक लिखे जाते हैं परन्तु उनमें "नाटक" नामक पुस्तक के नियम प्रतिपालित नहीं हैं अतएव उन्हें हम नाटक नहीं कह सकते। कितने लोग पारसी थियेटरों की धुन पर गीत बना कर "भारत हिमहिमा नाटक" प्रभृति नाम रखते हैं वे भी नाटक नहीं हैं क्योंकि उनमें नाटकों के लक्षण सङ्गत नहीं होते।

सच पूछिये तो आज कल गीतही कौन बनाता है हिन्दी में तो इसके लिये कोई नियम ग्रन्थही नहीं है जिसके जो जी में आता है सो लिख लेता है। कोई रोकटोक करनेवाला नहीं है। रोके भी किस बल से? कोई ताल स्वर के प्रेमी विद्वान् संस्कृत का सहारा लेकर गीतका नियम ग्रन्थ बना देता तो हिन्दीका बड़ा अभाव दूर होता। ऐसे नियम ग्रन्थ के नहीं होने से ही कूड़ा कर्कट से भरी अधिक गाने की पुस्तक प्रकाशित होती हैं।

दिक्पाल छन्द आदि भी गाये जा सकते हैं क्योंकि रेखता आदि गीति इन्हीं के ढङ्ग पर होती हैं।

विज्ञान शास्त्र और शब्द कोष

लौकिक और पारलौकिक के भेद से विज्ञान दो भागों में विभक्त है। लौकिक विज्ञान की उन्नति से मनुष्यों को संसार में सुख प्राप्त होता है सो हिन्दी में इसकी "सरलविज्ञानविपट" आदिक कई पुस्तकें हैं परन्तु उनसे पूरा २ काम नहीं चलता है अतएव भारी २ विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवाद होने के निमित्त काशीसे वैज्ञानिक कोष प्रकाशित हो रहा है किन्तु उसमें लिङ्ग निर्देश और पारिभाषिक शब्दों के अर्थ नहीं रहने से ग्रन्थ सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं हुआ। यही अवस्था सर्व विषयोपयोगी "गौरी नागरी कोष" की समझनी चाहिये।

पारलौकिक विज्ञान की हिन्दी में अच्छी अवस्था है। दिनों दिन अच्छे २ ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद छप रहा है और बहुत से संस्कृत की सहायता से विज्ञान सम्बन्धी नवीन ग्रन्थ छप चुके हैं।

वेदान्त और सांख्यादिक पारलौकिक विज्ञान के ग्रन्थ हैं और वे इस समय बहुत दीख पड़ते हैं।

काशी के सुदर्शन मासिक पत्र में भी इसका बहुतकुछ चर्चा रहता है।

शोक है कि सर्व विषय पूर्ण एक भी हिन्दी कोष नहीं मिलता। क्योंकि सब में कुछ न कुछ त्रुटि रहही गयी है।

—:o:—

भूगोल और इतिहास

"भूगोलहस्तामलक" प्रभृति कईएक सुन्दर ग्रन्थ हिन्दी में वर्त्तमान हैं दिनोंदिन इस विषय की पुस्तक और प्रश्नोत्तर प्रकाशित होते जाते हैं इसका कारण यह है कि ऐसी पुस्तक सर्कारी पाठशालाओं में पाठ्य रूप से निर्धारित होती हैं।

भारतवर्ष का इतिहास मुहम्मद गज़नवी और औरङ्गज़ेब के द्वेषानल में भस्मीभूत हो गया अतएव हिन्दुओं का अपना कोई पूरा इतिहास नहीं है। परदेशी यात्रियों की यात्रा विवरण पुस्तिका और विशेषतः अङ्गरेज़ी इतिहासों के भरोसे यहाँकी बातें हिन्दी के इतिहासों में लिखी जाती हैं।

इस समय ऐतिहासिक लोग लिखते हैं कि आर्य्य (हिन्दू) यहाँ के प्राचीन निवासी नहीं हैं, तिब्बत से आये हैं। ऋषि लोग गोमांस खाते थे, शराब पीते थे, नदियों के किनारे रहते थे और जड़ सूर्य्यादिक की स्तुति करते थे। वे उस समय ईश्वरको नहीं पहचानते थे इत्यादि।

(क्या कोई इन झूठी बातों का खण्डन करके सच्चा इतिहास नहीं लिख सकता ?। भारतवर्षीय, राजेन्द्रलाल मित्र, रमेशचन्द्रदत्तऔर हरप्रसाद शास्त्री एम०ए० प्रभृतिकी बनायीहुई पुस्तकों के धुर्रे नहीं उड़ा सकता? भारत वर्ष का ऐसा भाग्य कहां!)

यद्यपि देशोद्धारक दयानन्द बाबाने देखादेखी (एक पुस्तक में उन्हों ने लिखा है कि आर्य्य यहीं के रहनेवाले हैं। दूसरी में लिखा है कि तिब्बत से आये हैं) आर्य्यों का तिब्बत से आना दिखलाया है तथापि थोड़े दिनों मे यह बात माननीय नहीं स-

भक्ती जायगी क्योंकि पुरातत्वानुसन्धानकारी ष्टीन साहब प्रमाण के साथ कहते हैं कि आर्य्य लोग तिब्बत से नहीं आये ।

भारतवर्ष का सच्चा इतिहास हिन्दी में एक भी नहीं है । "पुरावृत्तसार" प्रभृति दूसरे देशों के इतिहास अच्छे हैं ।

—:o:—

ज्यौतिष ।

इस समय बीजगणित, पाटीगणित और रेखागणित की बहुत सी अच्छी २ पुस्तक प्रकाशित हुई हैं इनकी रचना में प्रायः अंग्रेजी भाषा की सहायता ली गयी है ।

इधर कई बरसों से गवर्नमेण्ट का ध्यान हिन्दी शिक्षा की ओर है इससे उक्त प्रकारकी पुस्तकोंकी रचना होतीही जातीहै ।

संस्कृत के सिद्धान्त ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्तादि का हिन्दी में अनुवाद हुआही चाहता है कई पण्डित इस विषयमें प्रयत्न करतेहैं ।

जातक और मुहूर्त्त ग्रन्थों की बहुत अच्छी २ टीकाएं प्रकाशित हो चुकी है और हो रही हैं खेद है कि इसके जानने वाले गणित में परिश्रम नहीं करते हैं । साधारण लोग भी हिन्दी ज्योतिष की सहायता से विवाहादिक का मुहूर्त्त ठीक कर लेते है ।

"केरल सामुद्रिक स्वर ज्योतिष शास्त्र संग्रह" नामक पुस्तक इस विषय की अच्छी है । आरा का एक बंगाली भी हिन्दी में उक्त प्रकार की पुस्तक लिख रहा है ।

—:o:—

धर्म्म ग्रन्थ।

(मूल, टीका, खण्डन और मण्डन की पुस्तक)

आर्य्यसमाज और धर्म्मसभा दोनों खण्डन और मण्डन की पुस्तकों के प्रकाशित करने में लगी हैं। चारों वेदों का अनुवाद हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।

इटावा से पं० भीमसेन शर्म्मा का "ब्राह्मणसर्वस्व" मासिक पत्र प्रकाशित हो रहा है वह खण्डन और मण्डन के रसिकों के देखने योग्य है।

ईसाई हिन्दुओं के देवता की निन्दा में अब नवीन पुस्तक नहीं लिखते हैं। आर्य्यसमाजियों की भूल दिखाने के लिये इन लोगों ने इधर "वेदों के रचक कौन थे, और आर्य्यतत्वप्रकाशादिक" कई एक पुस्तकें लिख कर प्रकाशित की हैं "वेदप्रकाश" मासिकपत्र में उक्त पुस्तकों का संक्षेप से उत्तर छपा है लोग कहते हैं कि आर्य्यसमाज को उक्त पुस्तकों के उत्तर में कोई बड़ी पुस्तक छपवानी चाहिये।

श्रीयुत सेठ गङ्गाविष्णु और खेमराज ने बहुत से पुराणों का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया है। इन लोगों के द्वारा नागरी का बहुत कुछ उपकार हो रहा है। गङ्गाविष्णु जी विवाह मे गाली देना बन्द करने के लिये, असद्वादनिषेध, कुरीतिध्वान्त मार्त्तण्ड और कुमार्ग संशोधनचन्द्रिका प्रभृति पुस्तकों को प्रकाशित कर विना मूल्य बांट रहे हैं।

एक मुसलमान ने हिन्दी में "हिदायतुलमुस्लमीन"

नामक पुस्तक छपवायी है जिसमें नमाज़ पढ़ने आदि की विधि लिखी हुई है ।

—:o:—

संग्रह ग्रन्थ ।

जो विचारे टूटी फूटी हिन्दी लिख कर ग्रन्थकार नहीं बन सकते उनकी इच्छा संग्रह के द्वारा सिद्ध हो जाती है अर्थात् टाईटिल पेज पर नाम छप जाता है और वे संग्रह कर्त्ता कहलाने लगते हैं हिन्दी में संग्रह ग्रन्थ थोड़े से अच्छे हैं ।

—:o:—

स्फुट

(फुटकर)

शेष ग्रन्थों की साधारणावस्था है ।

—:o:—

निवेदन

यदि यह लेख तनिक भी रुचिकर होगा तो समाचारपत्रादिकों की वर्त्तमानदशा लिखने का उद्योग करूंगा ।

चौक आरा
(शाहाबाद)

हिन्दी का सेवक
काव्यतीर्थ और व्याकरणतीर्थ
सकलनारायण पाण्डेय

समालोचक और पत्रसम्पादक

समालोचक का पहला अङ्क पाकर अनेक सम्पादकों ने उस की समालोचना करने की कृपा की है। उनमें से हिन्दोस्थान, अवधसमाचार, भारतजीवन और प्रयागसमाचार की समालोचना हमको देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। खुशी की बात यह कि जो दो चार लाइन में काग़ज़ और छपाई अच्छी है, कटाई भँटाई अच्छी है, अमुक मूल्य पर अमुक स्थान से मिलती है पु-स्तक के वास्ते इतनाही लिखकर समालोचना पूरी करलेथे उन्हों ने भी समालोचक के लिये कई कालम लिख डाले हैं। और किसी ने एक बार अपने पत्र में जगह न पाकर वारान्तर में और लिखने की प्रतिज्ञा की है। इसीतरह जब सम्पादक गण समालोचना को खोगीर की भरती न समझ कर उसे अपने कर्त्तव्य कर्म्मों में स-मझने लगेंगे तब भरोसा है समालोचना का एक दिन हिन्दी की दुनियां में अवश्य आदर होगा जो भाषा की उन्नति के लिये पहली सीढ़ी है।

हिन्दोस्थान ने तीन चार कालम लिखा है, लेकिन दुःख की बात इतनी कि उतना लिखने का कष्ट स्वीकार करने पर भी सहयोगी जी कुछ युक्ति सङ्गत बात नहीं लिख सके हैं।

सम्पादक महाशय समालोचक के लेखों से सहमत हैं, वरन् इस भी उत्तम बतलाते हैं किन्तु भाषा में मुहाविरे और व्याकरण का दोष लगाते हैं। कुछ वाक्य सम्पादक महाशय ने समालोचक से उद्धृत किये हैं लेकिन उनमें कोई मुहाविरे का दोष नहीं दीख पड़ा। उनकी एक एक बात का उत्तर देने की तो इच्छा नहीं थी क्योंकि विद्वान लोग समालोचक का अङ्क और हिन्दोस्थान

पत्र में छपी हुई समालोचना जब सामने रख कर पढ़ेंगे तब समझ जायंगे कि हिन्दोस्थान के सम्पादक महाशय का दोषारोपण कहां तक ठीक है। तौ भी हम एक विद्वान की लिखी हुई हिन्दोस्थान की समालोचना समीक्षा अन्यत्र प्रकाशित करते हैं जिससे सम्पादक हिन्दोस्थान का समालोचक पर जो भावहै वह प्रगट हो जायगा। इसके सिवाय श्रीमान सम्पादक प्रवर भारतजीवन के सभ्यतापूरित आक्रमणका उत्तर भी हमारे पास आया है लेकिन समालोचक को ऐसे लोगों से स्वाल जवाब और वाद-विवाद करने का समय और स्थान दोनों नहीं हैं जो बिना समझे बूझे झगड़ते और कुवाक्य प्रहार करके अपनी लेखनी का बड़प्पन प्रगट करते हैं।

सहयोगी अवध समाचार ने हिन्दोस्थान की समालोचना को पुष्ट किया है और हमारी एक भूल पर हमको बहुत कुछ कहा है वह भूल यही थी कि फैक्ट (Fact) शब्द का हमने हिन्दी अनुवाद नहीं किया था। इसलिये कि हिन्दोस्थान पत्र की शङ्काओंका जवाब एक जगहछापा गयाहै और अवधसमाचार उसी की हाँ में हाँ मिलाता है अलग उसकी बातों का उत्तर लिखना अनावश्यक समझा गया।

—:o:—

खड़ी बोली का अनुकूल समय।

मेरी डायरी (Diary) के पृष्ट ३३—३४ में पण्डित केशवराम की एक चिट्ठी छपी है जिसमें उन्होंने लिखा था :—

(१) पण्डित श्रीधर पाठक को चुपचाप बैठने न दीजिये। साहित्य भंडार में यह कुछ संचय करते जायं।

(२) समालोचना उन्नति की पहिली सीढ़ी है। जिस देश में लेखकों को समालोचकों का भय नहीं, लेखक निरङ्कुश रहते हैं। लेखों को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का उद्योग नहीं करते।.........

इस समय हिन्दी में एक ऐसा पत्र अत्यावश्यक है, जिसमें हिन्दी सम्बन्धी सब विषयों की समालोचना रहा करें। हमारे जानते खड़ीबोली आन्दोलन इसी का एक अङ्ग है। हिन्दी का इतिहास भी इसी का अंग हो सकता है। "समालोचक" या और कोई अच्छा नाम रखकर मासिक या त्रैमासिक कोई पत्र निकाला जाय तो हिन्दी का बड़ा उपकार हो। ... ...

पण्डित श्रीधर पाठकने २३ मार्च १९०१के बाद Goldsmith के Traveller का अनुवाद "भारतमित्र में" ३० अगस्त १९०२ के अङ्क से फिर छपवाना शुरू कर दिया है। अगस्त १९०२की "सरस्वती" में भी पण्डित वागीश्वर मिश्र की एक खड़ी बोली कविता ("आकाश मंडल" शीर्षक) छपी है।

जयपुर से "समालोचक" नामक मासिकपत्र अगस्त १९०२से बाबू गोपालराम गहमर निवासी द्वारा निकला है। इसमें भी एक लेख खड़ी बोली के पक्ष में "पद्य की भाषा" शीर्षक छपा है।

"समालोचक" के सम्पादक को मैं सम्मति देता हूं कि पण्डित केशवराम भट्ट भी समालोचक समिति के एक सभ्य बनाये जायं।

मुज़फ्फ़रपुर,
१२—९—०२। अयोध्याप्रसाद

—:o:—

दैनिकपत्र हिन्दोस्थान
की
आलोचना।

(समालोचक की समालोचना इस नाम के लेखकी समीक्षा) उक्त पत्र से हिन्दी का बड़ा भारी गौरव है क्योंकि हिन्दी में इसके अतिरिक्त दूसरा कोई दैनिक समाचारपत्र नहीं है। इसके अध्यक्ष, समरविजयी, राजा रामपालसिंह जी हिन्दीके पूर्ण प्रेमी हैं जो सहस्त्रों रुपयों की हानि उठा कर इस पत्र को प्रकाशित करते हैं। यह पत्र कालाकांकर से निकलता है और इसके कई सौ ग्राहक हैं।

इसके सम्पादक भारतमित्र, वेङ्कटेश्वर समाचार और हिन्दी बंगवासी का ढर्रा पसन्द नहीं करते और नयी चाल से इसका सम्पादन करते हैं।

हिन्दोस्थान यह नाम अशुद्ध है। इसमें मनोहर नाटक, उपन्यास और कविता नहीं छपती इसीसे इसके ग्राहक कम हैं या क्या इसमें प्राय: अंग्रेज़ी पत्रों के अनुवाद छपते हैं अतएव इसके सम्पादकों की प्रतिभाओं से सम्पन्न लेखोंका पूर्ण आनन्द पाठकों को नहीं मिलता या और कुछ कारण है इत्यादि बातों पर मैं विचार करना नहीं चाहता।

हिन्दीकी मङ्गल कामनासे यह लेख मैं ने लिखा है। आशा है सभी सम्पादक और पाठक इस पर ध्यान देंगे।

सं०१९०२ के हिन्दोस्थान में जयपुर से प्रकाशित समालोचक मासिकपत्र की समालोचना छपी है। शीर्षक देख कर मैं ने अनु-

मान किया कि आज बड़ा आनन्द होगा क्योंकि हिन्दी के समाचारपत्र और ग्रन्थों की समालोचना करने वाले समालोचक की समालोचना पढ़ूँगा परन्तु ज्योंही मैंने पढ़ना आरम्भ किया त्यों ही हेतु दुष्ट ज्ञात हुआ अतएव अनुमिति नहीं हुई और आनन्द भी नही हुआ ।

(१) समालोचना शीर्षक लेख में आठ दस पँक्तियोंके भीतर "स्यात्" और "सराहनीय" दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं, वे दोनों अशुद्ध हैं इनमें पहला शब्द संस्कृत का है और उसका शायद अर्थ नहीं होता । दूसरे शब्द में सराहना धातु हिन्दीका है अतएव उससे संस्कृत का अनीयर प्रत्यय नही हो सकता जितने लोग इन दोनों शब्दों का प्रयोग करते हैं वे सभी भ्रम में पड़े हुएहैं ।

(२) विद्वान् मुहाविरे को लिखने और बोलने के भेदसे दो भागों में विभक्त करते हैं सो हिन्दोस्थान पत्र में पहले मुहाविरे की ओर कुछ भी ध्यान नही दिया जाता देखिये "जिसके प्रोप्राइटर मि० जैन वैद्य जयपुर हैं" सभी प्रोप्राइटर लिखते हैं इसमें इसके विरुद्ध क्यों ? ।

यदि उक्तवाक्य की व्याकरणानुसारिणी टीका की जाय तो यह वाक्य अवश्य अशुद्ध ठहरे क्योंकि जैन वैद्य उद्देश्य होंगे और जयपुर विधेय होगा जिसका अर्थ यह निकलेगा कि जैनवैद्य जयपुर निवासी नहीं किन्तु जयपुर है । वाह कैसा सुन्दर वाक्य है । विचारा प्रोप्राइटर पद विधेय है वह उद्देश्य कोटि में कर दिया गया है और जयपुर निवासी शब्द का निवासी इतना अंश लुप्त किया गया है फिर क्यों न गड़बड़ हो ? ।

(३) जहां विकल्पार्थ दिखाना अभीष्ट रहता है वहाँ पर वा शब्द का प्रयोग होता है अतएव "नियमों और आगमन के हेतु

था .... सूचना पायी जाती है" इस वाक्य में वा शब्द का प्रयोग करना अशुद्ध है क्योंकि समालोचक मासिकपत्र में नियम, आगमन कारण और सूचनादिक बहुत सी बातें निश्चित रूप से वर्णित हैं।

(४) "जिन ऐसे दोष विद्यमान हैं वे न तो ... समालोचक होही सकते हैं" इस सन्दर्भ में जिन शब्द के आगे अधिकरण का चिन्ह नहीं है। दूसरे के सन्दर्भ में दोष दिखलाने को सम्पादकजी प्रस्तुत हुए परन्तु उन्हीं के सन्दर्भ में दोष दृष्टिगोचर हुआ।

(५) 'सब समालोचना के लिये झँखते पटकते हैं" इस रेखाङ्कित पद को हिन्दोस्थान सम्पादक जी मुहाविरे के विरुद्ध बतलाते हैं मेरी समझ मे यह पद मुहाविरे के अनुकूल है क्यों कि जहाँ अभीप्सित अर्थ सिद्ध होताहुआ नहीं दीख पड़ता वहाँ उक्त पद का प्रयोग होताहै और यहाँ ऐसाही विषयहै। "हिन्दी की दबती कुचलती दशा" इसके रेखाङ्कित पद में सप्रयोजन लक्षणा है अतएव यह दोषावह नहीं। सम्पादक जी! आप ने हिन्दोस्थान में "महाविरे की टाँग" ऐसा पद लिखा है कहिये आपने महाविरे की टाँग कब, कहाँ और किसके सामने देखी थी जिसे समालोचक ने तोड़ दी है? महाशय! आपके इन विचारों से यह भी मुहाविरे के विरुद्ध है परन्तु मेरी समझ से यहाँ भी लक्षणा हो सकती है।

(६) "सुवर्ण रत्न जवाहिरात, खाक कंकड़ पत्थर इत्यादि कह कर वृथालाप किया गया है" इस सन्दर्भ मे उक्त दैनिक पत्र के सम्पादक ने बड़ी विचक्षणता प्रकाशित की है समालोचक में सुवर्ण, रत्न और जवाहिरात समान उत्तम ग्रन्थोंका खाक, कङ्कड़

और पत्थर समान जघन्य और कुत्सित ग्रन्थों के नीचे दबना बतलाया गयाहै। दो मनुष्यों के परस्पर निरर्थक बात चीत को वृथालाप कहतेहैं नजाने समालोचक सम्पादकने इसमें किससे निरर्थक बात चीत की है जिसे हिन्दोस्थान सम्पादक ने "वृथालाप" लिखा है। ज़रा शब्दोंके अर्थ की ओर भी ध्यान दिया कीजिये।

(७) "इतनाही होता तो असम् था" इस सन्दर्भ में क्रिया वैषम्य दोष हो गया है। उक्त वाक्य में "था" अशुद्ध है यहाँ पर "होता" ऐसी क्रिया होनी चाहिये क्योंकि हेतुहेतुमद्भूत में दो क्रियाएं एक ढङ्ग की होती हैं।

(८) "शब्दों का प्रयोग न करने की ‥ ‥ क़सम" इसमें "का" के स्थान में 'के' शब्द लिखना चाहिये। "अतिआवश्यक" इस पद में सन्धि अवश्य होनी चाहिये क्योंकि यहाँ संहिता-नित्या है।

(९) "स्थानों पर क्रमशः "कि" "और" और "कि" की त्रुटिया हैं" सम्पादक जी इस पँक्तिके द्वारा समालोचककी भ्रान्ति दिखलाते हैं परन्तु स० स० ने हिन्दोस्थान प्रदर्शित स्थानों में कामा और सेमीकोलन का चिन्ह व्यवहृत कर वाक्यों को पृथक् कर दिया है फिर संयोजक अव्यय की क्या आवश्यकता है ?।

(१०) "प्रचार होता तो दिन और दाम बेकाम नहीं जाता" इस सन्दर्भ में हेतुहेतुमद्भूत की क्रिया है यहाँ "यदि" शब्द का अर्थ स्वयं प्रकाशित हुआ करता है अतएव ऐसे स्थल में "यदि" शब्द का नहीं लिखना कुछ दोषावह नहीं है। उक्त वाक्य में दाम के साथ दिन शब्द का प्रयोग वृत्यनुप्रास के लिये मालूम होता है। हिन्दी के लेखकों ने अभी तक यह बात निश्चित नहीं की है कि कहाँ पर 'नही' और कहाँ पर 'न' लिखना चाहिये।

पं० अम्बिकादत्त व्यास जी की इस पर कुछ सम्मति लिखी हुई मिलती है उसे लोग अपूर्ण मानते हैं इस विषय का पहिले एक नियम सिद्धान्त रूप से स्वीकृत कीजिये फिर उसी के द्वारा आलोचना कीजिये। दूरी समझ से उक्त वाक्य में "नहीं" शब्द का प्रयोग ठीक है क्योंकि वाक्य के आदि में 'न' शब्द का और क्रिया के पहले "नहीं" शब्द का प्रयोग होता है अतएव उक्त वाक्य में क्रिया के पहले "नहीं" शब्द का प्रयोग है।

(११) स्त्रीलिंग और पुलिंग की भूलें, और हैं इत्यादि का नहीं रहना कम्पोजिटरों की अनवधानता से हो गये हैं, हिन्दोस्थान में भी "पृष्ठि" इत्यादि अशुद्ध शब्द अक्षरयोजक की भूलसे छप गया है। समालोचक जिस प्रेस में छपता है उसके मेनेजर ने इस बात को स्वीकृत किया है।

(१२) "अखाड़े मे जाकर दण्डपेलने लगते हैं" इस वाक्य के दण्ड पेलने के स्थानसे हिन्दोस्थान सम्पादक कुश्ती लड़ना, ताल ठोकना और ललकारना लिखना ठीक समझते हैं। मेरी समझ से अखाड़े के साथ दण्ड पेलना इस शब्द का प्रयोग बहुत ठीक है क्योंकि कुश्ती लड़ना इत्यादि तीनों बातें युद्धक्षेत्र में भी सङ्घटित हो सकती हैं दण्ड पेलना तो अखाड़े (व्यायाम स्थान) को छोड़ कर किसी दूसरे स्थान में उपयुक्त नहीं समझा जाता। सम्पादक जी ने लिखा है कि समालोचक के साथ दण्ड पेलनेवाले का कुछ सादृश्य नहीं है यह बात ठीक नहीं क्योंकि वक्ष्यमाण प्रकार से सादृश्य संगति होती है। जैसे कोई एक मल्ल दूसरे मल्ल को दिखला कर दण्ड पेलने लगता है दूसरा भी उसे दिखा कर वैसाही करने लगता है इससे हार जीत का निर्णय नहीं होता। वैसे ही समालोचक समालोच्य लेखक को लक्ष्य कर और समा-

लोच्य समालोचक को लक्ष्य कर गाली बकने लगते हैं और प्रकृत बात पर बिचार नहीं करते जिससे उनको भ्रान्ति और सिद्धान्त ज्ञान नहीं होता।

(१३) अकारान्त स्त्री लिंग कर्म के बहुवचन में "एं" से युक्त रूप होता है इसका उदाहरण "आप की बातें हमें अच्छी नहीं लगतीं" इस वाक्य का "हमे" पद दिया गया है सो ठीक नहीं क्योंकि "हमे" पद पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग दोनोंमें सिद्ध होताहै। आय, सोच, विनय आदि अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंका रूप उसप्रकार पर क्यों नहीं लिखते ?

(१४) यदि हिन्दोस्थानके सम्पादक अपने निम्नलिखित वाक्य की व्याकरणानुसारिणी व्याख्या कर दें तो हिन्दी भाषाका बड़ा उपकार हो। व्याख्येय वाक्य यह है "वह मिस्टर जैन वैद्य जौहरी बाजार जयपुर से मिल सकता है"। मेरी समझसे यह वाक्य नितान्त अशुद्ध है।

(१५) खड़ी बोली में कविता करनेका समुचित प्रमाण समालोचक में छपा है न जाने सम्पादकजी ने क्यों लिखा कि "समुचित प्रमाण नहीं दिया गया है।"

निवेदन।

यदि हिन्दोस्थान के सम्पादक गण साधु भाषा में मनोहर लेखों को प्रकाशित करेंगे और यथार्थ रीति से समलोचना किया करेंगे तो मै अपने को अनुगृहीत समझूँगा इतिशम्।

चौक—आरा (शाहाबाद) १३।८।०२ — भवदीय सकलनारायण पाण्डेय

समालोचक समिति—

पण्डित जी श्रीकेशवराम जी भट्ट विहार और पण्डित सकल नारायण पाण्डेय काव्यतीर्थ और व्याकरणतीर्थ चौक आरा समालोचक समिति के सभ्य नियत किये गये हैं। समालोचक समिति की नियमावली सर्वसाधारण के साथ और सभ्योंके साथ स्वतंत्र तैयार हो रही है छपने पर सभ्य महाशय और सर्व साधारण की सेवा में भेजी जायँगी।

समालोचना के लिये अनेक पुस्तक प्राप्त हुई हैं। इस अङ्क में उनकी समालोचना नहीं हुई अगले अङ्क से लगातार समालोचना प्रकाशित होगी। सब आयी हुई पुस्तकों की बारी बारी से समालोचना लिखी जायगी। पुस्तक भेजनेवाले महाशय धैर्य्य रक्खें।

—:o:—

सूचना

जिन महाशयों के पास मँगाये या बिना मँगाये समालोचक का पहला अङ्क पहुँचा है उनको उचित है कि यह दूसरा अङ्क पातेही वार्षिक मूल्य १॥) भेज दें; और जिनको ग्राहक होना नहीं है उन्हें उचित है कि अङ्क लौटा कर कार्ड द्वारा सूचित करें नहीं तो उनके पास तीसरा अङ्क वी० पी० से भेजकर १॥-) लिया जायगा।

जैन वैद्य

मेनेजर—समालोचक

जौहरीबाजार जयपुर

समालोचक।

मासिक पत्र।

सम्पादक।

बाबू गोपालराम गहमरनिवासी

वर्ष १ला } अक्टूबर सन् १९०२ ई० { अङ्क ३

मुद्रित विषय।

प्रोप्राइटर और प्रकाशक।

श्रीयुत मि० जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर

Printed at the Dharmik Press—Prayag

नियमावली ।

१—"समालोचक" हर अङ्गरेज़ी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करेगा ।

२—दाम इसका सालाना १॥) है । साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा और =) का टिकट भेजे बिना नमूना भी नहीं पासकेगा ।

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी । कोई विज्ञापन बिना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा ।

४—आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी । किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी । जिस वस्तु की समालोचना छापी जायगी उसकी न्याय और युक्ति पूर्ण पक्षपात शून्य समालोचना छापी जायगी ।

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा । जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होगी उसके प्रचार का उचित उद्योग किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसा पत्र व पुरस्कार प्रदानादि से उत्साहित किया जायगा ।

६—जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होती है वही छापी जाती है । समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझना चाहिये ।

७—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाज़ीपूर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के व विज्ञापन के मामिले की चिट्ठी पत्री सब समालोचक के मैनेजर मिस्टर जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर के पते पर भेजना चाहिये ।

लेखक और समालोचक।

—:०:—

जगत में साहित्य के इतिहास की पर्यालोचना करनेसे यही दीख पड़ता है कि लेखक और समालोचक में साधरणतः सर्प और नेवलेका सम्बन्धहै। कहीं लेखक अपने समालोचक को घृणा और उपहासकी दृष्टि से देखते हैं। कहीं लेखक अपना तीव्र क्रोध-वज्र उद्यत करके समालोचक कुल ध्वंस करनेके लिये प्रचण्ड वेष ले रणभूमि मे अवतीर्ण होतेहैं। और कहीं लेखक अपनी बुजुरगी और मुरब्बीपने की मात्रा बढ़ा कर समालोचक को कहते हैं— "देखो तुम यह धन्धा छोड़ दो। और स्वयम कुछ लिखना आरम्भ करो जिसमें नाम और यश है। यह काम अच्छा नहीं है। परायी निन्दा और पराया चर्चा छोड़ दो। इससे इस काल में लोग तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखेंगे और उस काल में तुम विस्मृत के अथाह सागर में डूब जावोगे। इसके सिवाय कुछ और लाभ नहीं होगा। इनके सिवाय लेखकों का एक दल और है (जिनकी संख्या कम अवश्यहै) जो समालोचक से बिगड़ कर कहते हैं—"तुम लोगों ने इस समय हमारे लेखों पर अविचार किया है किन्तु भविष्य में जरूर लोग हमारे लेख का आदर करेंगे। ऐसा दिन आवेगा जब मै अपना प्रकृत सम्मान प्राप्त करूँगा। ऐसे लोग अवश्य जगत में जन्मेंगे जिनके निकट तुम लोगों की समालोचना नहीं फटकने पावेगी। लेकिन हमारे लेख से वह मुग्ध हो जायँगे। "कालोह्ययमनिरवधि विपुलाच पृथ्वी।"

यही बात समालोचक के जन्म से हिन्दी की दुनिया में भी हुई है। इसके प्रकाश होने से सबमें खलबली मच गयी है।

कितने हिन्दी लेखक अपनी यथार्थ समालोचना के भय से बड़े व्याकुल हुए हैं। कितने ऐसे हैं जिनका दूसरे की आड़ में नाम चला आता है और जो दूसरेही के नाम और यश का जाम ओढ़ कर साहित्य मन्दिर में ऊँचा आसन लेने की कामना रखते हैं ऐसे अनेक महात्मा भीत हुए हैं। और कितने ही देवताओंने यहाँ तक किया है कि समालोचक के प्रकाशक और मैनेजर को चिट्ठी लिखी है कि सम्पादक झटपट बदलही डालो। नहीं तो बड़ा अनर्थ हुआ चाहता है। इस खलबली में ऐसे भी सज्जन निकले, ऐसे भी सुपूत, ऐसे भी सच्चे साहित्य स्नेही और साहित्य मर्मज्ञ उठ खड़े हुए हैं जिन्हों ने समझा है कि समालोचक उनके समय और धन की बहुत रक्षा करेगा। जो हिन्दी प्रेमी हैं जो हिन्दी पुस्तकों के पढ़ने वाले हैं, वह समझते हैं कि समालोचक उनको पढ़ने का ढङ्ग बतलावेगा जो ढङ्ग जानते हैं उनको पढ़ने योग्य पुस्तकों का पता बतलावेगा, निन्दित, जघन्य और गर्हित लेख पूर्ण पुस्तकों के पाठ से समालोचक उनको दूर रखेगा। जो अच्छे लेखक हैं वह समझते हैं कि सार शून्य कुत्सित् लेख पूर्ण पुस्तकों का ज़ोर घटने से उत्तम पुस्तकों का आदर होगा। जो हिन्दी प्रेमी पुस्तक खरीदकर पढ़नेके पीछे उसका दोष और अवगुण विचार कर अपना समय और धन व्यर्थ गया देख कर पश्चाताप करते थे वह समझते हैं कि समालोचक ऐसी गर्हित पुस्तकों की सूचना और समालोचना लिख कर हम लोगों को पहले ही सावधान कर देगा। जिनके ऐसे सद्विचार है उनको समालोचक के जन्म से खुशी हुई है।

हिन्दोस्थान और भारतजीवन ने "समालोचक" की आलोचना लिखी है हिन्दोस्थान की हर बात का उत्तर समालो-

चक के दूसरे अङ्क में देदिया गया है। कई कालम समालोचना लिख कर हिन्दोस्थानने जो कुछ कहाथा उसका तात्पर्य्य यह था कि समालोचक का उद्देश्य उत्तमहै। लेख जो छपेहैं उत्तमहैं भाषा मे व्याकरण सम्बन्धी दोषहैं और बेमुहावरे पद लिखे गये हैं। मुहावरा (प्रचलित वाक् धारा Idiom) क्या चीज़ है और इसमें किसकी बोलचाल सनद समझी जाती है इस विषय पर हम किसी अगले अङ्क में लिखेंगे। लेकिन जो हिन्दोस्थान हिन्दी साहित्यकी प्रचलित-रीति और मुहावरोंकी आन न मानकर रोज़ दस गढ़े शब्द नये नये साँचे में ढालकर लिखा करता है वह समालोचक के वाक्यों को बेमुहावरे बतलाता है यही आश्चर्य्यहै। सम्पादक महाशय अपनीही बोली को यदि मुहावरा या इडियम (Idiom) समझते हों तब तो समालोचक में अनेक वाक्य बे मुहावरे पावेंगे। लेकिन जिस जगह के लोग अहलज़बां कहलाते हैं जिनकी बोलचाल जिनका लिखना सनद है उनके मुहावरे को याद करने पर सब बामुहावरे पावेंगे।

जहाँ सचिन्ह विभक्ति प्रयोग नहीं है वहाँ पुस्तक का बहुवचन पुस्तकें न करने पर सम्पादक हिन्दोस्थान और सम्पादक भारतजीवन व्याकरण का सूत्र लेकर समालोचक पर टूट पड़े हैं और कहते हैं कि अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का बहुवचन सानुनासिक एकारान्त करके बनाया जाता है। सो सम्पादक समालोचक को इतना भी नहीं मालूम है इत्यादि—

लेकिन हम उक्त सम्पादकद्वय से विनय पूर्वक यह कहना चाहते हैं कि उसी नियम को याद करने से काम नहीं चलेगा। जिन वैयाकरण पण्डितों ने अपनी पोथियों में यह नियम लिखा

है वह अपने उस व्याकरण को आर्य्यभाषा सूत्रधार नहीं कर सके हैं। अर्थात उन्होने ऐसे सूत्र नहीं लिखे हैं जिनका निर्वाह सर्वं प्रचलित वाक्धारा के साथ हो सके । उनके सूत्र वाक्धारा को रोकने के लिये ऐसे अड़ते हैं जैसे कच्चा सूत मत्तमातङ्ग को बाँधने चलता हो ।

कुछ अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के बहुवचन् में सानुनासिक एकारान्त किया जाता है लेकिन सब अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का बहुवचन में सानुनासिक एकारान्त नहीं होता । जैसे आय, देह, सीख विनय आदि शब्दों का बिना चिह्न विभक्ति प्रयोग के समय बहुवचन मे आयें, देहें, सीखें, विनयें कोई नहो लिखता । तात्पर्य्य यह कि वह सूत्र सर्वत्र नहीं चलता ।

हिन्दोस्थान सम्पादक स्वयम अपने पत्र मे "रेलवेओं की आय," लिखते हैं—और दिनों की बात भूल गयी हो तो १५ अक्टूबर का ही हिन्दोस्थान निकाल कर देख लीजिये । बिना विचारे बिना प्रमाण के पूर्वापर विरोधका ध्यान न करके बात कह देना सहज है लेकिन जब उसपर तर्क होता है तब लिखने वाले का भाव और गाम्भीर्य्य प्रगट हो पड़ता है ।

इसको इतना कहने की इसलिये आवश्यकता हुई है कि हिन्दोस्थान हिन्दी भाषा का एक मात्र दैनिक पत्र है उसके सम्पादक श्रीमान आनरेबल राजा रामपाल सिंह जी राजपुराधीश एक बहुत बड़े अनुभवी और सच्चे देशहितैषी, स्वभाषानुरागी पुरुष है । हिन्दोस्थान को स्वयम सम्पादन करते हैं। उनसे विद्या विषयक वादविवाद मे रसही निकलेगा। श्रीमान के

समान सम्पादन क्षमतापन्न आयुजीता और पूर्वानुभवी सम्पादक देशी सम्पादकगण में कोई है ऐसा कहने में भी सन्देह होताहै।

समालोचक के नियमों में साफ़ लिखा है कि समालोचक समिति के सभ्यों को लिखी समालोचना छपेगी। समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझना चाहिये। इस पर भी कुछ लोग समाचार पत्रों में पर्य्यालोचक होकर कहते हैं यह बात कहाँ ज़ाहिर की गयी है? आप ऐसे द्वेषान्ध लोगों के लिये क्या दवा की जाय? समलोचक उनके सामने है नियम उसके टाइटिल पर ही छपा है। उनको आँख भगवान ने दी होगी। जिनको पढ़ने की सामर्थ्य और आँख दोनों गधे की सींग की तरह नदारद है उनको चाहिये कि किसी दूसरे से पढ़वा कर सुन लेते। जो बात उसमें लिखी है उसको भी जो देखता नहीं लिखी है कह कर आँखों पर हाथ रख लेते हैं उनके लिये कुछ दवा नहीं है।

लेखक और समालोचक में जो सम्बन्ध है वह तो रहेहीगा। समालोचक के जन्म से जिनको दुश्चिन्ता और घबराहट हुई है वह दूर करें या न करें, जो समालोचक पर नाहक बिगड़ कर अपनी लेखनी से कुवाक्य निकालते और अपनी सभ्यता प्रगट करते हैं वह अपना दुराग्रह छोड़ें या न छोड़ें हम भगवान से यही चाहते हैं कि समालोचक सदा अपने उद्देश्य पर स्थिर रहे और हिन्दी के सुयोग्य लेखक, अच्छे ग्रन्थकार और भाषा मर्म्मज्ञ इसकी सहायता पर तत्पर रहें।

समालोचना

की

शैली

कैसी होनी चाहिये ?

विद्वानों का ध्यान समालोचना की ओर आकृष्ट हो रहा है अतएव इसकी शैली भी भिन्न २ प्रकार की निकल रही है । आज मै इस विषय में अपनी सम्मति लिखता हूँ ।

सभी प्रकारके पुस्तक और समाचार पत्र उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट इन तीन श्रेणियों के अन्तर्गत होते हैं ।

उत्तम ।

जिसमें रस, गुण और अलङ्कार हों परन्तु रस व्याघातक कोई दोष न हो अथवा थोड़ा हो ।

मध्यम ।

जिसमें गुण और दोष बराबर हो ।

निकृष्ट ।

जिसमें दोष बहुत और गुण थोड़े अथवा नहीं हों ।

इस पर ध्यान देने से यह बात ज्ञात हो जाती है कि पुस्तक और समाचार पत्रों को निन्दित करनेवाले दोषही हैं इन का भेद आगे लिखेंगे ।

यद्यपि गुण शब्द से ओज आदि का बोध होता है तथापि यहाँ पर मैं अपना भाव सुगमता से व्यक्त करने के लिये इसे रसादि अर्थ में व्यापक मान लेता हूं अतएव स्फुट गुण रसादि, ध्वनि, अलङ्कार रीति और ओज आदि ये छः भेद हुए।

रसादि (१)

शृङ्गारादि को रस कहते हैं। थोड़े २ भेद से इसी के नाम रसाभासादि हो जाते हैं।

ध्वनि (२)

शब्द अर्थ और सन्दर्भ से जो व्यङ्ग्य निकलता है उसे ध्वनि कहते है।

अलङ्कार (३)

उपमा और रूपक आदि को अलङ्कार कहते हैं।

रीति (४)

जहाँ जिस पद की आवश्यकता हो उसे वहाँ रखना इसी को रीति कहते हैं वैदर्भी और गौड़ी आदि इसके चार भेद हैं।

गुण (५)

रस की उत्कर्षता करने वाले को गुण कहते हैं। इसके ओज माधुर्य्य और प्रसाद तीन भेद हैं। समास युक्त उद्धत घटनावाले प्रबन्ध में ओज, चित्त को पिघला देने वाले प्रबन्ध में माधुर्य्य और सुनतेही समझने योग्य अर्थ वाले प्रबन्ध में प्रसाद गुण अवश्य रहते हैं।

यहाँ प्रबन्ध शब्द से गद्य पद्यात्मक सभी वाक्यों का ग्रहण है।

स्फुट गुण (६)

इसमें कागज छपाई और कवि की प्रतिभा का विचार कर उनकी आलोचना की जाती है। समालोच्य पुस्तक से समानता है या नहीं ? उनका आशय चुराया गया है या नहीं ? यदि पुस्तक पुरानी है तो उसके बनने आदि का समय निरूपण हो सकता है या नहीं ? उस पुस्तक के द्वारा उस समय के लोगों के व्यव-हार और रुचि का परिज्ञान होता है या नहीं ? उस समय की भाषा से वर्तमान भाषा का कुछ भेद है या नहीं ? पुस्तक यदि लिखी हुई है तो लिखावट मे आज कल के अक्षरों से कितना भेद है ? यदि भेद हो गया है तो कौन पाठ सुन्दर है ? इत्यादि बातों का पूर्ण रूप से अनुसन्धान करके तद्गत गुण इस प्रक-रण में दिखलाना उचित है।

—:o:—

दोष के आठ भेद हो सकते हैं जो विवरण सहित नीचे लिखे जाते हैं।

(१)

विषयादि दोष।

प्रत्येक पुस्तक में विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी ये चार बातें होती हैं इन्हीं को अनुबन्धचतुष्टय कहते हैं इनमें जो दोष हो जाते हैं उन्हें विषयादि दोष कहते हैं।

(२)

भाषा दोष।

जिससे पद अथवा पदांश दूषित हो उसे भाषा दोष कहते हैं अथवा जिसके लिये जिस प्रकार की भाषा में पुस्तक

लिखी गयी और पढ़नेवाला इस प्रकार की भाषाका अधिकारी नहीं है। इष्ट भाषा में अन्य भाषा (बँगला आदि) के शब्द प्रयुक्त हो गये हैं अथवा उनका प्रतिबिम्ब ही आपड़ा है एवम् पाण्डित्य दिखलाने वाली भाषामें अरबी और फ़ारसी के शब्द, मुल्लाओं की सी भाषा मे संस्कृत के शब्द तथा नागरिक साधु भाषा में दिहाती शब्द व्यवहृत हो गये हैं तो इन्हें भी भाषा दोष कहते हैं इत्यादि ।

(३)

वाक्यदोष ।

अधिकपदता, न्यूनपदता, अप्रयुक्तता (मुहाविरे के विरुद्ध होना) और भग्नप्रक्रमता (प्रकरण भङ्ग होना) इत्यादि कई दोषों को वाक्य दोष कहते हैं ।

(४)

अर्थ दोष ।

अपुष्टता, कष्टता, पुनरुक्तिता और प्रसिद्धिविरुद्धता इत्यादि कई दोषों को अर्थ दोष कहते हैं ।

(५)

व्याकरण दोष ।

व्याकरण के नियम से भ्रष्ट होने की अशुद्धियों को व्याकरण दोष कहते हैं ।

(६)

छन्द दोष ।

छन्दोलक्षण की विरुद्ध रचना को तथा जिस रस की कविता

के लिये जो छन्द उपयुक्त है उससे अन्य छन्द में पद्य रचना करने को छन्दोदोष कहते हैं। यद्यपि छन्द और व्याकरणके दोष भाषा दोष में गतार्थ हो जा सकते हैं तथापि प्रधान समझकर ये पृथक् लिखे गये हैं।

(७)

रस दोष ।

स्थायीभाव और सञ्चारीभाव अपने २ नाम से वर्णन करने तथा विरोधी रस और अप्राकरिण विषय के कीर्त्तन को रस दोष कहते हैं इत्यादि ।

(८)

स्फुट दोष ।

स्फुट गुण में वर्णित विषयक दोष को स्फुटदोष कहते हैं इत्यादि ।

सर्वसाधारण पाठक गुण और दोषो से कुछ न कुछ परिचित हो जायँ इसीलिये इनका लिखना यहाँ उचित समझा गया।

यद्यपि समालोचना की उन्नति होने से गुण और दोष के इन भेदों मे कुछ परिवर्त्तन अवश्य होगा तथापि इस समय इसके अनुसार कार्य्य करने से कुछ हानि न होगो।

अब हम समालोचना पद्धति को चार भागों में विभक्त करते हैं।

(१)

टाइटिलपेज पर जो ग्रन्थकार, प्रकाशक, मूल्य और मिलने का पता आदि लिखे रहते हैं उनका वर्णन प्रथमभाग मे होना चाहिये।

(२)

द्वितीयभाग में गुण का विचार होना चाहिये।

(३)

तृतीयभाग में दोष का विचार होना चाहिये।

(४)

चतुर्थभाग में समालोचक को अपनी सम्मति अथवा समालोचनाका सारांश लिखना चाहिये।

—:०:—

समालोचना

बालाबोधिनी

वा

पिता का उपदेश पुत्री को।

(१) यह पुस्तक बाबू रामप्रकाशलाल इन्स्पेक्टर पुलिस मुजफ्फरपुर की बनायी, पं० भगवान्दास शर्म्मा (सहकारी सम्पादक देवनागरी गजट मेरट) के द्वारा संगृहीत और पं० सूर्य्यप्रसाद मिश्र (आयुर्वेदीय औषधालय मोरीपाड़ा शहर मेरट) से प्रकाशित हुई है। मूल्य ।-) पाँच आने हैं। ग्राहकों को उक्त मिश्र जी के निकट मूल्य भेज कर मँगाना चाहिये। पुस्तक का विषय पुत्री शिक्षा है।

(२) पिता पुत्री के प्रति वत्सलता स्नेह के उद्रेक द्वारा उपदेश है अतएव यहाँ पर भाव है।

कहीं २ अनुकूल माधूर्य और प्रसाद भी है।

पुस्तक पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार ने अपनी कर्त्तृत्व शक्ति को बङ्गभाषा के द्वारा पुष्ट कर अपने परिश्रम से हिन्दी साहित्य को उपकृत किया है। हिन्दी भाषा में स्त्रीशिक्षा

विषयक पुस्तकों की आवश्यकता है और इस पुस्तक से स्त्रियों को शिक्षा दी जा सकती है अतएव ग्रन्थकार का उद्योग प्रशंसनीय है।

(३) पुस्तक में दो सर्ग हैं उनमें से प्रथम के विस्तृत और द्वितीय सर्ग के संक्षिप्त दोष दिखाये जाते हैं।

विषय दोष

पुत्री को उपदेश देनाही इस पुस्तक का विषय है परन्तु प्रथम सर्ग के पढ़ने के समय कहीं २ ऐसा बोध होता है कि ये उपदेश वर अथवा कन्या के पिता को दिये जा रहे है। अट्ठारहवें और पच्चीसवें पन्ने के पढने से यह बात दृढ हो जाती है जैसे—"समाज के हित का ध्यान रख कर जो काम करोगे उसमे धर्म होगा"।

२० वें पन्ने मे विवाह पक्का करने के समय कन्या की परीक्षा के लिये ग्यारह प्रश्न लिखे हुए हैं। यह बात अनुचित है क्योंकि उपदेश विषयक पुस्तक मे प्रश्नोंकी क्या आवश्यकताहै?।

यदि किसी प्रकार पुस्तक मे प्रश्न लिखने आवश्यक है तो ग्रन्थकार पहले उत्तर विषयक उपदेश कर लेते तत्पश्चात् प्रश्नों का चर्चा करते क्योंकि पढ़ा लिखा कर परीक्षा लेना शिष्ट सम्मत है। चाहे कोई बालिका बड़ी बुद्धिमती हो परन्तु जब तक उसे पूर्ण उपदेश नहो प्राप्त होगा तब तक वह यथार्थ उत्तर कभी नहीं देगी।

भाषा दोष

भाषा इस पुस्तक की सरल होनी चाहिये। बड़ेबड़े संस्कृत के शब्दों का व्यवहार करके ग्रन्थकार ने पुस्तक की भाषा बहुत

कठिन कर दी है। "संसारआश्रम, ताच्छील्य व्यस्त, आरण्य (!) अपवाद और जलाञ्जलि" इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

कई पृष्ठों में बङ्गभाषा की झलक दिखायी पड़ती है क्योंकि विद्रूप, सकाल, दस्तूरमत, रौद्र और राग (द्वेष में व्यवहृत) इत्यादि शब्दों की संख्या कम नहीं है।

भाषा एक ढङ्ग की नहीं लिखी गयी है। जहाँ सरल शब्द आये हैं वहाँ "दश जन में, आचठो, अकाज, अकारथ, अबूझ और अबेर इत्यादि शब्द लिखे हैं, जहाँ फारसी अरबी के शब्द आये हैं वहाँ सेपहर, सवारी, असल, तफावत इत्यादि का व्यौहार किया गया। सारांश यह कि—इस पुस्तक की भाषा कठिन हो गयी है यदि वह सरल होती तो इससे बहुत सी पाठिकाओं का उपकार होता।

निम्नलिखित वाक्य प्रचलित वाक्धारा (मुहाविरे) के विरुद्ध हैं। बीच पन्थ के छोड़ देना (२रा पृष्ठ) पतित ज़मीन (३रा पृष्ठ) खांटी उन्नति (९वाँ पृष्ठ) हमारी घृणा करेंगे (१०वाँ पृष्ठ) असभ्य अपवाद हटाने के निमित्त (और) कुंथ २ कर, बकने लगी (११वाँ पृष्ठ) फाँकी देना (१४वाँ पृष्ठ) उन्हीं का अयत्न हमारे नियम है (९वाँ पृष्ठ) और भद्दे अभ्यास इत्यादि।

एक मूंठा भात नहीं पाता (५९) यह वाक्य दिहाती ढंग का है अतएव इसमें ग्राम्य दोष हुआ।

निम्नलिखित वाक्यों मे रेखाङ्कित पद अधिक हैं उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरे एक को मुनि के हाथ बेचा दोपहर के बेला तेज़ रौद्र के समय (१५वाँ पृष्ठ) चमारहोके दोष से उसके पत्नी का भी दोष है संसार आराम के सुख को (१६वाँ

पृष्ठ) तो मेरा आफिस का। (११वाँ पृष्ठ) घड़ी घड़ी का चैन (६ठा पृ०) बड़ी हँसी से तुम (४था पृ०) और तो फिर इत्यादि।

आराम के सुख को इसमें पुनरुक्त दोष भी हुआ।

परिष्कार परिच्छन्न न रखनेसे (४७ पृ०) एकही साथ कोई पदार्थ परिष्कार और परिच्छन्न नहीं हो सकता तथा इन दोनों शब्दों के बीच मे संयोजक और शब्द की भी आवश्यकता है। आवश्यकता होने पर भी पुस्तक में और शब्द का प्रयोग कई स्थलों में नहीं किया गया है अतएव इसमे न्यूनता दोष भी है।

गहना पत्ता कपड़ा (४४ पृ०) इसमे पत्ता शब्द निरर्थक है। स्वामी को परम गुरू जानना। स्वामी की भक्ति करना। स्वामी की सेवा शुश्रूषा करना। स्वामी को सर्वदा सन्तुष्ट रखना। स्त्रियों के ये चार काम हैं। (३०वाँ पृ०) ग्रन्थकार ने फिर आदि के तीनों काम लिखकर बतलाया है कि स्त्रियों के यही तीन काम हैं (४२वाँ पृ०) यहाँ व्याहताख्य अर्थ दोष है। ऐसी विरुद्ध बात एक ही पुस्तकमे लिखनी उचित नहीं इसमे दूसरा अक्रमताख्य वाक्य दोष है क्योंकि चारों बातों के लिखने का क्रम ठीक नहीं हैं।

सीखने का समय शिशुकाल है (१७वाँ पृ०) हिंसा (हिर्स) करने में (२१वां पृ०) स्वामी को तुच्छताच्छील्य किया करती है (३१वाँ पृ०) कन्या से संग दोष न घटे (१४वाँ पृ०) स्त्री देवी की प्रकृति पाती है (१२वाँ पृ०) इस सन्दर्भ में शिशुकाल बाल्यावस्था का, हिंसा हिर्स अथवा ईर्ष्या का, ताच्छील्य निन्दित अथवा अपमानित का, घटना धातु आ जाने का और प्रकृति उपमा का वाचक नहीं हैं। ग्रन्थकार ने इन शब्दों को अपनी बुद्धिसे इन्हीं अर्थों में व्यवहृत किया अतएव अवाचक (ठीक अर्थ का नहीं कहनेवाला) दोष हुआ।

वाक्यगत दोष और भी हैं हमने उदाहरण के लिये इतना लिखा है। आशा है ग्रन्थकार इसकी दूसरी आवृत्तिमे इन बातों को सुधार देंगे।

अर्थ दोष

ऊपर लिखा है कि स्वामी को परम गुरु जानो फिर इसके विरुद्ध ४३वें पन्ने में एक पंक्ति दीख पड़ती है.—स्वामी जैसे गुरू समान मान्य हैं।

परम गुरू और गुरू समान में बड़ा अन्तर है। किसी पदार्थ के उत्कर्ष का कथन कर उसके विरुद्ध कहने को व्याहत कहते हैं यही दोष यहाँ आपड़ा है।

"स्वामी रुष्ट हो कर बके तो उसका उत्तर न देना" (३४वाँ पृ०) क्या स्वामी के क्रोध भरे वचन को भार्या बकना समझे? जब मनुष्य अपने गुरू के निरर्थक वचन को भी बकना न समझते और न कहते हैं तब कब सम्भव है कि स्त्री अपने परम गुरू स्वामी के किसी प्रकार के वचन को बकना समझेगी? किसी प्रकार समझ भी ले तो ग्रन्थकार को इस प्रकार के अनुचितार्थ शब्द का प्रयोग करना नहीं चाहिये।

स्वामी यदि भृत्यादि नहीं रख सके तो तुम ऐसी सेवा करो जिससे उन्हें कष्ट और शोक न हो इसी बात को जताने के लिये निम्न लिखित वाक्य लिखा गया है :— स्वामी की अवस्था यदि अच्छी न होय, रसोईदार नौकर वा लौंडी न होय तो यह अभाव उनको मत जताओ वरन ऐसी सेवा शुश्रूषा करो कि उस अभाव की बात उनके जी में न उठे। इसी को कष्ट कल्पना कहते हैं। सीधी बात को टेढ़ी कर देने से पाठक ग्रन्थकार का आशय शीघ्र नहीं समझता इत्यादि।

व्याकरण दोष

इस पुस्तक में व्याकरण की अशुद्धियाँ बहुत हुई हैं उनमेंसे थोड़ी सी दिखायी जाती हैं।

क-ख-सीख लिया (२रा पृ०) इसमें कर्ता नहीं है।

जो अच्छे उपदेश नहीं पाये हैं (३रा पृ०) एक बहेलिया .... हाथ बेचा (१५) इन दोनों में कर्ता के आगे ने विभक्ति की आवश्यकता है।

स्त्री भी लिखना पढ़ना सीखीहै (२रा पृ०) तुम तो स्वामी की भक्ति करना सीखी हो (३१वाँ पृ०) तुच्छताच्छोल्य करना सीखो हो (३१वाँ पृ०) इन तीनों मे कर्ता के आगे ने विभक्ति की आवश्यकता है तथा क्रियाओं के रूप ठीक नहीं हैं। को किसकी खबर लेता है (५९वाँ पृ०) इसमें 'को' के स्थानमे 'कौन' लिखना चाहिये।

राशि २ असाधु काम करके (४५) राशि शब्द गुणवाचक नहीं है अतएव यह विशेषण नहीं हो सकता।

सन्ध्या होने से पहले प्रदीप जलाकर धूप बालना (५०वाँ पृ०) इसमे 'से' के स्थान मे अधिकरण के चिह्न 'पर' विभक्ति की आवश्यकता है।

द्वितीय टाइटिलपेज पर "जिसको" शब्द लिखा हुआ है परन्तु कोई क्रिया नहीं लिखी है जिसका यह कर्म समझा जाय।

अच्छा तरह (५३वाँ पृ०) तिलाञ्जलि देना होगा (६ठा पृ०) ऐसा यत्न और चेष्टा ... नहीं (७वाँ पृ०) आचार व्यवहार रीति (और) नीति भलेही होते हैं (१५वाँ पृ०) लड़के (और) लड़कियें रहते हैं (१८वाँ पृ०) बातों का लपेट तथा बातों का मार पेंच

(२४वाँ पृ०) एवम् नीति सिखाना भी चाहिये (१३वाँ पृ०) इन शब्दों में जो क्रिया, विशेषण और विभक्तियाँ हैं उनके आकारके ईकार लिखना चाहिये।

तेरहवें पृष्ठवाले वाक्य में लड़कियें यह पद महान् अशुद्ध है क्योंकि ह्रस्व अथवा दीर्घ इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की प्रथमा के बहुवचन में 'याँ' जोड़ा जाता है जो इसके विरुद्ध 'यें' अथवा 'एं' जोड़ते हैं वे भूलते हैं। ग्रन्थकार ने संयोजक शब्द का कम व्यवहार किया है।

स्फुट दोष

कम्पोजिटर (अक्षर संयोजक) की अनवधानता से शुश्रूषा, नमस्कार और सम्मानित इत्यादि कितने ही शब्द अशुद्ध छप गये हैं।

सम्मति

(४) पुस्तक मध्यम श्रेणी की है। पुत्रियों को अवश्य पढ़ने योग्य है, माता पिता और पुत्र भी इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। ग्रन्थकार और प्रकाशक दूसरे संस्करण में उक्त दोषोंके सुधारनेकी चेष्टा करेंगे तो साहित्यको एक सर्वाङ्गसुन्दर स्त्रीशिक्षा की पुस्तक प्रदान का यश पावेंगे। बगल में किताब और स्लेट दबाकर आजकल की पुत्रीपाठशालाओंमें जानेवाली बालिकाओं को इस पुस्तक से घर बैठे बहुत कुछ लाभ और उपदेश मिल सकते हैं।

——:०:——

सौदामिनी (उपन्यास) ।

"अगर अपना कहा तुम आपही समझे तो क्या समझे ?
मज़ा कहने का जब है, एक कहे और दूसरा समझे ।"

दीनदयाल एक दिन माघ में सारी रात जाड़े के मारे ठिठुरा पड़ा था, प्रातःकाल होतेही धूप मे आ बैठा है । इधर की दुनिया उधर हो जाय, पर यह अब यहाँसे टलनेवाला नहीं । लाला किशोरीमल अपने पड़ोसी की बैठक में बैठे शतरंज खेल रहे हैं, दाई ने घर से आकर कहा, "लाला, घर में आग लग गयी है, जल्दी चलो ।" लाला घोड़े को उठाकर बोले "ए. क्या कहा, आग लगी है, अच्छा, यह लो घोड़े की किश्त ।" तात्पर्य यह कि जब तक कोई पक्ष मात न हो लेगा; लाला उठने के नहीं—घर जलके राख हो जाय तो हो जाय । नन्हकू अभी दोनों हाथों से सन्ध की दाद खुजला रहा है, ऐन ऐसे ही समय में इनके दादाजी खड़ाऊँ खटखटाते चले आते हैं । नन्हकू बोले, "भली शायद पहुँची, लो अब दादाजी जो चाहें समझें, पर बन्दा तो खुजलाना नहीं छोड़ता है ।" उपन्यास भी ठीक ऐसेही पदार्थों में से एक है । आज वार्षिक परीक्षा है, साल भर के परिश्रम और व्यय का आजही दो टूक निबटेरा होनेवाला है, पर वह विद्यार्थी भोर से "दुर्गेशनन्दिनी" पढ़ रहा है, नौ बज गये हैं, अभी तीन चार अध्याय और पढ़ने को बाक़ी ही हैं । मा ने पुकारा, "बेटा, आज क्या नहायेगा नहीं ? रसोई तय्यार है ! कहता न था कि आज परीक्षा है ?" "हाँ हाँ, आता हूँ ।" मा ने कहा "पौने दस हो गये," फिर वही "हाँ हाँ आता हूँ ।"

छबीली बहू रात तीन बजे से "वेनिसका बाँका" पढ़ रही हैं। आठ बज गये हैं, पर पुस्तक हाथ से रखतीं नहीं। सास बिगड़ बिगड़ कर झल्ला रही हैं "बहू, आज तुमको क्या हो गया है, न अभी तक नहाया है, न ठाकुर की पूजा की है लड़का उधर अलगही मैला कर चिल्ला रहाहै· निगोड़ा यह कैसा पढ़ना कहलाता है। लो उठना हो तो उठो, नहीं तो बसंत को बुलवा कर कहती हूँ कि लो गृहस्थी तुमही सम्हालो, बहू ने तो कोरा जवाब दिया।"

बूढ़े और अभिज्ञ लाख समझाते हैं कि उपन्यास पढ़ना अच्छा नहीं, यह साहित्य सम्बन्धी विलास (Literary luxury) मनुष्य को बेकार बना देता है, और लाख प्रबन्ध करते हैं कि घर में उपन्यास न आने पाये, पर उपन्यास है कि दिन दिन बढ़ता ही जाता है, और घर घर फैलता ही जाता है। [जब उपन्यास का बल और प्रताप इतना प्रबल है तो उपन्यास लेखकों को चाहिये कि इसके द्वारा पढ़ने वालों का कुछ उपकार भी करने का उद्योग करें। जो पुस्तक इतने मनोयोग से पढ़ी जाती है उसकी बातों का प्रभाव भी पाठक के चित्त पर निस्सन्देह आनन फ़ानन और पूरा पूरा होता होगा। प्रणय का विषय उपन्यास की जान, समझा जाता है। पर यह कुछ बात नहीं है, जौन्सनकारैसेलस क्या उपन्यास नहीं है ? अमेरिका के हज़ारों उपन्यास ऐसे हैं, जो प्रणय के आधार पर नहीं हैं, पर केवल वीरों की वीरता, सतियों का सतीत्व, जासूसों की बुद्धिमत्ता, रहस्यों का आविष्कार, दुर्जनों की दुष्टता का दैवी दण्ड, सज्जनों की सुजनता का दैवी पुरस्कार आदि विषयों से ऐसेऐसे रोचक हो रहे हैं कि क्या प्रणय से ल्पाचच उपन्यास होंगे? भला और

कुछ नहीं तो इतना तो ध्यान रखना अवश्य है कि पढ़नेवाले अच्छी भाषा सीख जावें, और उन्हें कुछ शुद्ध शुद्ध लिखना पढ़ना आ जावे। पर अफ़सोस! विरले ही उपन्यास लेखक इन बातोंपर ध्यान देते हैं! कहाँ तो देश की ऐसी दुर्दशा भाषा की यह अवनत अवस्था और लेखक हैं कि उपन्यास ही उन्हें सूझता है-और वह भी प्रणय और शृङ्गाररस से तराबोर।

श्रीवृन्दावन के रहनेवाले श्रीराधाचरण गोस्वामी ने "सौदामिनी" नामक उपन्यास लिखा है। ये विद्यावागीश हैं. म्युनिसिपल कमिश्नर हैं औनरेरी मजिस्ट्रेट हैं, इनका बनाया उपन्यास तो उपरोक्त दोषों से अवश्य मुक्त होगा—लोग निस्सन्देह ऐसा ही समझते होंगे। क्या कोई पिता अपने बेटे या बेटी को इस उपन्यास के मँगाने की आज्ञा देने में ज़रा हिचकेगा?

चालीस बरस के ऊपर की अवस्था वाले पुरुषों से तो हम भी सिफ़ारिश करते हैं कि इस पुस्तककी एकप्रति मँगाकर देखें। मूल्य केवल दो आने हैं। दो आने की कोई हक़ीकत नहीं। इस के पढ़ने में ऐसा कुछ समय भी नहीं लगेगा, क्योंकि जमा पूँजी बारहपेजी फ़र्मे की २८ पृष्टकी तो पुस्तकही है। घंटा आध एक का मुआमला है। पुस्तक कुछ बिक जाय तो ग्रन्थकर्ता का एक उद्देश्य—कदाचित मुख्य, सध जाय। इसके सिवा एक बात यह भी खुल जावेगी कि पुस्तक लड़कों को पढ़ने देने योग्य है या नहीं। सब से बड़ा उपकार तो हमारा होगा कि हमारी समालोचना सच्ची है या झूठी प्रत्यक्ष हो जायगा।

बलरामपुर स्टेशन के सिग्नेलर की लड़की सौदामिनी—बरस बारह एक की लड़की, सांसारिक व्यवहार में पक्की, और

कुछ लिखी पढ़ी भी स्टेशन मे खड़ी खड़ी एक ऊपरी स्कूनी दैले घनश्याम से आँखें लड़ा, अपने चित्त से हाथ धो बैठी । बस यही घनश्याम और सौदामिनी इस उपन्यासके नायक नायिका हैं पहलेही अध्याय में इतना पढ़ कर भला कौन पाठक ऐसा लालबुझक्कड़ होगा जो इस उपन्यास का गूढ रहस्य बूझ जाय कि इन दोनों का अन्त मे एक दूसरे से विवाह अवश्य हुआ होगा । बस भेद की बात यदि कोई है तो यहीहै । नयी रोशनी की प्रीति ने साधारण नियम के अनुसार. सौदामिनी और घनश्याम से जो जो बुराई न कराई हो वह आश्चर्य है । कुवारी सौदामिनी—एक भले आदमी की लड़की-अकेले में घनश्याम से मिला करती थी । मा बाप को बराबर चकमे देती रही । पर पुरुष से विवाह के पहले ही लपटती झपटती रही । प्रीति की पातियाँ भी आती जाती रहीं । घनश्याम का पढ़ना मिट्टी में मिल गया । दूसरे के घर मे उसे चोर को तरह खिड़की से आना जाना पड़ा । रुपया ठिकरी करना पड़ा । बाप की जहाँ राय थी वहाँ ब्याह न कर सौदामिनी से ब्याह करना पड़ा । ब्याह के समय न बाप आसके न मा, और न और कोई नातेदार ।

आख्यान कैसाहै और उससे क्या उपदेश निकलताहै पढ़ने वाले समझ गये होंगे । अब व्याकरण सम्बन्धी बातों में तो ज़रा इस उपन्यास को तौल कर देखें कि कैसा उतरताहै । विवर्णाकी जो भूलें हैं वह छापेखानेवाले के माथे थोपे जाने योग्य जान पड़तीहैं। पर मेरे जानते ग्रन्थकर्त्ताओं के लिये अपनी असावधानताका यह एक अच्छा बहाना है । गोस्वामी जी महाराज भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा वालों के अनुयायी तो नहीं हैं ? आपने भी गये की जगह गए लिखाहै । परन्तु नहीं, यह हमारा भ्रमहै ।

क्योंकि पुस्तक के उत्तरार्द्ध में गये ही लिखा देखते हैं। इसके सिवाय य्-का लोप किया भी है केवल "गएही में," 'आये' 'चाहिये' 'लिये' आदि में नहीं। यह विषय है भी एक बड़े झगड़े का। उक्त सभावाले ए-के पूर्व य्-का जो लोप कर देते हैं सो युक्ति सिद्ध नहीं जान पड़ता। पर ई के पूर्व तो प्रायः सब ही य्-का लोप कर दिया करते हैं। 'गयी' 'पढ़ायी' 'खायी' 'सोयी' आदि तो संयोग ही से किसी को लिखते देखते हैं। "आधी मुर्गी आधी बटेर" अच्छा नहीं। य्-का लोप करना है तो इ ए दोनों के पूर्व लोप हो, और रहे तो दोनों के पूर्व रहे। हमारे जानते य्-का रहने देना ही ठीक है।

गोस्वामी जी ने शब्दों के प्रयोग में बड़ी उदारता की राह दी है। अंग्रेज़ी, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत सब पर समदृष्टि रक्खी है। इस प्रकार की उदारता दोष की बात है या गुण की, इस पर हम यहाँ तर्क नहीं किया चाहते, पर हाँ इतना तो अवश्य कहेंगे कि शब्द को शुद्ध शुद्ध लिखना उचित था। फ़ारसी और अरबी के जितने शब्द लिखे है, प्रायः सबही अशुद्ध लिखे हैं। अशुद्ध लिखने से तो नहीं लिखना अच्छा था।

अंगरेज़ी शब्द जो आपने प्रयोग किये हैं वे अंगरेज़ीही अक्षरों में लिखे गये हैं। अंगरेज़ी वर्णमाला नहीं जाननेवालों को तो ये शब्द कीड़े मकोड़े समझकर एकदम छोड़ही देने होंगे। यदि ये नागरी में भी लिखे होते तो हर मनुष्य इन्हें पढ़ लेता, और प्रचलित अप्रचलित शब्दों का अर्थ भी समझ लेता। अंगरेज़ी शब्द भूले चूके कोई नागरी अक्षरों में लिखा भी है तो वह अशुद्ध लिखा है। जैसे फ़िलप (Fill up) और ऐड्रस (Address)

को लिखा है फ़िलिप और एड्रेस। इसमें भी बिन्दीवाले अक्षरों से बिन्दियाँ अलग कर दी गयी हैं। लेकिन सर्वत्र यह बात नहीं है। क्योंकि ७वें पृष्ठ में 'इजाज़त' शब्द बिन्दी युक्त देखा जाता है।

एक बात हर्ष की यह है कि संस्कृत शब्द सबही शुद्ध लिखे हैं ढूँढ़ने पर भी कोई भूल नहीं दीख पड़ी।

बहुतेरे शब्दों के प्रयोग एक विलक्षण ही अर्थ में देखे जाते हैं। लौटना का अर्थ फिर जाना हम जानते थे। पर इस पुस्तक में एक जगह लिखा है "युवा ने पुस्तक पूरा होने पर इधर उधर लौटा तो टाइटिल पेज पर......" निस्सन्देह लौटना यहाँ उलटने के अर्थ मे है। इस शब्द को जिस तरह हम बोलते हैं वह शुद्ध है या जिस तरह गोस्वामीजी ने लिखा है—इसमें युक्ति क्या काम करेगी? पर हाँ, इतना कह सकते हैं कि यदि सबही अपने प्रान्त की बोलचाल को शुद्ध मान लें तो हिन्दी भाषा के प्रायः हर शब्द की लिखावट उच्चारण और प्रयोग में भेद पड़ जावेगा। यह भेद न हो, इसलिये किसी एक प्रान्त की भाषाको टकसाली मानना अवश्य होगा। हम तो समझते हैं हिन्दी के शब्दों को परखने के लिये देहली आगरा लखनऊ की बोल चाल को कसौटी मानना चाहिये। देहली में ऐसी जगह लौटना नहीं बोलते, उलटना बोलते हैं।

फिर एक जगह लिखा है "मुह ढक कर पर्दा गेर कर सौदामिनी भाग गई," ढकना और गेरना भी मुहावरा नहीं है। ढाँकना और गिराना होना चाहिये। 'रेल के बाबुओं के घर कैसे होते हैं, इसको लिखने की अपेक्षा नही।" अपेक्षा का अर्थ आवश्यकता भी होता है तो इस वाक्य में कोई भूल नहीं है।

'भाद्र' तो ऐसा बिगड़ा है कि 'भादों' हो गया, और उसके पास ही 'पूस' ऐसा सँवर गया है कि 'पौष' हो गया है ।

संस्कृत के क्लीवों को गोस्वामी जी ने स्त्री बना दिया है । "मेज पर कुछ पुस्तकें पड़ी थीं ।" पुस्तक को तो भला स्त्रीलिंग मानना भूल है तो शायदही कोई हिन्दी का लेखक इस भूल से बचा होगा, पर "रिफ्रेशमेंट रूम में जाकर शयनकी" इस वाक्य में शयन को स्त्रीलिंग क्यों माना है ।

"बाबू साहिब की गढ़ी चोट उछल आई" यह कहाँ का मुहावरा है और इसका क्या अर्थ—कुछ समझ में न आया ।

"मुलिया बाहर जाकर पुकारी" वाक्य के अशुद्ध होने का प्रमाण इसी पुस्तक का "सौदामिनीने खिड़की खोल कर पास के क्वार्टर में से मुलिया की मा को पुकारा" यह वाक्य है ।

" बस्ता मे से " " सौदामिनी के अश्रु पोंछना चाहा "

"घनश्याम ने थोड़ी ठहर कर" "बुलाय ला" "इतने में ही" "इसकी उधेरा बुनी मे" आदि वाक्य कान में कुछ खटकते हैं । ये वाक्य जो यों लिखे जाते "बस्ते मे से" "आँसू पोछना चाहा" "घनश्याम ने कुछ ठहकर" 'बुला ला" "इतने ही मे' "इसी की उधेड़ बुन में" तो अच्छा होता ।

विराम, पूर्ण विराम, प्रश्न का चिन्ह आदि को ऐसे कुढंगे तौर पर और बेठिकाने लिखा है कि गोस्वामी जी के समान सुलेखक पर अनभिज्ञता का दोष लगता है ।

अच्छे उपन्यासों मे दृश्यो का वर्णन और चरित्रों का चित्र बड़ी निपुणता से अङ्कित किये जाते हैं । पर खेद की बात है कि यह उपन्यास ऐसे वर्णन और चित्रों के न रहने से एकदम फीका हो रहा है । हाँ, पुस्तक के आरम्भ मे अलग्नके समय का

एक ऐसा अनोखा छोटा सा चित्र खींचा है कि जिसने मानो सारी पुस्तक को चमका दियाहै । पाठक देखें यह तस्बीर कैसी फड़काने वाली है—

"सन्ध्या का समय है, भगवान् सूर्यनारायण की डाउन मेल अपने लास्ट स्टेशन कम्पाउण्ड मे पहुंच चुकी है—"

दृश्य और चरित्रों की तस्बीर खींचने में ग्रन्थकर्ता को साहित्य की झलक, उपमाओं की चमक, सूक्ष्म सूक्ष्म भावोंकी कसक दिखाने का अच्छा सुयोग मिल सकता है।

चरित्र वर्णन में मानसिक वृत्तियों की उधेड़ बुन करके ग्रन्थकर्ता को, पाठकों को गुदगुदाने का, ऐसा ऐसा सुयोग मिलता है कि कभी पाठक हँसते हैं, कभी मुस्कुराते हैं, कभी सिहरते हैं, कभी सिसकते हैं, कभी आँसू बहाते हैं, और अपने चरित्र से वर्णित चरित्र को मिला मिला कर कभी प्रसन्न होते हैं और कभी पछताते हैं। इस उपन्यास से पाठकों के चित्त पर इन रंगों में से कौन रङ्ग चढ़ेगा ठीक कहने का साहस नहीं होता।

पुस्तक ≈) पर पं० सूर्य्यप्रसाद शर्मा मोरीदरवाजा मेरठ से मिलती है।

सूचना

—:o:—

जिन महाशयों ने पहला या दूसराही अङ्क पाकर समालोचक का अगौढ़ी दाम भेज दिया उनको हम अनेक धन्यवाद करते हैं। और दो अङ्क पाने पर भी जिन्होंने इन्कार की सूचना नहीं दी उन हिन्दी प्रेमियों का नाम समालोचक के पक्के ग्राहकों में लिख लिया गया। अब यह तीसरा अङ्क ऐसे भौनाग्यशाली हिन्दी प्रेमियों की सेवा में वेल्यूपेयिल से भेजा जाता है। वह दाम के सिवाय ‌-) एक आना मनीआर्डर का खर्च देकर वेल्यूपेयिल लेलेवें—लेकिन सब के पास एकही दिन में वी० पी० नहीं भेज सकते। इस वास्ते जिनके पास तीसरा अङ्क वी० पी० नहीं गया उनको सालाना दाम फौरन भेजने की दया करनी चाहिये। नहीं तो चौथा अङ्क उनको वी० पी० जावेगा।

जैन वैद्य समालोचक के मैनेजर—

जयपुर

समालोचक।

मासिक पत्र।

सम्पादक।

बाबू गोपालराम गहमरनिवासी।

वर्ष १ला } नवम्बर सन् १९०२ई० { अङ्क ४

मुद्रित विषय।

प्रोप्राइटर और प्रकाशक।

श्रीयुत मि० जैनवैद्य जोहरी बाज़ार जयपुर

Printed at the Dharmik Press—Prayag

नियमावली।

१—"समालोचक" हर अङ्गरेज़ी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करेगा।

२—दाम इसका सालाना १।।) है। साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा और ≈) का टिकट भेजे विना नमूना भी नहीं पासकेगा।

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी। कोई विज्ञापन विना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा।

४—आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी। किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी। जिस वस्तु की समालोचना छापी जायगी उसकी न्याय और युक्ति पूर्ण पक्षपात शून्य समालोचना छापी जायगी।

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा। जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होगी उसके प्रचार का उचित उद्योग किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसा पत्र व पुरस्कार प्रदानादि से उत्साहित किया जायगा।

६—जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होती है वही छापी जाती है। समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझना चाहिये।

७—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाज़ीपूर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र विज्ञापन के मामिले की चिट्ठी पत्री सब समालोचक के मेनेजर मिस्टर जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर के पते पर भेजना चाहिये।

साहित्य समालोचना ।

(प्रथम अङ्क के १७ पृष्ठ से आगे)

विदुरनीति, राम का वनवास को चलना और नीति विषयक इतिहास इन तीन प्रबन्धों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते । यह तीनों प्रबन्ध बहुत उत्तम, उपदेश जनक और विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी हैं ।

जब गवर्नमेण्ट की यही इच्छा है कि विद्यार्थियों को धर्म्म विषयक ऐसी शिक्षा दी जावे कि उनके हृदयमें ईश्वर का भय, जन समाज का उपकार, राजभक्ति और गुरु जन सेवा आदि का बीज अङ्कुरित हो और वह नम्र स्वभाव होकर शीलवान बनें तब यदि नीति विषयक इतिहास के स्थान पर भारतवर्षीय महापुरुषों के उत्तम २ उपदेश, जिनसे उक्त विषयका ज्ञान प्राप्त होता है, संग्रह किया गया होतो तो कितना उपकार होता ? इस भाषासार में ऐसे विषयों का अभाव है ।

जब हम भाषासार संग्रह और नया गुटका के प्रथम भागके प्रबन्धों के पृथक २ लाभ की तुलना करते हैं तब यही कहना पड़ता है भाषासारसंग्रह प्रथम भाग नया गुटका प्रथम भाग के स्थान पर पञ्चम वर्ग के विद्यार्थियों की पाठ्यपुस्तक बनाना उचित नहीं है ।

अब हम यहाँ और कारण लिखते हैं जिनसे यह भाषासार-संग्रह प्रथम भाग पञ्चम वर्ग के छात्रों की पाठ्यपुस्तक बनने के योग्य नहीं है ।

अङ्गरेज़ी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी, बँगला आदि जितनी भाषायें सर्कारी पाठशालाओं में पढ़ायी जाती हैं उनकी पाठ्य-

पुस्तकों में प्रत्येक वर्ग के विद्यार्थियों की योग्यता के अनुकूल विविध विषयपर लेख लिखे जाते हैं और भाषा भी क्रमशः ऊपर के वर्गमें कठिन लिखी जाती है जिससे पढ़ने वाले का भाषा सम्बन्धी ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है । अर्थात् प्रथम वर्ग की पाठ्य पुस्तक की अपेक्षा द्वितीय वर्ग की पाठ्य पुस्तक मे कठिन २ बालोपयोगी विषयों का वर्णन किया जाता है और भाषा भी पहले की अपेक्षा कठिन रखी जाती है । इसीतरह उत्तरोत्तर प्रत्येक वर्ग की पाठ्य पुस्तक रचना की जातीहै । इन्हीं सब बातों का ध्यान रख कर शिक्षावली नं० १ से ५ तक की रचना की गयी है । शिक्षावली नं० ५ चतुर्थ वर्ग के लिये बनायी गयी है । उस में गद्य और पद्य के ४४ पाठ रखे गये है । उनके पढ़ने पर चतुर्थ वर्ग के विद्यार्थियों को जितनी अभिज्ञता प्राप्त होती है उससे अधिक पञ्चम वर्ग के विद्यार्थियोंको भाषासार प्रथम भागके पठन से होनी चाहिये । किन्तु इसमे केवल १२ पाठ लिखेगयेहैं जिन के पढ़ने से पञ्चम वर्गीय विद्यार्थियो को चतुर्थ वर्ग के विद्यार्थियो के समान भी अभिज्ञता नहीं प्राप्त हो सकती । इसके अतिरिक्त भाषासारसंग्रह प्रथम भाग की भाषा भी शिक्षावली नं० ५ से उत्कृष्ट नही है इससे जान पड़ता है कि इस संग्रह के संग्रह कर्त्ताओं ने लोअर और अपर प्राइमरी क्लास की पाठ्य पुस्तकों को बिना देखे भाले और ऊपर कही हुई बातों का विचार बिना कियेही संग्रह कर डाला है जो पञ्चम वर्ग के लिये कदापि उपयोगी नहीं है । हम कह सकते हैं कि इस संग्रह से शिक्षावली नं० ५ उत्तम है ।

इस संग्रह में भाषा विषयक दोष बहुत हैं । इस संग्रह की भाषा का ढङ्ग भी अनूठा है कहीं शुद्ध हिन्दी है तो कहीं २ संस्कृत के शब्द भरे हैं कहीं फ़ारसी, अरबी की खिचड़ी है तो

वहाँ उर्दू के मुअल्ला है। उदाहरण के लिये हम कुछ वाक्य नीचे उद्धृत करते हैं:—

पृष्ठ	पंक्ति	वाक्य
४३	१९	अपने जी की पुरानी खार निकालूं।
,,	२२	मेरी जात को तुम हेच समझते हो।
,,	२३ व २४	विना सूद लिये मुझे लालची सूद खोर कहकर भला बुरा कहते हो।
,,	२५	तुमने जात भाइयों के सामने मुझे हलका किया।
४४	१३	तुम्हारे बुरे चलनकी हज़ार बार निन्दा करूंगा।
,,	१७	खुशी से अपने ऊपर लूंगा।
४५	११	बड़े ठाटबाटसे उसके घर जाकर मेहमान हुआ।
४६	२२	बड़ी नकदरी करने पर उसने वचन दिया।
४९	७	मुकद्दमे की बहस करने को आज्ञा दी।
५०	२३	वकील का लेक्चर सुन सबका जी भर आया।
५१	१	पत्थर सा भी जरा न पसीजा।
५५	४	हम लोग अपने पति को खूब छकावेंगी।
५३	१०	कचहरी वरखास्त हुई।
५६	१०	हम लोग औरों की नजरों से गिर जाते हैं।
,,	११ व १२	कर्त्तव्य करना जबरदस्ती से नहीं हो सकता।
५७	१२	मां से कह कर खाता था।
,,	२४	ठग विद्या और बेईमानी से अमीर होगये हैं।
६५	२२	मेरे जीवन के दिन बाकी रह गये हैं।
६८	६	हिसाब किताब का भार अहिल्या के ऊपर था।
,,	१२	मालगुजारी वसूल करती थी आमदनी खर्च का हिसाब जांचती थी।

६८	१४	सैन्य की तनखाह अथवा जो कुछ खर्च की आवश्यकता होती।
७२	४	सेना के कूच की तैयारीही में।
,,	२	रणोत्साहिनी मूर्त्ति से युद्ध के लिये तैयार थी।
७३	७	पेशवाई के हेतु तैय्यार हूं।
८१	१९	कोई नियत वन्दोवस्त न था।

कही॑ सुभाव कहीं स्वभाव लिखा है ५४ पृष्ट मे कटखना कुत्ता लिखा है।

९०	९	वड़ाभारी महामारी का उपद्रव फैला—यमक तो अच्छा है पर विशेषण विशेष से कहीं दूर पड़ा है यह व्याकरण के नियम विरुद्ध है यदि वड़ा भारी शब्द महामारी का विशेषण माना जावे तौ भी नहीं होता क्योंकि वड़ाभारी यह पुल्लिङ्गवत है और महामारी को स्त्रीलिङ्गवत बोलते हैं।
९०	२१	कविता कर कर नही समझ में आता कि कर २ शब्द किस अर्थ मे लिखा गया है—यदि कर कर के स्थानपर लिख २ या बना २ शब्द लिखा जाता तो अच्छा होता।
९	५	मुग्ध वालक के ऐसा यहां गौण है (के ऐसा) के स्थान पर केवल सा उपमावाचक उपसर्गही अलम था—

ऐसेही अनेक स्थलों पर अशुद्ध वाक्य देखने में आते हैं। जैसी अनूठी भाषा—इस ग्रन्थ की है उसका भी उदाहरण दिया जाता है:—

पृष्ठ	पंक्ति	वाक्य
७८	१	उस निमकहराम को दमन करो ।
७७	१९—२०	अहिल्या मारे क्रोध के थर्रा उठी यह थर्राना शब्द का प्रयोग यहाँ नहीं करना चाहिये ।
८०	४	देश दिसावरों से व्यापारी इत्यादि यह दिसावर शब्द कैसा ?
७८	८	में प्रचुर धन संचित था और उसके नोचे ९ पंक्तिमे लिखा है कि नगद छिहत्तर करोड़ रुपया छोड़ मरे—
८८	१	बड़े २ भास्कार चकित और विस्मित होते थे भास्कार का अर्थ समझ में नहीं आता ।

इस भाषासारसंग्रह की भाषा मे बहुत स्थानों पर तो अरबी फारसी मिश्रित और वैसेही सामासिक शब्द और वाक्यों का प्रयोग किया गया है ।

८२	२३	धन लोलुप नीति वर्ज्जित राजकुल कलंक थे ।
८३	११	राजोचित उग्र वर्ताव प्रारम्भ किया ।
८३	१६	दयामयी न्यायमूर्ति सहजकोमलप्रकृति अहिल्याने—
८४	८	सुनीति प्रवर्त्तिनी; पुण्यप्रभाशालिनी अहिल्या बाई आदि—
८६	२२	जीवनावसम्न प्रतिमा प्राणाधार वात्सल्य को विसर्ज्जन करनेके लिये हृदयविदारी विलाप—
८७	१५	विभ्रान्ति और विकलता बनी रही—
८७	११	अग्निपुंजमयी—
८७	२२	अति रमणीय स्मृति मंदिर बनाया ।

ऐसेही और भी अनेक बड़े २ सामासिक वाक्यों का प्रयोग किया गया है ।

३२. ३३ पृष्ट १८, १९ पंक्ति में लिखा है कि नियम के अनुसार कार्य करने से स्वतंत्रता दूर भागती है भला यह कैसा असंगत सिद्धान्त है ?

सामाजिक जितने नियम हैं वह साधारण पुरुषों के बनाये नहीं हैं वरन उन्हें बड़े २ विद्वान, विज्ञानी, कुशाग्रबुद्धि, उदारचेता पुरुषों ने देश काल पात्र विचार समाज के लौकिक, पारलौकिक सुख साधन निमित्त निरूपित किया है जिनके अनुसार कार्य करने से मनुष्य मात्र को सर्वदाही सुख प्राप्त हो सकता है और स्वतंत्रता भी नहीं मारी जाती। देखिये—बच्चों को अपने हिताहित का ज्ञान नहीं रहता अपने मन से दीपक की बत्ती, साँप और आग को पकड़ने में तनिक भी नहीं हिचकते। उन्हें अपने आनन्द का कारण जानते हैं, परन्तु उनके माता पिता इत्यादि गुरुजन उनको इस कार्य से निवारण करते हैं। यदि अज्ञान बच्चों को निवारण न करें तो उनके प्राण जाने की सम्भावना रहतीहै। वैसेही जितने प्रकारके सामाजिक नियम बनाये गये हैं, वही हम लोगों को अकर्तव्य कर्म न करने के बाधक होते हैं जिसे हम लोग अपनी अज्ञानता से दुखद समझतेहैं यदि नियमों का पालन न किया जावे तो स्वतंत्रताका कहीं ठिकाना नहीं रहे। फिर हमारी स्वतंत्रता नियम से पृथक नहीं है। क्योंकि मंगलमय जगदीश ने प्राणी मात्र के सुख के लिये अन्य शक्तियों में से एक अनुकरण शक्ति भी दी है, इस शक्ति के द्वारा मनुष्य अपने पूर्वजों को जो २ कर्म करते देखता है वैसाही करने लगता है और सब नियमानुकूल कार्यों को स्वाभाविक कर्म समझ लेता है, उसके करनेमें तनिक भी त्रुटि नहीं करता यदि करे तो सर्व प्रकार से हानि की सम्भावना है, क्योंकि जैसे जल और मीन का सम्बन्ध है यदि मीन जलसे क्षणेक के लिये पृथक

हो तो प्राण हानि का भय होताहै। वैसेही मनुष्य भूमिष्ट होतेही सब प्रकार के नियमों (सामाजिक, राजनैतिक और धर्म सम्बन्धी) से घिर जाता है, उसके अनुसार कार्य करने ही में कल्याण होता है। यदि उनके पालन से तनिक भी विमुख हो तो फिर अनर्थ होने लगता है। अतः वे सब नियम देखते २ करते २ स्वाभाविक हो जाते हैं, उनके न करने में दुख और करने से सुख होता है। इससे हमारी स्वतंत्रता दूर नहीं भागती क्योंकि बचपन से अभ्यास पड़ जाता है। हमारी समझ में जितने नियम हैं विधिपूर्वक उनके पालन करने में स्वतन्त्रता बनी रहती है उनके पालन में न्यूनाधिक्य होना ही स्वतंत्रता के दूर भागने का कारण है। यह लिखना कि नियम के अनुसार कार्य करने से स्वतंत्रता दूर भागती है भ्रम मात्र है। (क्रमशः)

—:o:—

प्र और परि

"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते"

उपसर्ग ही से गौरवागौरव है, उपसर्ग ही के बल से भले का बुरा और बुरे का भला होताहै, रोग का जो इतना डर होता है वह भी उपसर्ग ही के लिये। विचार कर देखना चाहिये उपसर्ग ही से राजा अधिराज होते हैं और पति उपपति बनते हैं। "वास" जो कभी 'अधिवास' होकर सुखधाम होता है वही 'उपवास' होकर सर्वनाश करता है, "हार" जो सब का आदर भाजन है कभी "प्रहार" होकर 'संहार' करता है, कभी 'आहार' बनकर प्राण बचाता है। "पात" ही 'निपात होता है, कभी 'उत्पात' करता है, कभी 'सन्निपात' बनता है, वही 'आपात' होकर आधार परिणत होता और आश्रय देता है।

"वाद्" प्र के साथ प्रवाद् 'अप' और 'अभि' के साथ होने से "अपवाद्" और "अभिवाद्" होता है । किन्तु दृष्टान्त बढ़ाने से प्रबन्ध बढ़ जायगा यही "प्रबन्ध" 'प्र' हीन होनेपर गले पड़ेगा।

उपसर्गों मे आज हमको दो ही की आलोचना अभीष्टहै एक प्र दूसरा परि, प्र बड़ा है या परि, प्र अच्छा है या परि, दो एक बातों और दो एक दृष्टान्तों से यही दिखलाना आज के प्रबन्ध का मूल उद्देश्य है । पाठक ! हम कहते हैं कि परि से प्र बड़ा है 'परिचय' से केवल जान पहचान का अङ्कुर निकलता है, किन्तु 'प्रचार' से ही उसकी सब तरह पर बढ़ती होती है । 'परिचर' वा 'परिचार' यदि व्यक्ति विशेषण किया जाय तो दास वा भृत्य होगा, यदि परिचारक हुए तब तो अपमान की सीमा नहीं रही तुम आज्ञावाही हरकारे समझे गये, और यदि 'प्रचारक' हुए तब तुम बुद्ध, खृष्ट, और नानक चैतन्य की मण्डली मे पहुँच गये और इस कारण पूजनीय हुए। बिचारने की बात है, कहाँ तुम्हारा 'परिताप' और कहाँ हमारा 'प्रताप', हमारे 'प्रताप' से 'परिभूत होकर तुम 'परिताप' करते हो, किन्तु उससे हमको 'प्रभूत' आनन्द होता है । अब तो समझ में आया तुम्हारा परिताप बड़ा है या हमारा प्रताप ? तुम्हारा 'परिभाव' बड़ा है या हमारा प्रभाव ? तुम परिभूत होकर छोटे कहलाये और हम प्रभूतानन्द से कितने बड़े हुए ! हमारे गुण का चारो ओर प्रभाषण और हमारे प्रताप का चतुर्द्दिक कीर्त्तन होता है, और तुम्हारे दौर्ब्बल्य और परिताप का चारोओर परिभाषण होता है, निन्दा होती है, अप्रशंसा और अख्याति होती है, अब समझे ? हमारा 'प्र' बड़ा है या तुम्हारा "परि" ?

बहुतसे लोगोंके परिवादकी बात सुनी जातीहै, और कितनी ही निन्दा अपवाद की बात सुनी जाती है, किन्तु क्या सदा इन

बातों पर विश्वास किया जाता है? यह सब तो प्रवाद के सिवाय और कुछ नहीं हैं। देखो यदि यह तुम्हारा परिवाद प्रवाद में पड़े तो तुम निष्कलङ्क हो सकोगे, यदि तुम्हारे परिवाद पर लोग विश्वास करें और वह लोगों में सच कहकर परिगृहीत हो तब तो तुम्हारे तिरस्कार का अन्त हो जायगा, और वाध्य होकर तुमको विग्रह में पड़ना होगा। इसीसे कहते हैं तुम्हारे **परि** से हमारा **प्र** अच्छा है। और उपसर्ग ही से गौरव अगौरव है।

जहाँ प्रवेश करने का सुभीता नहीं वहीं तो परिवेश करना होता है। जहाँ घुसने की चेष्टा निष्फल होती है, वहीं तो किनारे २ भटकना पड़ता है। अब कहो कौन सा प्रार्थनीय है तुम्हारा "परिवेश" या हमारा "प्रवेश" ?

इसी प्रकार जिधर जाओ उधरही देखोगे **परि** से **प्र** श्रेष्ठ, **परि** अपेक्षा **प्र** उत्कृष्ट है और इसी से पाश्चात्य नीति शास्त्र में "प्रणय,, बड़ा और "परिणय,, छोटा, प्रणय ऊँचा और परिणय नीचा, प्रणय उत्कृष्ट और परिणय निकृष्ट है। प्रणय मानो भोजन और परिणय उसका आचमन मात्र है। प्रणय ही पूजा और परिणय दक्षिणान्त हो सकता है। बिना भोजन आचमन वा बिना पूजा दक्षिणान्त से क्या लाभ है ? यह भी कैसे कह सकते हैं ? बिना आचमन के भोजन सिद्ध नहीं होता; किन्तु परिणय बिना प्रणय तो सिद्ध हो जाता है, परिणय तो केवल मनुष्य के भीतर देखा जाता है। वह भी सब में नहीं, मनुष्य छोड़ और किसी जीव में परिणय नहीं है, किन्तु प्रणय सब में है, और जिसको लोग असत्य कहते हैं वही सब असल अविकृत प्रकृति का **पवित्र** वर

पुत्र है। मानव मात्र को तो परिणय नहीं किन्तु प्रणय है। और खृ-ष्टीय शास्त्र में उल्लेख है "देव दूतों में परिणय नहीं प्रणय है," दूत दूतिका के भेंट से ही प्रणय और मिलन होता है. दूतिका दूत में, मिलकर एकमयी हो जाती है और सचमुच तब उनमें पार्थक्य नहीं रहता। ऐसा प्रणय क्या और किसी को होता है? किन्तु इस प्रणय में भी परिणय नहीं है।

इसीसे पश्चिमी समाज में पहले प्रणय तब पीछे परिणय और कहीं केवल प्रणय ही होता है। परिणय केवल समाज दोष से होता है। हमारे हिन्दू समाज सा कुसंस्कारी समाज और नहीं है, इसी कारण हिन्दू समाज में पहिले परिणय पीछे प्रणय होता है। पहले दक्षिणान्त पीछे पूजा, पहले भोजनान्त आचमन पीछे भोजन, पहले आहुति पीछे यज्ञ। अस्वाभाविकता का कहीं ठि-काना है? परिणय हुए बिना प्रणय न होना ही विधाता का अभीष्ट होता तो देखते सब पशु पक्षी गण का भी व्याह होता उनमें भी गुरू पुरोहित होते। हिन्दू समाज सा कृत्रिम समाज और नहीं है, और इसीलिये हिन्दू समाज की इतनी दुर्दशा है इसीलिये हिन्दू समाज दुर्बल, निर्वीर्य्य, हत साहस और परा-धीन है। और सच पूछो तो यह सब हमें सह्य भी है।

प्रणय ही स्वाभाविक और परिणय कृत्रिम है पाश्चात्य समाज मे प्रणय ही का आदर अधिक है; परिणय का वैसा नहीं पाश्चात्य समाज में परिणय के पहले प्रणय है प्रणय ही पन्द्रह आना विवाह है; परिणयके लिये केवल एक आना बच जाता है। यह एक आना भी अब बहुत दिन नहीं रहेगा, अबाध प्रणय दल क्रमशः पुष्ट और प्रबल हो रहा है। पाश्चात्य समाज में जो निर्बोध बूढ़े और पुराने ख़याल के हैं वही अबाध प्रणयमें आ-पत्ति करते हैं वही अबाध प्रणय में बाधा देने को चेष्टा करते

हैं। परिणय की व्यवस्था स्थायी करने के लिये वही अग्र खड़े हुए हैं हमारे देश के भी कुछ लोग अवाध प्रणय के पक्षपाती हुए हैं। यह लोग पहले प्रणय करके पीछे परिणय साधना चाहते हैं, क्रमशः यह लोग भी परिणय को एकदम कंसल (मंसूख) कर देने का कानून करवा लेंगे। प्रकृति के कथन से प्रणय ही प्रधान कार्य्य है इसीसे पशु पक्षी कीट पतंग किसी को परिणय नहीं है, किन्तु प्रणय सब में है। जगत में मनुष्य हैं ही कितने? पशु पक्षी कीट पतंग ही तो असंख्य हैं। "मेजारिटी मस्ट बी-ग्रैंटेड" (राय कसरत जरूर मंजूर होनी चाहिये) संख्याधिक्य का वोट तो उसी ओर को देना होगा।

और व्याकरण भी कहता है परि से प्र उत्कृष्ट है सुतरां परिणय निकृष्ट है। किन्तु व्याकरण ही सब शास्त्रों का मूल है, बिना व्याकरण किसी शास्त्र में प्रवेश करना योग्य नहीं है। व्याकरण सर्व शास्त्र का मूल, और मूल शास्त्र का आदेश ही सर्व शास्त्र का शिरोधार्य्य है। मूल शास्त्र जो व्याकरण है उस का कथन है—प्र श्रेष्ठ परि निकृष्ट; प्रणय श्रेष्ठ, परिणय निकृष्ट। अतएव शास्त्रानुसार भी प्रणय उत्कृष्ट और परिणय निकृष्ट प्रतिपन्न हुआ॥

—:०:—

हिन्दी की लिपि प्रणाली।

हिन्दी लिखावट की प्रशंसा सभी करते हैं यह अपनी वर्ण माला के सौन्दर्य से परिदीप्त हो कर प्रायः सभी भाषाओं की लिखावट को परास्त कर रही है कुछ २ इस में त्रुटि थी उसका सुधार लोगोंने चिन्ह नियत करके कर लिया है। अब सभी भाषा

के शब्द इस में ज्यों के त्यों लिखे जाते हैं। हिन्दी के इस गुण को देखकर अन्य देश निवासी इस पर मोहित हो चले हैं। मेरट की नागरी प्रचारिणी सभा अंङ्गरेजी आदि भाषाओं को नागरी अक्षरों में लिखवाने का उद्योग करना चाहती थी किन्तु दत्त चित्त नहीं हुई। उस को यह आशा है कि कोई न कोई हिन्दी हितैषी उसके अभीष्ट सिद्ध करने के लिये यत्न करे गा। बड़े २ लेखक अब हिन्दी लिखावट की दुर्दशा कर रहे हैं। जि-तने उसकी प्रशंसा मे बट्टा लगाया चाहते है। काशी वाले तो हिन्दी की चिट्ठी पत्री और रिपोर्ट या प्रासंगिक अंग्रेजी शब्दों को कदापि नागरी अक्षरोंमें नहीं लिखते दो चार शब्दोंके लिये अंग्रेजी वर्णमाला का उन्हें बाहर करना पड़ता है उनको देखा देखी और लोग भी उसी रीति से लिखने लगे है जिस में निम्न लिखित हानि हैं।

(१) हिन्दी भाषा में अंग्रेजी शब्दों को केवल अंग्रेजी अक्षरों में लिखने से हिन्दी की बड़ी अप्रतिष्ठा है।

(२) यह रीति कचहरी से हिन्दी वर्णमाला को निकाल कुछ दिनों मे रोमन का प्रचार करे गी।

(३) बहुत से लोग हैं जो अंग्रेजी वर्णमाला भी नहीं जानते किन्तु व्यवहार के कारण सैकड़ों अंग्रेजी शब्दों को जानते हैं वे बेचारे उक्त रीति की लिखावट से बड़ी झंझट में पड़ सकते हैं।

(४) यह रीति गुप्त प्रकार से अंग्रेजीकी उन्नति और हिन्दी की हानि के लिये निकाली गयी है यह विश्वास सर्व साधारण को हो रहा है।

—:o:—

नीतिकुसुम ॥

महाराष्ट्र भाषा के स्त्री शिक्षा विषयक प्रसिद्ध पत्र "मासिक मनोरञ्जन" के सुयोग्य सम्पादक पण्डित काशीनाथ रघुनाथ मित्र के लिखे कुछ प्रबन्धों का इस पुस्तक में अनुवाद है। मुंशी उमरयारबेग हेडमास्टर स्कूल दत्तान (ज़िला रायपुर) इसके प्रकाशक और पण्डित जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल एक होनहार हिन्दी सुलेखक इसके अनुवादक हैं। पुस्तक एक आने पर प्रकाशक या धार्मिक प्रेस प्रयाग के मैनेजर से मिलती है।

अनुवाद अच्छा हुआ है। हिन्दी भाषा में उपदेश देनेवाली ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। इसमें पिता, माता, पुत्र, पुत्री, पति, और पत्नी को अपने कर्त्तव्य पालन के लिये अच्छे अच्छे उपदेश दिये गये हैं। ग्रन्थकार ने पात्रानुसार यथा योग्य उपदेश दिया है। पुस्तक छोटी किन्तु परमोपयोगी है। माधुर्य्य ओज और प्रसाद यथा योग्य स्थान पर विद्यमान हैं इस छोटी सी पुस्तक में जितना हो सकता है ग्रन्थकार ने बड़ी उत्तमता और गम्भीरता से उतना काम किया है। इस के एक एक शब्द गम्भीर और सारवान हैं। उदाहरण के लिये हम इस पुस्तक से कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं:—

पिता कहता है—" जा मेरे बेटे जङ्गल में जाकर देख ले कि तरुण तोता अपने वृद्ध पिता को पङ्खोंपर बिठाकर कैसा घुमाता फिराता है। और उसे निर्भय स्थन मे बैठाकर नित्य उस की चोंच में किस प्रकार चारा डालता है।" इत्यादि—तोता वन का एक विहङ्ग है। किसी स्कूल या कालिज में वह शिक्षा नहीं पाता किन्तु प्राकृतिक नियम से पितृ भक्ति में लीन रहता है। जो मनुष्य जन पदवास में रह कर शिक्षालाभ करते हैं वह यदि पिता

माता की भक्ति और सेवा मे चूकें तो उनके समान मूर्ख और कृतघ्न कौन होगा ? लड़के बालपन मे पशु पक्षियों का कौतुक देख कर उनकी क्रियाओं से जो शिक्षा ग्रहण करते हैं वह प्रायः चित्त पर दृढ़ होकर बैठ जाती है। ऐसे दृष्टान्तो से बालक बालिकाओं को उपदेश देना भारतवर्ष की प्राचीन रीति है। और यह रीति बहुत उत्तम और प्रभावकारिणी होती है। ऐसे ही उत्तम दृष्टान्तों से यह पुस्तक सुशोभित की गयी है। पुस्तक सर्व साधारण के बड़े काम की है भाषा मे व्याकरण सम्बन्धी कुछ भूलें रह गयी हैं। जैसे ऊपर उद्धृत वाक्य में एक जगह 'बिठा कर" लिख कर अनुवादक ने दूसरी जगह बैठाकर लिखा है। इसी तरह कहीं 'जवाबदारी।' शब्द जैसे महाराष्ट्र लोगों की हिन्दी में होते हैं; लिखे गये हैं। कुछ थोड़ी सी बातें मूल ग्रन्थकार ने अपने देश और समाज के सम्बन्ध की लिखी है उन्हें अनुवादक ने ज्यों का त्यों रखदिया है। ऐसी ही दो एक बातों का संशोधन हो जाने से दूसरी आवृत्ति मे यह पुस्तक और उत्तम हो जायगी। सब को यह पुस्तक लेकर अपने घर में बालक बालिकाओं को पढ़ाना चाहिये।

—:०:—

खड़ी बोली की कविता॥

हिन्दी भाषा सम्बन्धी इतिहास में मुजफ्फरपुर निवासी बाबू अयोध्या प्रसाद जी का नाम बड़े गौरव से लिया जायगा। इन के आन्दोलन से हिन्दी कविता की काया पलट चली अथवा

---

* माधूर्य्य, ओज, प्रसादादि का वर्णन समालोचक के तीसरे अङ्क में दिया गया है।

उसके मस्तक की कलङ्क टीका मिट सी चली कि "हिन्दी भाषा अपूर्ण है उसके पद्य भाग पर ब्रह्म के तुल्य शून्यही शून्य है"

कजड़ गांव, श्रान्त पथिक, वर्षा वर्णन, और कान्ता वियोग इत्यादि कई पुस्तकें हिन्दी (खड़ी बोली अर्थात् बोल चाल की भाषा) पद्य की प्रकाशित हुई।

इन्हें देख कर यह कोई नहीं कह सकता कि हिन्दी भाषा मे कविता नहीं हो सकती अथवा वह नीरस होती है। प्रयाग की सरस्वती भी इस विषय मे तत्पर रहती है। उस मे भिन्न २ लेखकों के हिन्दी पद्यमय अच्छे २ निबन्ध छपते हैं। उसने गत किसी अंक में रचना शैली दिखलाने के लिये नवीन और प्राचीन छन्दों में निबद्ध पद्य उदाहरण रूप से उपन्यस्त किये हैं इत्यादि।

खेद की बात यह है कि उन्नति इसकी होने नहीं पायी कि अवनति ने अपनी टांग अड़ायी है। इस से सच्चे हिन्दी हितैषी दुःखी हो रहे हैं। कविगण खड़ी बोली की कविता में "ब्रज् नहि, करै है. दुखिया वे है, तजि, ल्याई तथा आरु', इत्यादि शब्दों का समावेश करते हैं। इस प्रकार उच्छृङ्खल कविता से हिन्दी भाषा के अपकार होने की सम्भावना है। खड़ी बोली के नाम से दूसरी अनिर्दिष्ट नाम धेय भाषा की उत्पत्ति होने का ढङ्ग दिखायी पड़ता है। ब्रज भाषा के नाम से आज कल एक मन गढ़न्त भाषा में कविता होती है वही अवस्था हिन्दी की नहीं होने देना चाहिये।

कविगण निरङ्कुश हैं. उन्हें बहुत स्वतंत्रता प्राप्त है, किन्तु भाषा परिवर्तन करने का साहस उन्हें नहीं करना चाहिये। उन्हें कितनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिये इस विषय का एक प्रश्न "आरानागरी प्रचारिणी सभा', ने अपनी प्रश्नावली में किया है अतएव यहाँ पर अभी विशेष लिखना उचित नहीं।

कितने नवोत्साही हिन्दी हितैषियों ने देखा देखी उक्त ढङ्ग वाले शब्दों से भरी कविता बनाकर मुझे दिखलायी और मैने उन्हें अशुद्ध प्रमाणित किया इस पर उन्होंने विशेष आग्रह किया कि समालोचक के पाठको को इसकी सूचना मिलनी चाहिये कि वे लोग आज कल के कवियों को ऐसी कविता करने से रोकें।

आरा निवासी उर्दू के बडे प्रसिद्ध कवि मोलवी फजल साहब हिन्दी के बड़े प्रेमी है उन्होंने सरस्वती देख कर कहा कि जो छन्द इस में नवीन लिखे गये हैं उनमें से कई एक प्राचीन छन्द हैं उनके वजन फारसी के बहरों में लिखे हुए मिलते हैं।

उनके एक शिष्य ने उक्त बातों की आलोचना से पूर्ण एक पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया है जिसमे छन्दो विचार, अलङ्कार विचार, मुहाविरे का विचार और स्वतंत्रता विचार इत्यादि विषय लिखे जा रहे हैं। अस्तु

(१) कविता में केवल वाक्य योजना में हेर फेर होना चाहिये।

(२) शब्दों की लिखावट नहीं बदलनी चाहिये। अशक्त कवि कहीं २ ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व पढ़ सकते हैं पर यह बात बुरी है।

(३) प्राचीन छन्द अथवा प्रस्तार से अभिमत नवीन छन्द में कविता होनी चाहिये।

(४) आज तक कवियों ने जो अशुद्धियाँ की हैं उन्हें छोड़ देना चाहिये उनका अनुकरण करना ठीक नहीं।

(५) कविता में लोकोक्ति अथवा मुहाविरे के विशेष शब्द बड़े मनोहारी होते हैं उन के निवेश के लिये अवश्य मान करना चाहिये किन्तु पाठकों को वे वाक्य अथवा शब्द अधिक नही मालूम होने चाहिये।

(६) पढ़े लिखे लोग अब शृङ्गार रस की कविता नहीं पढ़ते इस से कविता में इस का प्रधान होना उचित नहीं, प्राकृतिक वर्णन को सर्व साधारण पाठक बड़ी चाह से पढ़ते हैं। इस विषय में कवियों का प्रयत्न श्लाघनीय हो सकता है।

(७) संस्कृत और अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि विरचित पद्यों का अनुवाद बड़े आदर की वस्तु हो रही है।

(८) कानपुर के कवि समाजादि इस विषय में शीघ्र कृतकृत्य हो सकते हैं

(९) पाठकों की रुचि का ज्ञान कवि को अवश्य होना चाहिये यदि इसके विना वह उत्तम काव्य भी करता है तो हत मनोरथ होता है।

आशा है कि कवि और पाठक दोनों अवश्य हिन्दी भाषा को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने की चेष्टा करेंगे।

चौक—आरा } सकल नारायण पाण्डेय

—:o:—

दैनिक पत्र हिन्दोस्थान

में

समालोचना चर्चा

(१) समालोचक के दूसरे अङ्क में आरा निवासी पं० सकलनारायण पाण्डेय ने हिन्दोस्थान की आलोचना की है। इसपर किसी कालाकांकर निवासी उचित वक्ता ने उक्त आलोचना की प्रत्यालोचना में ७ कालम हिन्दोस्थान के काले किये हैं।

लेखक कालाकांकर निवासी हैं यह बात "ढहरायो, और त्यहरायो" इत्यादि शब्दों से अनुमित होती है।

यदि पाठक लोग हिन्दोस्थान और समालोचक को सामने रख पढ़ेंगे तो दोनों का गुण दोष छिपा नहीं रहेगा अतएव पिष्टपेषण करने की इच्छा नहीं है।

हिन्दी साहित्य के उपकार के लिये कुछ चुनी हुई बातें संक्षेप से इस विषय में लिखता हूँ।

(२) समालोचक ने हिन्दोस्थान के दिखलाये हुए कितनेही दोषोंका निवारण मैंने किया था अतएव शेष विषयों ही पर पुनरुक्ति अथवा विस्तार भय से पण्डित जी ने अपनी विचार प्रकट किया था अतएव उचितवक्ता का यह कहना अनुचित है कि पं० जी समालोचक के बहुत दोषों को स्वीकार करतेहैं।

संस्कृत में रत्न श्रेष्ठ और मणि दोनों को कहते हैं अतएव सुवर्ण रत्न का अर्थ होता है, अच्छा सुवर्ण (जैसे पन्ने का सोना) लेखक ने रत्न और जवाहिरात में भेद पूछा है सो भेद स्पष्ट है अर्थात् रत्न का अन्वय सुवर्ण के साथ है और जवाहिरात यह पृथक् पद है अतएव पुनरुक्ति नहीं है।

(३) लेखक हिन्दोस्थान के "वृथालाप" शब्द को प्रकरणानुकूल ठहराना चाहते हैं परन्तु स्वयं बड़ी भूल में पड़ गये वे आलाप शब्द का अर्थ गीति विषयक स्वर का आलापना बतलाते हैं, समालोचक ने कौन गीत गायाथा और किसने सुना था जो हिन्दोस्थान को नापसन्द हुआ अतएव उसको उन्होंने "वृथालाप" लिखा? भला लेखकजी बतावें, संस्कृतके किस कोष में आलाप का अर्थ गीति विषयक स्वर का आलापना है यदि प्रमाण नहीं मिला तो वृथा + आलाप इस में सन्धि नहीं होगी क्योंकि उक्त अर्थ में आलाप शब्द

हिन्दी का ही जायगा और वृथा शब्द संस्कृत का है। आचार्यों को केवल संस्कृत भाषा शब्दोंमे ही सन्धि इष्ट है।

(४) पण्डित जी ने हिन्दोस्थान की "शब्दों का प्रयोग न करने की मानो क़सम खा ली है" इस पंक्तिमें 'का' के स्थान में 'के' लिखने को शुद्ध कहा है लेखक जी 'का' ही लिखना ठीक मानते हैं, हिन्दी के प्रसिद्ध व्याकरण तीन हैं भाषाप्रभाकर, भाषाभास्कर और भाषाचन्द्रोदय इनमें से भाषाप्रभाकर के २३१वें विषय के अनुसार 'के' लिखना ठीकहै। लेखक यदि शेष दोनों व्याकरणों से अपना पक्ष सिद्ध करें तो हिन्दी का एक सूक्ष्म विषय ठीक हो जाय।

सुनिये मैं पण्डित जी का सिद्धान्त बतलाता हूँ जब सम्बन्ध के चिन्ह 'का' के द्वारा सम्बन्धी का अन्वय किसी विभक्तयन्त पद के साथ होता है तब 'का' के स्थान में 'के' हो जाता है चाहे विभक्ति प्रकट हो अथवा गुप्त, यहाँ प्रयोग शब्द के आगे 'के' गुप्त है अतएव पूर्व सम्बन्ध चिन्ह 'का' के स्थान में 'के' लिखना चाहिये।

बिहारबन्धु में छपते हुए पं० केशवराम भट्ट के लिखे व्याकरण के अनुसार "प्रयोग करना" यह एक शब्द हो सकता है उस रीति से भी 'के' का लिखनाही आवश्यक है।

(५) (क) काशीनागरीप्रचारिणी सभा की मीमांसा से हिन्दोस्थान के कहे हुए स्थल में 'न, और 'नहीं' दोनों लिखे जा सकते हैं। मेरी समझ से तो केवल 'नहीं' लिखना ठीक है। न जाने उसके सम्पादक केवल 'न' लिखने के लिये क्यों आग्रह करते हैं?।

(ख) हिन्दोस्थान में पहले दिन लेखक ने अपने को "उचित वक्ता" और दूसरे दिन "सत्यवक्ता" लिखा अब मैं पूछता

हूँ कि "उचित" और "सत्य" में कुछ भेद है कि नहीं ? यदि है तो उन दोनोंमें से लेखक किसके भक्त हैं? भेद नहीं है तो दोनों शब्दों के लिखने का क्या कारण है ?

नाम के स्थान में कृत्रिम शब्द भी एकही प्रकार का होना चाहिये जिससे वह भी नाम के बराबर समझा जाय ।

(ग) "अन्त्यानुप्रास" इस शब्द में से अन्त्य को निकाल कर केवल अनुप्रास के साथ विरोध दिखलाना लेखक का अलङ्कार विषयक ज्ञान प्रगट हो जाता है ।

(घ) जो सम्पादक अशुद्ध हिन्दी लिखते हैं वेही समालोचकके विरुद्ध हैं क्योंकि उनकी पोल समालोचना के द्वारा खुलने पर उन्हें यह कहने का अवसर रहेगा कि समालोचक को मैंने भूल दिखलायी है जिससे वह भी मेरी भूल दिखलाता है । इत्यादि—

ता० २—११—०२
चौक आरा—

भवदीय
बिहारीलाल विद्यारसिया

—:०:—

समालोचक समिति ।

समालोचक समिति के मेम्बरों से सरस्वती और अवधसमाचार के सम्पादकों ने अनेक प्रश्न किये हैं उन को यह जानने की चिन्ता हुई कि समिति के कौन सभ्य कब से मेम्बर हुए, किस नियमपर हुए ? इत्यादि और इन्हीं बातों को पूछने के लिये उन दोनों सम्पादकों ने समिति के सभ्यों को चिट्ठियां लिखी थीं । उन प्रश्नों के जवाब मे एक महाशय का उत्तर भी अवधसमाचार के सम्पादक ने छापा है । जिन महाशय का उत्तर अवधसमा-

ओर से छापा है उन्हीं महाशय ने हम को भी एक चिट्ठी लिखी है उसे हम यहाँ छापते हैं आप लिखते हैं :—

"प्रिय महाशय।

* * हम इस मामिले में कुछ न लिखना चाहते थे परन्तु कई जगह से कई पत्र आने पर उत्तर देकर हमें पिण्ड छुटाना पड़ा। उन्हों ने पूछा कि क्या हम सभासद हैं हमने लिखा कि आपके कहने पर हम ने आप की समिति का सभासद होना स्वीकार किया है। उनके और भी कई प्रश्न थे कि यह समिति कब और कहां स्थापित हुई हमने उत्तर दिया कि हमको विदित नहीं। उन्होंने पूछा किस अधिवेशन में हम सभ्य चुने गए हम ने कहा हम को नहीं मालूम। इसी प्रकार कई प्रश्न थे। जिन का हम ने यथोचित उत्तर दे दिया। न मालूम व्यर्थ के झगड़ों से क्या लाभ समझा जाता है?"

अवध समाचार को जो आपने जवाब दिया उसका भी मतलब यही है उस में इतनी बात अधिक है कि जिसे लोग समालोचक समिति कहते हैं वह शशशृङ्गवत है।

यह तो हुआ उनका दोनों ओर का भेजा हुआ जवाब। लेकिन बात इतनी है कि जैसे आप हमारे कहने पर समिति के सभ्य हुए हैं वैसे ही जितने सभासद हुए हैं सब हमारी प्रार्थना पर ही हुए हैं। और इसी प्रकार प्रार्थना पर श्रीयुत मान्यवर पण्डित दुर्गा प्रसाद मिश्र ने समिति का सभापति होना स्वीकार किया है।

जब यह सब हो चुका और समिति के सभ्यों के लिये नियम सभापति की सेवा में मंजूरी के लिये भेजे गये उन्हीं दिनों हमारे परम शुभचिन्तक सहायक और उक्त सभापति के प्राणाधार पं० केशवप्रसाद मिश्र की अचानक मृत्यु हो गयी इसी कारण वह सब

जैसे के तैसे बहुत दिनों तक पड़े रहे। इसी कारण अलग नियमों के छपने और सभ्य महाशयों के पास भेजने में विलम्ब हुआ। बहुत कुछ निवेदन करने और लिखने पर उन्होंने यह नियम अब भेजे हैं। उसकी कापी प्रेस में छपने को भेजी गयी थी कि इधर सरस्वती और अवध समाचार के सम्पादकों को नियम जानने की चिन्ता हुई। जिसका फल यह हुआ कि सब सभ्य हम से नियम मांगने लगे। अतएव हम उन नियमों से सर्व साधारण का भी सम्बन्ध समझ कर उन्हें यहाँ प्रकाश करते हैं और हाल पूछने वालों को हम से पूछना चाहिये।

—:o:—

सभ्य महाशयों के नियम।

१—सभासदों की सम्मति और सभापति की आज्ञासे इन नियमों में समयानुसार परिवर्त्तन अथवा परिवर्द्धन हो सकेगा।

२—सभ्य महाशयों को सेक्रेटरी की भेजी हुई पुस्तकों की समालोचना उसी के साथ निर्धारित किये हुए समय के भीतर लिखकर पुस्तक के साथ लौटानी होगी।

३—हरएक सभ्य सेक्रेटरीकी भेजीहुई पुस्तकोंकी समालोचना अपनी अभिज्ञता के अनुसार व्यक्ति गत राग द्वेष त्याग कर न्याय पूर्वक पक्षपात शून्य करने को वाद्ध होंगे।

४—जो सभ्य जिस विषय के पुस्तकावलोकन में अपनी अभिरुचि प्रगट करेंगे उनके पास उसी विषय की पुस्तक भेजी जायेगी।

५—समिति के सेक्रेटरी के पास समालोचना भेजने अथवा पुस्तक लौटाने का डाक महसूल और नियत समय की सूचना हर-एक सभ्य पुस्तकों के साथ ही पावेंगे।

६—जो सभ्य सेक्रेटरी की सूचनानुसार नियत समय में समालोचना अथवा पुस्तक नहीं लौटा सकेंगे वह अपने सुभीते के

अनुसार सेक्रेटरी से और समय मांग सकेंगे और सेक्रेटरी सुभीते के अनुसार उनको समय दे सकेगा।

७—जो सभ्य किसी कारण से सेक्रेटरी की भेजी हुई पुस्तक की समालोचना करने का अवकाश नहीं रखते होंगे उनको पुस्तक पाते ही लौटा कर अपने अनवकाश की सूचना देनी होगी।

—:०:—

भारत की आशङ्का

अर्द्ध शताब्दी पहले भारत के भग्न होने की आशङ्का हुई थी। इस मृत प्राय देश और समाज पर पाश्चात्य सभ्यता के प्रबल प्रवाह का झोंका लगा था। अपने बाहुबल और राज्यकौशल से इङ्गलैण्ड समग्र भारत को ग्रास करके ऊपरी चमक दमक से भरी सभ्यता के बल से समाज को भी ग्रस लेने के लिये तैयार था। हम लोगों के सब बन्धन ढीले हो चले थे। धर्म भ्रष्ट और आचार भ्रष्ट होने के कारण सब कुछ जाने की नौबत हुई थी। अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रथम फल स्वदेश की सब सामग्री पर विराग धर्म में अनास्था, लोकाचार से अश्रद्धा और आहार व्यवहार से अभक्ति हो चली थी। अपने धर्म के प्रति आक्रमण धर्म संस्कार का, अपनी जाति के प्रति अश्रद्धा उन्नत मन का और देशाचार के प्रति घृणा ही स्वाधीन चित्त का परिचायक हो उठा था। चारों ओर से तरह तरह के आसुरिक बल मिल कर भारत के क्षीण जीवन स्रोत को बलपूर्वक पश्चिम सिन्धु की ओर खींचे लिये जा रहे थे।

किन्तु इस प्राचीन देश में मेरुमज्जा गत एक प्राण शक्ति है जिससे यह मर कर भी नहीं मरता। इतनी परीक्षा कभी किसी

जाति को नहीं हुई। धर्म्म, विप्लव, राज्यच्युति, और पराधीनता का कितनी बार पाला पड़ा उसका कुछ ठिकाना नहीं है। ब्राह्मण्य धर्म को अतलान्तक महासागर में बोर देनेके लिये बौद्ध धर्म एक समय जाग उठा था। अन्त को वह भी बह कर इस देश से बाहर हो गया। ब्राह्मण्य धर्म ने फिर प्रभावशाली हो कर देश में अधिकार किया। इसलाम धर्म्म रक्त रञ्जित तलवार हाथ मे लेकर धर्म्म का प्रचार करने लगा। मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनाने लगा। लाखों आदमी को बल पूर्व्वक दीक्षित करने लगा। अन्तको वह साम्राज्य और धर्म्म भी बल हीन हो गया। अङ्गरेज़ों के साथ उनके नवधर्म्मागमन से कितने ही शिक्षित और गण्यमान्य लोग नया धर्म्म अवलम्बन करने लगे। ब्रह्म और आर्य्यसमाज के अभ्युदय से वह सोता भी मन्द हो चला। किन्तु इनसे अधर्म्म का प्रचार और अधिक हुआ था। नास्तिकता की दृढ़ता और दर्प चलागया। केवल उसकी उच्छृङ्खलता और असंयम रह गया। जैसे निम्नगामी वैसेही आत्म संयम दूर हुआ। अविश्वास के साथ यथेच्छाचार आया। लेकिन इस सोते का वेग भी ह्रास होता जाता है। पहले का अब उलटा हो रहा है। हम लोगों की जो सामग्री बही जाती थी वह अब ज्वार के जोर से फिरी आ रही है। बड़े वेग से ज्वार आने का लक्षण दीख पड़ता है। मन में यही धारणा होती है कि समय का सोता खूब उछलता हुआ एक बार बड़े वेग से बहेगा।

हम लोग क्या करेंगे? भाटे के साथ जैसे बहे जातेथे ज्वार के साथ भी क्या वैसेही बहते चलेंगे? निश्चेष्ट और निश्चिन्त होकर जल में देह ढील देने से क्या हम लोगों का कर्त्तव्य पूरा हो जायगा? सोते की धारा जैसी फिरी है उसको विचारने देखने से आश्चर्य के भँवर मे डूबना उतराना पड़ता है। (शेषआगे)

समालोचक।

मासिक पत्र।

सम्पादक।

बाबू गोपालराम गहमरनिवासी।

वर्ष १ला } दिसम्बर सन् १९०२ ई० { अङ्क ५

मुद्रित विषय।

प्रोप्राइटर और प्रकाशक।

श्रीयुत मि० जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर

Printed at the Dharmik Press—Prayag

नियमावली।

१—"समालोचक" हर अङ्गरेजी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करेगा।

२—दाम इसका सालाना १॥) है, साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा और ≈) का टिकट भेजे बिना नमूना भी नहीं पासकेगा।

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी; कोई विज्ञापन बिना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा.

४—आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी, किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी जिस वस्तु की समालोचना छापी जायगी उसकी न्याय और युक्ति पूर्ण पक्षपात शून्य समालोचना छापी जायगी।

५—जो पुस्तक व पोथी अश्लील अथवा सद्गनिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उनका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग कियाजायगा जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होगी उसके प्रचार का उचित उद्योग किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसा पत्र व पुरस्कार प्रदानादि से उत्साहित किया जायगा.

६—जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होती है वही छापी जाती है समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझना चाहिये.

७—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाज़ीपुर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र विज्ञापन के मामिले की चिट्ठी पत्री सब समालोचक के मेनेजर मिस्टर जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर के पते पर भेजना चाहिये।

काव्य संज्ञा ।

—०—

काव्य संज्ञा निरूपण करना बड़ा कठिन है। कुछ विषय ऐसे हैं जिनका अनुभव अथवा आस्वादन तो होता है किन्तु वाक्य द्वारा उन को उचित रूप से बतलाना या उसकी यथार्थ संज्ञा निरूपण करना अतिदुरूह होता है। एक काव्य मर्म्मज्ञ ने कहा है. "यदि हम से कोई पूछे कि कविता तो बहुत पढ़ते हैं, लेकिन प्रकृत कवि कौन है इसका निर्णय कैसे करें? उसके उत्तर में हम कहेंगे कि किसी कवि के काव्य का कुछ अंश पढ़ जाने पर भी मन में ऐसा होकि इस में कवित्व है या नहीं? तो समझ लेना चाहिये कि उसमे कवित्व नहीं है।" फिर उसी पण्डितने पुरातन अलङ्कारिक वाक्य "अविदित गुणापि सत् - कवेर्भणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम" उद्धृत किया है और कहा है कि शरीर मे जैसे वस्तुओं का रस चखने के लिये रसना है आत्मा को भी मानो एक रसना है जो सौन्दर्य्य चखती है।"

कहना नहीं पड़ेगा कि इन बातों से भी कुछ संज्ञा निरूपण नहीं हुआ। पहले देखना चाहिये कि काव्य का अभिप्राय क्या है? अभिप्राय निर्णय द्वारा प्रकृतिनिरूपण में सहायता होगी। एक पण्डित के मत से काव्य का प्रधान उद्देश्य सौन्दर्य्य की अवतारणा द्वारा चित्त विनोदन है। लोक शिक्षा, और समाज में सुनीतिस्थापन इत्यादि भी काव्य का अभिप्रेत है लेकिन यह गौण है। काव्यद्वारा मनोवृत्तियों की कोमलता सम्पादित होती है। राम युधिष्ठिरादि के माहात्म्य प्रदर्शन से लोगों का मन धर्म्म पथ में प्रवर्तित होता है। समाज की दुर्नीति विदूरित और मानव मन मे उन्नत चिन्ता की प्रतिष्ठा होती है। किन्तु यह सब

काव्य के प्रथम लक्ष्य नहीं हैं। यह काव्य के आनुषङ्गिक और अवश्यम्भावी फल कहे जा सकते हैं। संस्कृत काव्य के अभिप्राय के सम्बन्ध में लिखा है—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये सद्यः पर निर्वृतये कान्ता सम्मित तयोपदेश युजे।" काव्यद्वारा सद्य प्रीति लाभ होता है और "कान्तासम्मितया" इस से उपदेश वा शिक्षा मे भी कोमलता और चित्त विनोदन का भाव आता है। और यह सूचित होता है कि काव्य का फल पहले चित्तविनोदन और आनुषङ्गिक लोक शिक्षा है। काव्य का प्रधान वा मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य्यावतार द्वारा चित्तविनोदन और उसका नित्य फल लोक शिक्षा है। सुतरां काव्य का अभिप्राय निर्णय करने में कोठप का एक प्रधान उपकरण "सौन्दर्य्य" मिला।

सौन्दर्य्य क्या है, इस का विश्लेषण द्वारा सम्यक निरूपण करना कठिन है। विचार शील और रसज्ञ मात्र सौन्दर्य्य के रसास्वादन में अकथ प्रीति लाभ करते हैं। इसी को इस तरह से कह सकते हैं कि जो आनन्द दायक है वही सुन्दर है। सौन्दर्य्य बोध और सौन्दर्य्य अनुभव से प्रीति लाभ करना मानवात्मा का स्वाभाविक धर्म्म है। इस विश्व संसार में समस्त वस्तु मात्र ही विचार शील की आँखों में सुन्दर कही जा सकती हैं। नद नदी पर्वत, निर्झर, समुद्र इत्यादि वाह्यवस्तु और सृष्टि का सारभूत मानवमन प्राकृतिक सौन्दर्य्य का आधार है प्रकृति वैचित्र्य मयी है। अरुणोदय के समय क्षितिज की रक्तिम शोभा देख कर हम लोग मुग्ध होते हैं, नक्षत्र खचित नभ दर्शन से प्रीति लाभ करते हैं और कौमुदीचुम्बित ऊर्म्मिमाला की शोभा से प्रफुल्ल चित्त होते हैं। कभी वायु विताड़ित प्रचण्ड तरङ्ग मय सिन्धु गर्ज्जन, विद्युत विलासित जीमूत मन्द्र और प्रशान्त सागर का उदार

गाम्भीर्य्य विचार शील के मन को अनिर्व्वचनीय आनन्द रस से परिप्लुत करता है। बाह्य प्रकृति की भांति अन्तर्ज्जगत भी वैचित्र पूर्ण है। नैसर्गिक लीला के अनन्त वैचित्र में अनन्त सौन्दर्य्य और वही अनन्त सौन्दर्य्य अनन्त प्रीति का आकर है।

सौन्दर्य्य का स्वरूप निर्णय करनेवाले कुछ लक्षणों का निरूपण हो सकता है। यद्यपि समाज और रुचि भेद से सौन्दर्य्य बोध की विभिन्नता भी देखी जाती है तथापि सौन्दर्य्य के कुछ साधारण धर्म्म हैं जो उसके नित्य धर्म्म कहे जा सकते हैं। सौन्दर्य्य भी कुछ प्राकृतिक नियमों के आधीन है। उन नियमों की अन्यथा से हम लोगों के सौन्दर्य्य ज्ञान पर आघात होता है उन नियमों का यहां हम विवरण करते हैं।

(क्रमशः)

——:o:——

नाटक की भाषा।

नाटक और उपन्यासादि में जो पात्रानुसार प्रचलित कथोपकथन की भाषा (Colloquial) और ग्राम्यता (Slong) व्यवहार से सुकुमार साहित्य शिल्प की शोभा वृद्धि होती है उसको साहित्य सेवीमात्र स्वीकार करेंगे, इसका कारण यह कि नाटकादि के विकृत चरित्र नाना प्रकार और विविध श्रेणी के होते हैं. अतएव उनकी भाषा भी उसी प्रकार नानाश्रेणी की होनी चाहिये, नाटक मे राजा मंत्री सभासद वा सम्भ्रान्त वंश के नायक नायिका की भाषा, शास्त्रदर्शी ब्राह्मण पण्डित की भाषा, दूत दूतिनी, प्रतिहारी, दास दासी अथवा अन्यान्य पात्र पात्रियों की भाषा समान भाव से हू नेपर नाटकादि का सौन्दर्य्य और रसभङ्ग होता है, यदि सत्यहरिश्चन्द्र में राजा हरिश्चन्द्र और

चौधरी डोम सर्दार की भाषा एकसी होती, अभिज्ञान शाकुन्तल में धीमर, कोतवाल और दुष्यन्त माढव्य की भाषा समान होती तो वह नाटक उपहास्य छोड़कर प्रशंसनीय नहीं होते।

ऊपर कह आये हैं मानव समाज में श्रेणी विशेष से नर नारी के चरित्र और भाषा जैसे नानाप्रकार की होती हैं नाटकोंके पात्र और पात्रियों के स्वभाव और भाषा को भी ठीक उसी तरह प्रगट करना उचित है। इस के बिना व्यक्तिग्रह नहीं होगा। व्यक्तिग्रह क्या है इस को यहाँ हम एक उदाहरणसे समझाते हैं. हरिश्चन्द्र नाटक में जब राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के वेष से श्मशान में गये तब राजा के समान बातचीत वा विलाप करना अस्वाभाविक होगा यही विचारकर प्रवीण नाटककवि चाण्डाल वेषी हरिश्चन्द्र से चाण्डाल की कर्कशा भाषा का उच्चारण कराने का प्रयास करेंगे, क्योंकि श्मशान मे चांडाल का वेप धारण करके राजा की भाँति वार्त्तालाप करने से चाण्डाल चरित्र की अस्वाभाविकता प्रकाश होगी। और राजा हरिश्चन्द्र को कोई चांडाल नही विश्वास करेगा इसी को "व्यक्तिग्रह" कहते है।

आज कल हिन्दी भाषा के नाटक उपन्यासों मे राजा, मंत्री सभासद्, पण्डित; सेनापति प्रभृति जिस भाषा में बात करते हैं, रानी, सखी, और अन्यान्य पुरमहिलाओंके मुंह से जैसी भाषा सुनी जाती है, प्रतिहारी, दास, दासी, द्वारपाल प्रभृति निम्न श्रेणी के पात्र और पात्रियों के मुख से भी वैसीही भाषा देखी जाती है। नाटकमें ऐसी प्रथा वास्तविक अन्याय है। शिक्षिता किम्वा अशिक्षिता स्त्रियों की भाषोच्चारण पद्धति पुरुषों की भाषोच्चारण पद्धति से स्वतंत्र है। माना किसी भले घर की मालकिन (गृहिणी) कहती है—" ए बाबा। बिटिया को और पांच बरिस कैसे कुँवारी राखूँगी? भला बारह तेरह बरिस की

कुमारी बिटिया घर में राखकर कैसे मुंह दिखाऊंगी ?" इस को पढ़ सुन कर विचारवान पुरुष सहजही समझ जायंगे कि किसी विवाहोपयुक्ता कन्या की माता कह रही है। यह बोली पुरुषों की नहीं है। लेकिन इसी को यदि स्त्रियों की भाषा में न कह कर —'ओफ़ ! ऐसी विवाहोपयुक्ता कन्या को चार पांच वर्ष तक क्वांरी क्योंकर रक्खूंगी ? द्वादश त्रयोदश वर्ष की वयस्का अविवाहिता कन्या घर में रख कर मैं जन-समाज में कैसे मुख दिखाऊंगी इस तरह साधु भाषा में कहें, तो नाटक बिलकुल अस्वाभाविक हो जायगा। कहीं कहीं इस प्रथा का भी व्यतिक्रम देखा जाता है। अर्थात् गन्यमान्य व्यक्ति, स्त्री अथवा निम्न श्रेणी वालों के साथ वार्त्तालाप करते समय चलित अथवा ग्रामीण भाषा में बात करते हैं उस समय उस व्यक्ति से साधु भाषा में कहलाने से ठीक नहीं होगा। क्योंकि वैसा करने से उनकी भाषा उन लोगों की समझ में नहीं आवेगी। ऐसी अवस्था में भी उभय श्रेणी (शिक्षित और अशिक्षित) के कथोपकथन में भाषा का तारतम्य होना आवश्यक है। वस्तुतः नाटक लिखने के समय नाटककार को विशेष विवेचना करके नाटकोक्त पात्र और पात्रियों में अर्थात् प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित, ऊंच और नीच वंशीय, आर्य्य और अनार्य्य, ब्राह्मण और शूद्र, राजा प्रजा राजमहिषी, सखी, दासी, और जङ्गल निवासी प्रभृति पात्र भेद से भाषा का उचित व्यवहार करना चाहिये इस विषय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने कई नाटक भारतजननी, नीलदेवी, सत्य हरिश्चन्द्रादि में पं० दुर्गा प्रसाद मिश्र उचित वक्ता सम्पादक ने अपने " प्रभास मिलन में बाबू बालमुकन्द गुप्त ने अपनी रत्नावली नाटिका में आदर्श रूप पर पात्रोंके लिये यथा योग्यभाषा का व्यौहार किया है। नीलदेवी में पागल और द्वार

पाल की भाषा शूरवीर क्षत्रियों की भाषा सत्य हरिश्चन्द्र में पिशाचिनी और पिशाच की बोली, प्रभासमिलन में कृष्ण वियोग व्यथित गोपियों की विरह वेदना, रत्नावली में राजा और मंत्री की गाम्भीर्य्य पूर्ण भाषा उन के लेखकों का अनुभव और पाण्डित्य प्रगट करता है।

इन दिनों अनेक नाम के भूखे ज्ञान और अनुभव के छूछे लोग पुस्तकों के नाम के साथ नाटक शब्द जोड़कर उपहास बटोरते हैं। कभी हम ऐसी एकाध पुस्तकों की आलोचना के समय इस का विशेष विवरण लिखें गे।

जिस नाटक के पढ़ने वा देखने से पात्र और पात्रीगण का नाम और चरित्र याद नहीं हो जाय उस का पढ़ना या अभिनय देखना किस काम का? यदि नाटक के पात्र पात्री गण की बात सुनने वा अभिनय देखने से "व्यक्ति ग्रह" नहीं हुआ तो उसका पढ़ना वा देखना व्यर्थ हुआ। इसी कारण संस्कृत नाट्य शास्त्र में नाटक की भाषा "भाषा विवेक" कहलाती है।

(बाकी आगे)

—:o:—

भारत की आशङ्का

गतांक से आगे

जिस धर्म्म और समाज को उस देश के लोग हर तरह से तुच्छ और हेय जानते थे उस पर यूरोप और अमेरिका के अनेक लोग अनुराग कर रहे हैं। कोई हिन्दू धर्म ग्रहण करता है, कोई वक्तृता देकर कहता है कि ऐसा धर्म्म और समाज भूतल पर दूसरा नहीं है। अङ्गरेज पुरुष स्त्री गण हिन्दू का शिष्यत्व स्वीकार करते हैं। यह सब विदेशीय विद्वान हमलोगों को

कह रहे हैं, कि तुम लोग अपना धर्म और लोकाचार प्रभृति कभी मत छोड़ो। तुम लोगों के दर्शन के आगे सब दर्शन परास्त होंगे, तुम्हारे समाज और वर्णाश्रम की तुलना में सब समाज हीन हैं। इन सब बातों को सुनकर और श्वेताङ्ग हिन्दू प्रभृति का यह चमत्कार देखकर हम लोग क्रमशः आनन्द और गर्व के मारे फूले जाते हैं। प्राचीन आर्य्यों का लोकाचार और धर्म्म जो उत्कृष्ट था यह तो हम बहुत समय से अच्छी तरह जानते ही समझते आते हैं इन दिनों हम लोगों के मन में यह संस्कार स्थान पाता जाता है कि हम लोगों का वर्त्तमान समाज भी वैसाही उत्कृष्ट और प्रशंसनीय है। हम लोगों की सामाजिक प्रथा, हम लोगों का आचार व्यवहार, हम लोगों की विवाह पद्धति, सभी उत्कृष्ट और उन्नत है।

भारत की प्राचीन और वर्त्तमान अवस्था भिन्न भिन्न हैं। किन्तु उस भिन्नता को भारतवासी अच्छी तरह नहीं अनुभव करते प्राचीन आर्य्य जाति की बात कहकर जब भारतवासी गर्व करते हैं तब वह केवल उन्हीं आर्य्यों के वंशज हैं इतना ही उनके मन में नहीं आता वरञ्च यह धारणा होती है कि उन का सब गुण ही उन लोगों में वर्त्तमान है। और इसी बात को याद करके वह अन्यान्य जातियों (विशेष जो जाति राजा है) को अत्यन्त कृपा और किञ्चित घृणा की दृष्टि से देखते हैं। और विचारते हैं कि अङ्गरेजों को सेना है किन्तु उनको क्या शास्त्र है? उन को गोला, बारूद है लेकिन योग कहां है? वह अपने आगे उन को वैसा नहीं समझते वेद, दर्शन, रामायण, महाभारत जिस जाति का है उसी जाति के हम लोग हैं और उसी जाति की महिमा पूर्णरूप से हम लोगों में विराजती है। यह कहते हुए भारतवासी कुछ नहीं सकुचाते।

इस आर्य्यजाति की अपेक्षा प्राचीन रोमन जाति अद्भुत नयी है. इटली ने स्वाधीनता भ्रष्ट होकर फिर हम लोगों का वही रत्न पाया है. वह लोग अब भी हैं. वर्तमान इटालियन जाति क्या रोमनों के वंशधर नहीं हैं? मेटसिनी और गैरिवल्डी को सिसरो और ब्रूटस के बराबर क्यों नहीं कहते? क्या हम्बर्ट को सीजर के समान कह सकते हैं? लेकिन ऐसा कहने से जगत् हंसकर हम लोगों को पागल कहेगा. यही नहीं बल्कि इटालियन और रोमन जाति में जो थोड़ासा सादृश्य है वह भी हम लोगो से प्राचीन आर्य्यों का नहीं रहा है. कहां वह इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर और कहां वह सदानन्दमयी अयोध्या नगरी? इटलीवाले जैसे हम लोगों से श्रेष्ठ हैं आर्य्यवंश भी वैसे ही रोमनों से श्रेष्ठ थे. किन्तु तौ भी हम लोग अपने तई प्राचीन आर्य्य जाति के स्थान में विवेचना करने वा कहने में कुछ कुण्ठित नहीं होते।

प्राचीन आर्य्यजाति की भांति यदि हमलोगों का भी प्रकृत माहात्म्य रहता तो हम लोगों की यह दशा क्यों होती? वह क्यों जगत् में शीर्षस्थानीय थे और हम लोग क्यों अनेक जातियों के पदानत हुए इसका कारण विचारने योग्य है. आर्य्यजाति का गौरव इस समय जगत का गौरव है हमलोगों के वास्ते केवल वही आदर्श है. वह संयम, वह शिक्षा, वह तेजस्विता वा न्यायपरायणता कुछ भी हमलोगों में नहीं है. वह ब्रह्मचर्य्य इन्द्रिय संयम, वह चरित्र दृढ़ता अब ग्रन्थों ही मे रहगयी है. उस समय का सब लुप्त होगया है कीर्ति भर नहीं गयी है. केवल कीर्ति स्मरण करके हम लोग महत्व प्राप्त नहीं होंगे एक बात और स्मरण रखने की यह है कि उस समय आर्य्यजाति जैसी उन्नत दशा मे थी उसका आदर्श उस से भी उन्नत था. वह

लोग जिस अवस्था में पहुंचे थे उसी से सन्तुष्ट नहीं थे सदा उन्नति का अनुशीलन करते थे। मानव जाति की उन्नति की समाप्ति नहीं है। हम लोग सदा जिस आदर्श का उल्लेख करते हैं उस भ्रष्ट आदर्श के पुनःप्राप्ति की चेष्टा कहाँ करते हैं ?

राजद्वार में हम लोग अनेक विषयों के लिये प्रार्थना करते हैं किन्तु जाति की यथार्थ उन्नति हमलोगों के स्वायत्त है इसको स्मरण नहीं करते। हमलोगों का चरित्र हमी लोगों के हाथ है, समाज हमलोगों के अधीन है यह बात हमलोग क्यों नहीं याद रखते ? यदि आत्मसन्मान और आत्मसंयम की हम लोग रक्षा नहीं करसकेंगे तो राजद्वार से हमारा इस में क्या उपकार होगा ? हम लोगों की सब वर्तमान प्रथा उत्कृष्ट और हमलोग पराधीन होनेपर भी सब से श्रेष्ठजाति हैं, ऐसा जो विश्वास हमलोगों में बढ़ रहा है इस से हम लोगों के प्रकृत अमङ्गलकी आशङ्का है, क्योंकि हमलोग अपनी उन्नति का पथ अपनी इच्छा पूर्वक रोकते हैं इस समय भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न प्रथा है, एक में बालविवाह को लेकर संग्राम हो रहा है, कोई कहता है कि ऐसा विवाह उत्तम है, कोई इस को दोषावह बतलाता है, किसी में बालविवाह अबतक नहीं प्रचलित है और दोनों हिन्दू जाति हैं किसी में निष्ठा का अभाव नही है, विधवा की व्रतरक्षा के सम्बन्ध में देशाचार भिन्न भिन्न प्रकार का है, पश्चिम बङ्गाल में कई एक वर्णों के सिवाय किसी में विधवा को निर्जला एकादशी की व्यवस्था नहीं है, उत्तर भारत मे पर्दा है, दक्षिण भारत में वह भी नहीं है, इन सब भिन्न भिन्न देशाचार और लोकचारों मे सामञ्जस्य क्यों नहीं होता? यह बातें केवल हिन्दू जाति ही की कही गयी है यदि यथार्थ ही हम लोग प्राचीन आर्य्यजाति को आदर्श स्वरूप

जानते हैं तो उस के समान होने की चेष्टा क्यों नहीं करते? कूट तर्क में समय व्यतीत और चित्त विक्षेप न करके हम लोग प्रकृत कर्मक्षेत्र में क्यों नहीं अवतीर्ण होते? राजद्वार पर जाकर इस विषय के लिये हाथ पसारने का काम नहीं है न राजा के नियोग अथवा आदेश की आवश्यकता है, यदि हमलोग इस महाव्रत में कृतकार्य्य होसकें तो इस के समान और कुछ नहीं होसकता।

और यह जो रजोगुण प्रबल अङ्गरेज जाति है इस को जैसा हम ऊपर कह आये हैं वैसा न देखकर आलस्य में न पड़कर हमलोग इस क्षमताशाली जाति से अनेक शिक्षा लाभ कर सकते हैं, इस रजोगुण सम्पन्न महा प्रतिभाशाली, शक्तिपुरुषी, राजनीति विशारद, कर्म्मयोगी जाति के पास क्या हमलोगों को सीखने के लिये कुछ नहीं है? वस्तुत: हमलोगों की शिक्षा ही के लिये ललाट पर राजतिलक धारण करके यह जाति भारत में आयी है यदि इन के आहार, विहार और वेष विलास ही की शिक्षा लेकर भारतवासी शिथिल रहे तो उनका मन्दभाग्य ही कहा जायगा।

—:०:—

भारतवर्ष का इतिहास

हमारे देश में राजा समाज का एक अंग होते थे। हमारे देश के गुरु पूज्य ब्राह्मण भी एक तरह से समाज और धर्म्म की की रक्षा में प्रवृत्त थे। क्षत्रिय राजा गण भी दूसरी ओर से उसी कार्य्य के व्रती थे। देश रक्षा गौण किन्तु देश की धर्म्मरक्षा ही उन का मुख्य कर्त्तव्य था। भारतवर्ष में साधारणतः राजा लोग सब देश को ग्रास करके नहीं बैठते थे वह प्रधान व्यक्ति थे इस

में कुछ सन्देह नहीं किन्तु उनका स्थान सीमाबद्ध निर्दिष्ट था, और इन्हीं कारणों से राजा के न रहने पर भारतीय समाज अङ्गहीन और दुर्बल होजाता था तौ भी मरता नहीं था। जैसे एक आँख के जाने पर दूसरी आँख से देखने का काम चल जाता है वैसे ही अपने राजा के अभाव से भी काम चलतागया।

विदेशी राजा और सब पर अधिकार कर सकते हैं किन्तु सामाजिक सिंहासन का अंश ग्रहण नहीं कर सकते। समाज ही इस भारत भूभाग का मर्म्मस्थान है। इस समाज से विदेशी राजा का सम्बन्ध नही रहने के कारण ही यथार्थतः भारतवर्ष के साथ उनका सम्बन्ध दुर्बल रहता है।

सब देशों में विदेशी राजा देश के सम्पूर्ण अन्तरस्थल में प्रवेश नहीं कर सकता। भारतवर्ष में वह प्रवेश मार्ग और कण्टक मय है। क्योंकि भारतवर्षीय समाज ने दुर्गमदुर्ग की भांति अपने तईं इतना दुर्गम कर रक्खा है कि विदेशीय अनात्मीय उस में जाही नहीं सकते। इसी कारण विदेशी सम्राज्य का इतिहास भारतवर्ष का प्रकृत इतिहास नहीं कहा जासकता। वह इस का एक सामान्य अंश है जो परिशिष्ट में लिखना उचित है।

भारतवर्ष का जो इतिहास हमलोग पढ़ते और कण्ठ करके परीक्षा देते हैं वह भारत के निशीथकाल की एक दुःस्वप्नकथा मात्र है। कहाँ से कौन आया किस के पीछे कौन चढा काटमार होने लगी, बाप बेटे से, भाई भाई से, सिंहासन के लिये लड़ने लगा। एक दल गया तो उस के पीछे दूसरा चढ आया। मुगल पठान, पोर्टुगीज़, फ्रांसीसी, अंगरेज़ इन लोगों ने इस स्वप्न को खूब जटिल कर दिया है।

किन्तु इस लाल रङ्ग के स्वप्नदृश्य पट से भारतवर्ष को आच्छन्न करके देखने से यथार्थ भारतवर्ष नहीं दीख पड़ता।

इन इतिहासों से भारत वासियों का पता नहीं लगता इन से यही ज्ञान पड़ता है कि भारतवासी वह नहीं हैं जिन्होने मार काट, खूनखराबी और खचाखची की है वही हैं.

उस समय उस दुर्दिन मे भी यह मारकाट और खूनखराबी भारतवर्ष का प्रधान व्यापार नहीं है आँधी पानी के दिनों में आँधी ही सर्व प्रधान है, ऐसा इस के हर हराने घहराने पर भी कोई स्वीकार नहीं करता. उस दिन भी गाँवों में घर घर को जन्म, मृत्यु, और सुख दुखकी धारा बहती है वह ढकी रहने पर भी मनुष्य के लिये प्रधान है। लेकिन विदेशी पथिक के लिये वही आँधी पानी प्रधान है वही उनकी आखों को झलेता है क्योंकि वह घर के भीतर नहीं बाहर है। इसी कारण विदेशी के इतिहास मे उस आंधी पानी की कथा मिलती है। घर के भीतर की बात उस में कुछ भी नहीं पायी जाती। उस इतिहास के पढ़ने से यही ज्ञान पड़ता है कि उस समय भारतवर्ष था ही नहीं। केवल मुग़ल पठानों का गर्ज्जन तर्ज्जन ही सूखे पत्तों की पताका लिये,हुए उत्तर से दक्षिण और पश्चिम से पूरब को घूमा करता था।

किन्तु जब विदेश था तब देशभी था। नहीं तो उन उपद्रवों में कबीर, नानक, चैतन्य. और तुकाराम आदि को किसने जन्माया? उन दिनों दिल्ली और आगरा ही नहीं था. काशी सितारा और नवद्वीप भी था। उस समय प्रकृत भारतवर्ष में जो जीवन का सोता बहता था चेष्टा का जो तरङ्ग उठता था, जो सामाजिक परिवर्त्तन होता था उन सब का विवरण इतिहास मे नहीं मिलता।

किन्तु वर्त्तमान पाठ्य ग्रन्थों से बाहर जो भारतवर्ष है उसी के साथ हमलोगों का योग है। उसी योग का बहु काल

व्यापी ऐतिहासिक सूत्र नहीं पाने से हम लोगों का हृदय आ-श्रयहीन होरहा है। हम लोग भारतवर्ष के पौधे हैं। अनेक शताब्दी से हमलोगों की सैकड़ों सहस्रों जड़ों ने भारतवर्ष का मर्म्मस्थान अधिकार करलिया है। किन्तु भाग्यवश हमलोगों को ऐसा इतिहास पढ़ना पड़ता है कि हमलोगों की सन्तान ठीक बाल को भूल जाती है। मन में यही जान पड़ता है कि भारतवर्ष में हमलोग मानों कुछ नहीं हैं आगन्तुकगण ही सब कुछ हैं।

अपने देश के साथ अपना सम्बन्ध ऐसा अकिञ्चित्कर समझें तो हमलोग कहाँ से प्राणाकर्षण करेंगे? ऐसी दशा में विदेश को ही स्वदेश के स्थानपर बिठाने में हम लोगो के मन में तनक दुविधा नहीं होती। भारतवर्ष के अगौरव से हमलोगों को प्राणान्तकर लज्जा बोध नहीं हो सकती। हमलोग सहज ही कहते हैं कि पहिले हमलोगों को कुछ नहीं था और अब हम को अन्न वस्तु आचार व्यवहार सब विदेशियों से भीख माँगकर लेना होगा।

जो भाग्यवान देश हैं वहाँ लोग सदा अपने देश को ढूँढने पर अपने इतिहास में ही पाजाते हैं। बालक काल मे इतिहास ही देश के साथ उनका परिचय करादेता है। हम लोगों में ठीक इसका उलटा है। विदेश का इतिहास ही हमारे स्वदेश को आछन्न कर रखा है महमूद गज़नवी की चढ़ाई से लेकर लार्ड कर्ज़न के साम्राज्य गर्वोद्गारकाल तक जो कुछ इतिहास मे लिखा है वह भारतवर्ष के लिये विचित्र कुहेलिका है। वह कथा स्वदेश के सम्बन्ध में हमारी दृष्टि को सहायता नहीं देती उसे आवृत मात्र करती है वह ऐसे स्थान में कृत्रिम आलोक फेंकती है कि उस से हमलोगों के देश की ओर अंधेरा होजा-

ता है। उस अन्धकार में नव्वाब की विलासशाला के दीपालोक में नृत्य करने वालियों के मणिभूषण चमक उठते हैं। बादशाहों के सुरापात्र का लालफेन, उन्मत्तता जनित जागरण के लाल और दीप्त नेत्रों के समान दीख पड़ता है। उसी अन्धकार में हमारे सब प्राचीन देव मन्दिर मस्तक आवृत्त करते हैं और सुलतान प्रेयसीगण के श्वेत मर्म्मर रचित कारु कार्य्य खचित कब्रों की चोटियाँ नक्षत्रालोक चूमने के वास्ते सिर उठाती हैं। उसी अन्धेरे मे घोड़ों की टाप का शब्द, हाथियों के घंटों का घह्‌ला, हथियारों की झनझनाहट, दूरतक फैलेहुए डेरों की तरंकित शोभा, कमख़ाब के अस्तर की सुनहलीछवि, मस्जिद के पाषाणमण्डप, पह्‌रादेने वाले खोजों से रक्षित प्रासाद के अन्तः पुर में रहस्यनिकेतन का निस्तब्ध मौन, यह सब विचित्र शब्द, वर्ण और भाव से जो एक बड़ा इन्द्रजाल रचते हैं उस उस को भारतवर्ष का इतिहास कहने से क्या लाभ होगा। इस ने भारतवर्ष के पुण्य मंत्र की पोथी को एक अनुपम अरेबियन नाइट की उपन्यास में मोड़ रखा है उस पोथी को कोई नहीं खोलता उस आरब्य उपन्यास ही का पन्ने का पन्ना लड़के कण्ठस्थ कर डालते हैं भला उस प्रलयरात्रि में जब मुग़ल साम्राज्य मुमूर्षु होरहा था तब श्मशान स्थल मे दूर दूर से आये हुए गृध्रगण ने जो आपस में छल कपट और चतुराई चलायी और मारामारी मचायी थी उस को भारतवर्ष का इति-वृत्त क्योंकर कह सकते हैं? और उस के बाद ही से पांच पांच वर्षों में बांट कर बसरञ्ज की चाल चलते हुए अङ्गरेज़ी शासन का विवरण है? इस में भारतवर्ष और कम है। यदि अभिनिवेश चित्त से विचार किया जाय तो सतरंज से इस में भेद इतना ही है कि इसके घर काले और सादे के लिये समान

भाग से वैसे नहीं, मन में पन्द्रह आना सादा है। हम लोग पेट भरने के लिये सुशासन, सुविचार सुशिक्षा सब ह्वाइट अवे-लेडला की बड़ी दूकान से खरीद कर रहे हैं। और सब दर दूकान बन्द हैं। इस कारखाने से हमलोग विचार से लेकर-वाणिज्य तक सब का सुविशेषण ले सकते हैं किन्तु इस में किरानी शाला के एक कोने में हमारे भारतवर्ष को बहुत थोड़ासा स्थान मिला है,

लेकिन इतने पर भी भारतवर्ष है। और जो कुछ है वह हमारी राष्ट्रशाला और पाठग्रन्थ सभा के नेपथ्य में है। हम लोग अपनी सुशिक्षा और सुशासन की रङ्गभूमि के आलोक में उसे नहीं देखने पाते. रंगमञ्चपर नाना प्रकार के साजबाज से नानाप्रकार के नट नृत्य करके वाहवा और वेतन लेकर चले जाते हैं यह बाहर के विस्तीर्ण निस्तब्ध सोत्रस्य ध्रुव तारा की रोशनी मे चुपचाप बैठा हुआ है प्रति दिन उन (चलेजाने वालों) के साथ हमलोगों का अर्थात् इस विदेशी नाटक के हम भारतीय दर्शकों का परिचय अस्पष्ट होता जाता है।

इतिहास सब देशों मे होगा इस को चाहे कुसंस्कार ही कहें तो क्या किन्तु इसका निषेध चाहना ही व्यर्थ है. जो आदमी रथचाइल्ड की जीवनी पढ़कर पक्का हो चुका है वह जब खृष्ट की जीवनी पढ़ने लगेगा तब उस के हिसाब का बही खाता और आफिस की डायरी तलब कर सकता है यदि उस को नहीं मिला तो उसके मन में अवज्ञा उपजेगी और कहेगा कि जिस को कुछ पैसा पसार नहीं था उसकी जीवनी कैसी ? वैसे ही भारतवर्ष के राष्ट्रीय दफ्तर से इसकी राजवंशमाला और जय पराजय का कागज़ पत्र नहीं पाने से जो भारतवर्ष के इतिहास सम्बन्ध में आश्वास छोड़ देते और कहते हैं कि जहाँ पालिर्टियस नहीं है वहाँ हिस्ट्री कैसी ? ऐसा कहने वाले मानो भात

के खेत में बैगन खोजने जाते हैं और नहीं पाने से मन का क्षोभ इतना बढ़ाते हैं कि धान को अन्न में गिनते ही नहीं। सब खेतों की उपज एक नहीं है न एकही अन्न सब खेतों में उपजाया जाता। ऐसा जानकर भी जो आदमी यथास्थान में उपयुक्त शस्य की आशा करता है वही प्राज्ञ है। यीशूख्रष्ट के हिसाब का खाता देखने से उनके प्रति अवज्ञा होसकती है किन्तु उनके अन्य विषय का अनुसन्धान करने से खाता पत्र किसी गिन्ती के नहीं रहते। वैसे ही राष्ट्रीय विषय में भारत को दीन समझने पर भी दूसरी ओर से उस दीनता को अति तुच्छ समझा जासकता है। भारतवर्ष को उसी भारतवर्ष की ओर होकर हम लोग नहीं देखते और न देखकर हमलोग शिशु काल से ही उसे खर्व करते और आप खर्व होते है। अङ्गरेज़ों के बालक जानते हैं कि उनके बाप दादों ने अनेक युद्धजय, देश अधिकार और वाणिज्य व्यवसाय किया है। वह भी अपने को रणगौरव धनगौरव, और राज्यगौरव के अधिकारी करना चाहते हैं। हमलोग समझते हैं कि हमारे बाप दादों ने देश अधिकार और वाणिज्य विस्तार नहीं किया। और यही जताने के वास्ते ही भारतवर्ष का इतिहास है उन्होंने क्या किया था सो हम लोग नहीं जानते इसी कारण हमलोक क्या करेंगे सो भी नहीं जानते। जिस से पराये की नकल करना होती है। लेकिन भीतर का सार हुए विना असल चीज की नकल कोई नहीं करसकता बस यही कारण हैं जिस से भारतवासी विदेशी शिल्प वस्तु के बदले विदेशी पोशाक पहनाव, विलास विहार, और विदेशी चालचलन ग्रहण करके खूब वाक्याडम्बरसे सब सन्नाटा बिगाड़ते जाते हैं। भारतवासी कांग्रेस करते हैं और मन में समझते हैं कि लड़ाई कर रहे हैं, भिक्षापत्र पर सही करने के

वास्ते एकत्र हुए हैं। और समझते हैं कि पार्लीमेण्ट कर रहे हैं; यथेच्छाचार करते हैं, पराये काही सब संस्कार अन्धभावसे ग्रहण कर लेना औदार्य्य और अपने समस्तसंस्कार को अन्ध-भाव से त्याग करने को कुसंस्कार मुक्ति समझते हैं।

इसके वास्ते हम किसको दोष देंगे ? बालकपन से हम लोग जिस ढङ्ग से जो शिक्षा पाते हैं उससे प्रतिदिन अपने देश से हम लोगो का विच्छेद क्रमशः बढ़ कर हम लोगों के सर्वाङ्गमें स्वदेश से विद्रोह उपजा देता है उसी देश विद्रोह को कन्धे पर रखकर काग्रेस करते हैं, और भाषा में, भावना में, सब में उसी देश विद्रोह की ध्वजा उड़ाकर हम लोग देश हित करते हैं कहकर स्पर्द्धा किया करते हैं।

हमारे देश के शिक्षित लोग भी अंग्रेज की भांति तथा प्रति-ध्वनि कह उठते हैं कि देश तुम किसको कहते हो, हमारे देश का विशेष भाव क्या और कहाँ है और कहाँ था ? यह लोग प्रश्न करके कहते हैं कि इनका उत्तर नहीं मिलता। क्योंकि बात इतनी सूक्ष्म और इतनी वृहत है कि केवल मात्र युक्ति द्वारा बोधगम्य नहीं होगी। अङ्गरेज़ हो या फ़्राँसीसी हो किसी देश का आदमी अपना देशी भाव क्या है, देश का मूल मर्म्म स्थान कहाँ है, यह एक बात में व्यक्त नहीं कर सकता। वह देह स्थित प्राण की भांति प्रत्यक्ष और सत्य है और प्राण के समान संज्ञा और धारणा के लिये दुर्गम है। वह शिशुकालसे हम लोगों के ज्ञान और प्रेम के भीतर हम लोगों की कल्पना के भीतर अनेक अलक्ष्य पथों से नाना रूप में प्रवेश करता है। वही अपनी विचित्र शक्ति से हम लोगों को निगूढ़ भाव से गढ़ डालता है। हम लोगों के अतीत के साथ वर्तमान का अन्तर नहीं होने देता। उसी के प्रसाद से हम लोग वृहत् है विच्छिन्न

नहीं हैं । इसी विचित्र उद्यम सम्पन्न गुप्त पुरातन शक्ति को सश्रमान जिज्ञासू के निकट इस संज्ञा द्वारा दो चार बातोंमे कैसे प्रगट कर देंगे ?

—:०:—

छत्तीसगढ़मित्र ।

"इर बोल तेरा दिल से टकरा के गुजरता है—
कुछ रंगे बयाँ, हाली, है सब से जुदा तेरा ।"

छत्तीसगढ़मित्र नाम मासिकपत्र नागपुर में छपता है, वार्षिकमूल्य डेढ़ रूपया है . गत वर्ष के आठ अङ्क इमके हमने देखे हैं . मुखपत्र (टाइटिल पेज) देखते ही सम्पादक के नाम टेढ़े टेढे अनोखे सनोखे देख पड़े . सम्पादक दो हैं—एक का नामहै—रामराव चिंचोलकर , दूसरे का—माधवराव सप्रे . प्रोप्राइटर का नाम और भी विकट है—वामन बलिराम लाखे . दम्बल दाढ़ी भांकुर, "स कहा के हो जी ठाकुर?" उस पर तुर्रा यह कि सब के सब बी०ए० हैं, हो न हो विदेशी हैं यदि विदेशी नहीं तो हिन्दीके लिये विदेशी जरूर हैं . जबही तो छठा को छवां लिखाहै ? भाई, कुछ कहो, पर तुम्हारे बांके लेखों ने देशियों के भी कान काटे .

"कब किया, क्योंकर किया, यह पूछता कोई नहीं,
बल्कि हैं यह देखते, जो कुछ किया कैसा किया ."

अब हम अपने मन का पाप साफ़ साफ़ उगले देते हैं . मुखपत्र देखकर तो मन में ठान लिया था कि खूब चिपेटेंगे, खूब ही धज्जियां उड़ायेंगे . विदेशी और यह ढिठाई कि हिन्दी का मासिकपत्र निकालें, पर जो आगे बाले पन्ने उलटे तो औरही गुल खिले .

'लाग और लगाव दोनों हैं दिल गुदाज तेरे .
पत्थर के दिलथे जिनके, उनको रुलाके छोड़ा .'

आनन्दीबाई जोशी के जीवन का चित्र जो तुमने उतारा है वह मन मे ऐसा चुभ गया है कि भुलाये नहीं भूलता, जिस जिसने तुम्हारा यह लेख पढा होगा वह तुम्हारा हाथ चूमने को तरसता होगा। स्त्री शिक्षा के लिये लाखों सूखे उपदेश किये जाते, लाखों वक्तृतायें झाडी जातीं, लाखों निबन्ध लिखेजाते, पर ऐसा प्रभाव पढनेवाले और पढनेवालियों के हृदय पर कभी न होता जैसा तुम्हारे इस रसीले लेख ने डाला है।

विवेकानन्द स्वामीका जीवनचरित्र भी वैसाही प्रभावशालीहै।

भारतवर्षीय विद्यारण्य नाम एक स्थान इसमें ऐसा अनूठा छपा है कि क्या वर्णन करें? इस जङ्गलमें पेड़ों की फुनगी तक "जो चढ़ै सो चाखे प्रेम रस गिरे सो चकनाचूर" सच तो यह है कि अरण्य देखनेही योग्य है। इसके काठ्यतरु, ज्योतिषवृक्ष, और गणित नाक आदि पेड़ों की क़तार और उनकी बहार ऐसी चतुराई से वर्णन की है कि वाहरे वाह। किसी किसी पेड के नीचे मतवालों का झगड़ना, और डालियों का काटना, कहीं विदेशियों का कलम काट काट कर ले जाना, कहीं न पटने के कारण वृक्षों का मुर्झाना, फिर विद्या देवीका फूट फूटकर रोना, विशाल राक्षस लोभ का दिखायी देना, और दो चार छोटे छोटे नाचते कूदते राक्षसों का अपने अस्थि-चर्म-मांस-विहीन हाथों से लेखक को अपनी ओर बुलाना, फिर देवी के धैर्य और निग्रह नाम सेवकों का पास आजाना, फिर एक सुन्दर स्त्री श्रद्धा और बलवान पुरुष यत्न से भेट होजाना, सब धर्माचल पहाड़ पर चढ़ना, वहां दया भक्ति क्षमा आदि कई एक लावण्यवती सुकुमार सुकुमार युवतियों का एक तालाव में जल विहार करना आदि आदि कितनी ही बातें ऐसी ऐसी अनूठी रोचक और चित्ताकर्षक हैं कि कुछ कह नहीं सकते।

इस मासिकपत्र में जिस लेखकोदेखा वही अपने ढङ्ग में ऐसा आंका है कि यही कहने को जी चाहता है कि हां पत्र हो तो ऐसा हो ? "सद्गुणी लड़की" की आख्यायिका क्या लिखी है खासा उपन्यास है। प्रणय रसके बावलो ! देखो, बिना प्रणय के भी उपन्यास रोचक होसकता है या नहीं ?

विषय कैसे हैं, लेख के ढंग और भाव कैसे हैं—

इस बारे में अब अधिक और हम कुछ नहीं कहा चाहते। क्योंकि जो कुछ लिखेंगे वह प्रशंसा ही प्रशंसा होगी।

अब हम इसकी बोलचाल के बारे में कुछ लिखा चाहते हैं। सच है कि—

"उर्दू के धनी वह हैं जो दिल्ली के हैं रोड़े,
पंजाब को मस उससे न पूरब न दकनको।
बुलबुलही को मालूम है अन्दाज़ चमन के,
क्या आलमे गुलशन की ख़बर ज़ागो ज़गनके"।

उर्दू ही को यह मुबारक हो। हिन्दी के लिये यह क़ैद हम पसंद नहीं करते। भाषा तो एक कपड़ा है चाहे जैसा हो, असल तो भाव और आशय हैं। हिन्दी के लिये भी जो यही क़ैद ठीक समझी जाती तो हिन्दी की जगत छत्तीसगढ़मित्र में लिखी अनूठी और अनमोल बातों से वञ्चित ही न रहजाती। कपड़े फटे ही सही, कपड़े मैले ही सही पर रंगीले मित्रों से भेंट तो हुई।

"हालो से काम है यहां फेलों से उसके क्या काम ?
अच्छा है या बुरा है फिर यार है हमारा"।

ठीक है पर यथा सम्भव भाषापर भी ध्यान देना अवश्य है। किसी का रूप अच्छा हो यदि पर जो कपड़े मैले हों तो कहो जी घिनाता है या नहीं ? शोक का विषय है कि हमारे

मित्र के कपड़ों में कहीं कहीं तेल के धब्बे दिखायी देते हैं। दृष्टान्त के तौर पर भाषा की दो चार त्रुटिया नीचे लिखी जाती हैं।

१। मैं मेरे समधी को साथ ले.................

२। तुरन्त रोटी की तजवीज करके............

३। ऊंचाई को देखकर ही.......................

४। अभी ही करती हूं।

५। मुझे जल्दी आलिङ्गन दे.....................

६। मेरी छाती धड़ धड़ा रही है............

७। यदि स्वतः तू ही मा के हाथ में चिट्ठी देना चाहे, तो कोई हरकत नहीं.......................

८। सिरके बाल खोड़कर पाटी पाड़ ले।

९। मेरा कलेजा फटा जाता है।

पहिले वाक्य में मेरे की जगह अपने होना चाहिये।

दूसरे और सातवें वाक्यों में तजवीज और हरकत प्रयोग ठीक ठीक महाराष्ट के हैं। इनही अर्थों में इनका प्रयोग हिन्दी में पार्सी थियेटर वाले करते हैं।

तीसरे चौथे और सातवें वाक्यों में ही का प्रयोग कानों में खटकता है।

तीसरे वाक्य में को—काप्रयोग भी निरर्थक है। विभक्तियों के अर्थ और प्रयोग का विषय विहारबन्धु नाम समाचारपत्र मे (छपते हुए व्याकरण में) कह सकते हैं ठीक ठीक और पूरा पूरा छपा है। देखने योग्य है।

चौथे वाक्य में अभी के परे ही के बैठनेका क्या प्रयोजन? अबमें तो यह आप ही मिली हुई है। ह्रीका बल और बढ़ाना हो तो "अभी अभी कहती हूं" यों बोल सकते हैं।

पांचवा वाक्य भी मुहावरे जान पड़ता है। ऐसी जगह तो गले लगाना बोलते हैं। इन्शा अल्लाह खां कहते हैं—

"मरना मेरा जो चाहे लग जा गले से टुक"।

बातचीत और तिसपर भी स्त्रियों की बातचीत अब नित्य की बातचीत होती होती है तो मजा आता है।

६ ठे वाक्य से "मेरी छाती धड़क रही है" कहा जाता तो अच्छा होता।

नवां वाक्य भी बे मुहावरे है। "कलेजा मुहं को आता है बोलते है। कलेजा तो नहीं। पर छाती फटती है।

सातवें वाक्य में एक भोली लड़कीके मुह से "यदि स्वत; तू ही" न कहलाकर "जो तू आपही" कहलवाया जाता तो बात जानदार होजाती।

'बालका कोसना' भी कहीं बोला जाता है? कदाचित हो, पर हमने नहीं सुना है।

इसी तरह बहुत सी बातें मुहावरे के विरुद्ध तो हैं पर अच्छे भाव और आशय के सामने इन त्रुटियों की कोई गिनती नहीं।

प्रूफशीट बड़ी सावधानी से शोधे गये हैं, पर तौ भी भूलें रह ही गयी है। देखिये—

	अशुद्ध	शुद्ध
(११९ पृष्ठ मे)	मनरंजन	मनोरंजन।
	शुश्रुषा	शुश्रूषा।
	रिजेट	रिज़ोट।
(१२२ ,,)	सक्ता	सकता।
	नुक़सान	नुक्सान।
(१२२ ,,)	श्रावास	श्राश्राश।

(१२३ „) दूष्य — दूष्य।

(१२४ „) मज़दूर — मजदूर।

हिन्दी की प्रायः सबही पुस्तकों में प्रूफ शोधने की बहुत भूलें रहजाया करती हैं. ग्रन्थकर्त्ताओं से और छापेखानों के प्रबन्धकों से सविनय प्रार्थना है कि इस कलंक से हिन्दी को शीघ्र मुक्त कीजिये.

समस्यन्त पदों में पूर्व पद का अन्त्य अनुच्चारित अ तो लोप नहीं किया जाता। देख भाल, बोलचाल आदि को देखभाल बोलचाल आदि कोई नही लिखता। तब दरबार सरकार आदि दर्बार सर्कार आदि क्यों लिखा जाता है इस पत्र में भी बहुधा छप गया है। इसका कारण कदाचित इधर ध्यान का नहीं जाना होगा। बिहारबन्धु में जो हिन्दी व्याकरण छपता है उसमें इसका सम्यक विचार किया जायगा तो उत्तम होगा।

दो बार पढ़े जाने के लिये किसी शब्द के परे दो का अङ्क लिख देने की चाल अच्छी बात नहीं है ? और किसी भाषा में तो यह चाल नहीं देखी जाती। यह चाल बंगले की देखा देखी चली थी। बंगालियों ने तो इसे बुरा जानके छोड़ दिया, पर हिन्दी में इधर किसी का ध्यान ही नही है।

इसी प्रकार की छोटी छोटी बहुतसी बातें हैं जिन पर छत्तीसगढ़मित्र के सम्पादकों के से प्रायः बहुत से विद्वान् और विज्ञ लोग ध्यान ही नहीं देते। पर इन छोटी त्रुटियों से भी मुक्त हुए बिना लेख सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं कहला सकता।

मित्रका वियोग

समालोचना छपते छपते छत्तीसगढ़ मित्र के बन्द होने की बात पढ़ी । ऐसे सुन्दर उपयोगी मासिकपत्र के बन्द होने से हम को बड़ा दुःख हुआ । छत्तीसगढ़मित्र का बन्द होना हमारे इस विश्वास को दृढ़ करता है कि हिन्दी में अभी रत्नों के चाहने और परखने वाले बहुत कम हैं । सम्पादक ने किसी और रूप में दर्शन देने की बात कहकर पाठकों को प्रबोध दिया है भगवान उनको सफल मनोरथ करे ।
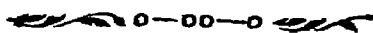
सहयोगियों को सूचना

समालोचक के परिवर्तन में जो सहयोगी दर्शन नहीं देते उनको समालोचक अब नहीं जायगा ।

समालोचक।

मासिक पत्र।

सम्पादक।

बाबू गोपालराम गहमरनिवासी।

वर्ष २रा { जनवरी—फरवरी सन् १९०३ { अङ्क ६—७

मुद्रित विषय।

प्रोप्राइटर और प्रकाशक।

श्रीयुत मि० जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर

Printed at the Dharmik Press—Prayag

नियमावली !

१—"समालोचक" हर अङ्गरेज़ी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करेगा।

२—दाम इसका सालाना १॥) है, साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा और ≈) का टिकट भेजे बिना नमूना भी नहीं पासकेगा।

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी; कोई विज्ञापन बिना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा.

४—आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी. किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी जिस वस्तु की समालोचना छापी जायगी उसकी न्याय और युक्ति पूर्ण पक्षपात शून्य समालोचना छापी जायगी।

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा। जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होगी उसके प्रचार का उचित उद्योग किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसा पत्र व पुरस्कार प्रदानादि से उत्साहित किया जायगा.

६—जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होती है वही छापी जाती है समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझना चाहिये.

७—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाज़ीपूर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र विज्ञापन के मामिले की चिट्ठी पत्री सब समालोचक के मैनेजर मिस्टर जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर के पते पर भेजना चाहिये।

चैतन्य मय जड़

मुसलमान बादशाहोंकी अमलदारीके समय हमलोग राज्य व्यापारमें स्वाधीन नहीं थे। किन्तु अपने धर्म्म कर्म्म, विद्या बुद्धि और सब प्रकारकी क्षमताके प्रति अश्रद्धा होनेका कुछ कारण नहीं हुआ था।

अङ्गरेजी अमलदारीमें हमलोगोंकी उस आत्मश्रद्धापर धक्का लगा है। हमलोग सुखी हैं, बेखटके हो गयेहैं, किन्तु सब कामों मे अयोग्य हैं यह धारणा भीतर और बाहर से हम लोगोंको चोट पहुँचा रहीहै।

अपने ऊपर इस श्रद्धारक्षा के लिये हमारे शिक्षितसमाज में लड़ाई चलती है। यह लड़ाई आत्मरक्षा की है। हम लोगों का सब अच्छा है यही हम लोग सब मे प्रगट करने और सब को जताने की चेष्टा करते हैं। इस चेष्टा में जितना सत्य के आधार पर है उतना हमारे लिये मङ्गलकारी है और जितना अन्ध भाव से अहङ्कार उपजाताहै वही हमारे लिये हितकर नहीं होगा। जीर्ण वस्त्र को छिद्रहीन विश्वास करनेके लिये जितनी देर तक आँख मूँदे रहते हैं उतनी देर तक बैठकर उस में पैवन्द लगाने और सिलायी करने से काम बनता है।

हम लोग अच्छे, उत्तम दशामे हैं; यह घोषणा करनेके लिये लोग और बहुत जुटे हैं लेकिन आदमी हमको वह दरकारहै जो प्रमाण करे कि हम लोग बड़े हैं, अच्छे और उत्तम दशामें हैं। प्रोफेसर जगदीशचन्द्र बसु ने हमलोगोंका वह अभाव पूरा किया है। आज हमारे नवशिक्षितों को भी आत्मगौरव का दिन दिखायी दिया है। वचन प्रमाण मानने का समय नहीं रहाहै। प्रत्यक्ष कामों से प्रमाण दिखाकर देशके विश्वास या चिरसिद्धान्त

को मान्य करानेवाले जगदीश बाबूके द्वारा जिस भगवान ने ह-मारे देश को यह गौरव दिन दिखाया है उन्हीको धन्यवाद क-रना चाहिये ।

प्रोफेसर जगदीश बाबू का जयसम्वाद अभी भारतमें भली भाँति नहीं फैला है हिन्दी समाचार पत्रोंमे एकाध को छोड़कर किसीने उनके विज्ञानाविष्कार पर अभी कुछ लिखा नहीं है । हिन्दी प्रेमी और हिन्दी पाठकों के कानों से जगदीश बाबू की जयध्वनि अभी दूर है। जो सम्पूर्ण वृहत आविष्कारोंमे विज्ञान को नया करके अपनी प्रीति स्थापन करने को बाध्य करता है वह एक ही दिन मे सर्वत्र ग्राह्य नहीं होता। पहले चहुँओर से जो विरोध उठ खड़े होते हैं उन को दबाने और पराजित करने मे समय लगता है । सत्य को भी बहुत दिनों तक संग्राम करके अपनी सत्यता का प्रमाण देना पड़ता है ।

प्रोफेसर जगदीश बाबू ने एक नया कल बनाया है । जड़ वस्तु मे चुकटी काटने से जो स्पन्दन उत्पन्न होता है उस कल के द्वारा उसका परिमाण आपही आप लिखा जाता है । आ-श्चर्य की बात यहीहै कि हम लोगोंके शरीरमे चुकटी से जो स्पन्दन होताहै उससे उस स्पन्दन का कुछ भेद नहीं है ।

जीवन स्पन्दन जैसे नाड़ी से समझा जाता है वैसेही जड़ की जीवनी शक्ति का नाड़ी स्पन्दन उस कल से लिखा जाता है । जड़ पर विष प्रयोग करनेसे उसका स्पन्दन कैसे विलुप्त होता है उस कल से उसका चित्र उतर आता है ।

गत पूर्व वर्षकी दसवीं मई को प्रोफेसर जगदीशचन्द्र रा-यल इन्स्टिटूशन में वक्तृता देनेको आमंत्रित हुए थे । वक्तृता का विषय—"जड़ पदार्थों (यान्त्रिक और वैद्युतिक) स्पन्दन (The response of inorganic matter to mechanical and elctrical

stimulus) था। उस सभामें घटना विशेषसे लार्ड रेली नहीं आ सके थे किन्तु प्रिन्स क्रुपट्किन और वैज्ञानिक समाजके अनेक प्रतिष्ठावान लोग उपस्थित थे।

उस सभामें उपस्थित लोगोंमें से एक विदुषी अङ्गरेज़ महिला ने भारतवर्षके एक प्रसिद्ध और स्वनामधन्य देशीसमाचार पत्रके सम्पादक को उस सभा का जो कार्य विवरण लिख भेजा है उसीमें से हम कुछ अनुवाद नीचे देते हैं :—

नव बजे सन्ध्या को सभा का दरवाजा खुला अन्य महाशयोंके साथ प्रोफेसर बसु भी सभामे आ उपस्थित हुए। नियमानुसार अन्य कार्यवाहीके पश्चात् बसु महाशय वक्तृता देनेको खड़े हुए।

उनके पीछे रेखाओंसे चिन्हित बड़े बड़े परदे टँगेथे। सामने टेबल पर उस यंत्र* के लिये सब सामग्री रखीथी। तुम जानतेही हो बसु महाशय कोई बड़े स्पीकर नहींहैं। वाक्य रचना उनके वास्ते सुगम नहीं है किन्तु उस रातको बोलनेमें उनकी रुकावट न जाने कहाँ दूर भागी। इस तरह धारावाही स्पीच मैंने उनकी और कभी नहीं सुनी थी। बीच बीच में पद रचना, और शब्दों की सुन्दरताके साथ भाव गाम्भीर्य्यसे उनका व्याख्यान सर्वाङ्ग सुन्दर होने लगा। वह मुसकुराते हुए सहजही अपने वाक्यास्त्र से वैज्ञानिक व्यूह पर चोट करने लगे। रसायन, पदार्थ तत्व और विज्ञानके अन्यान्य शाखा प्रशाखाओंका भेद वही सुगमतासे मानो हँसीही में मिटा चले।

उसको मिटा देने पर विज्ञान शास्त्र में जीव और अजीव की जो भेद निरूपक संज्ञा थी उनको उन्होंने मकड़ीके जाले की

* जिस कल से जड़ का चैतन्य होना सिद्ध किया है।

तरह फाड़ फेंका। जिसकी मृत्यु सम्भव है उसीको तो हमलोग जीवित कहते हैं। प्रोफेसर वसु एक टीन का टुकड़ा मृत्यु शय्या के पास खड़ा कराकर हम लोगों को उसका मरणाक्षेप दिखाने को तैयार हैं। और विष प्रयोगसे जब उसकी अन्तिम दशा उपस्थित होती तब दवा देकर उसको आराम करना चाहते हैं।

अन्त को जब उन्होंने अपनी बनायी हुई आँखों को सभा के सामने पेश किया और दिखलाया कि हम लोगों की आँखोंसे उनकी शक्ति अधिक है तब सब के विस्मय का अन्त होगया।

भारतवर्ष युग युगान्तर से जिस महत ऐक्य की अकुण्ठित चित से घोषणा करता आता है आज उसी का ऐक्य सम्वाद वर्तमान काल की भाषामें उच्चारित हुआ इससे हम लोगों का चित्त किस तरह पुलकित हुआ सो वर्णन नहीं किया जासकता। मन ने ऐसा बोध हुआ कि वक्ता अपना निजत्व आवरण त्याग करके अन्धकार में अन्तर्हित हो गया केवल अपने देश और अपनी जातिको हम लोगोंके सामने उपस्थित कर गया। उसका उपसंहार भागही उसकी उक्ति है—

I have shown you this evening the autographic records of the history of Stress and Strain in both the living and non-living How similar are the two sets of writings, so similar indeed that you cannot tell them one from the other! They show you the waxing and waning pulsation of life—the climax due to stimulants, the gradual decline of fatigue, the rapid setting in of death-rigor from the toxic effect of poison.

It was when I came on this mute witness of life and saw an allpervading unity that binds together all things—the mote that thrills on ripples of light, the teeming life on earth and the radiant suns that shine on it—it was then that for the first time I understood the message proclaimed by my ancestors on the banks of the Ganges thirty centuries ago—

"They who behold the one, in all the changing manifoldness of this universe, unto them belongs eternal truth, unto none else, unto none else."

वैज्ञानिकों के मन में उत्साह और समाज के अगुवा लोगों के मन में श्रद्धा परिपूर्ण हो उठी। सभा के दो एक सर्व श्रेष्ठ महोदय प्रोफेसर वसु के पास पहुँचे और उन्होंने उनके उच्चारित वचनों के लिये भक्ति और विस्मय स्वीकार किया।

हम लोगों को अनुभव हुआ कि इतने दिन पर भारतवर्ष ने शिष्य भाव से नहीं, समकक्ष होकर भी नहीं किन्तु गुरू भाव से पाश्चात्य वैज्ञानिक सभा में खड़े होकर स्वज्ञान श्रेष्ठता सप्रमाण किया पदार्थतत्वसन्धानी और ब्रह्मज्ञानी में जो भेद है वह प्रगट कर दिखाया।

लेखिका की चिट्ठी से सभा का जो विवरण ऊपर उद्धृत हुआ है उससे अहङ्कार नहीं करते। हम उपनिषद् देवता को प्रणाम करते हैं, भारत वर्ष के पुरातन ऋषि गण ने कहा है— "यदिदं किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति" समस्त प्राण ही से कम्पित होता है। उसी ऋषि मण्डली को अन्तःकरण में उपलब्धि करके कहते हैं—हे जगद्गुरु गण तुम लोगों की वाणी अब भी निःशेषित नहीं हुई है। तुम लोगों का भस्माच्छन्न होम हुताशन अद्यतक अनिर्वाण है। अब तुम भारतवर्षके अन्तःकरण में प्रच्छन्न होकर वास करते हो। इन गिरे दिनों में भी तुम लोग हम लोगों को सम्हालोगे हम लोगों को कृतार्थता के पथ पर ले चलोगे। आओ तुम्हारा महत्व हम लोग यथार्थ भाव से समझ सकते हैं। वह महत्व अति क्षुद्र आचार विचार की तुच्छ सीमा में ही बद्ध नहीं है। आज कल जिस तरह हिन्दुत्व पर सग्राम होता है तुम लोग तपोवन में बैठकर वैसा कलह नहीं

करते थे। तुम लोगों ने जिस अनन्त विस्तृत लोक में आत्माको प्रतिष्ठित किया था उसी लोक मे यदि हम लोग चित्त को जाग्रत कर सकें तो हम लोगो की ज्ञान दृष्टि घर आँगन ही में प्रतिहत न होकर विश्व रहस्य के अन्तर निकेतनमे प्रवेश करेगी। तुम्हारा स्मरण करके जब तक हम लोगों में विनय न उपज कर गर्व का उदय होता है, कर्म की चेष्टा न जागकर सन्तोष का जड़त्व बढता जाता है, और भविष्य की ओर हम लोगोंका उद्यम धावित न होकर अतीत में ही समस्त चित्त आच्छन्न हो कर लोप पाता है तब तक हम लोगों की मुक्ति नहीं है।

प्रोफेसर जगदीश बाबू ने हम लोगों को दृष्टान्त दिखाया है कि विज्ञान राज्य मे उन्होंने जो पथ ढूँढ़ निकाला है वह प्राचीन ऋषि गण का पथ है वही ऐक्य मार्ग है। उस मार्गके सिवाय ज्ञान विज्ञान या धर्म्म कर्म्म में "नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।"

किन्तु प्रोफेसर जगदीश बाबू ने जिस काम में हाथ डाला है उसको पूरा करने मे अभी बहुत देर है। साथही साथ बाधायें भी बहुत हैं। पहले तो उनके नवसिद्धान्त और परीक्षासे अनेक पेटेण्ट अकर्म्मण्य हो जायँगे। और वणिक सम्प्रदाय का एक दल उनके प्रतिकूल उठ खड़ा होगा। दूसरे जीव तत्वविद् लोग जीवन को स्वतन्त्र समझ कर मानते हैं उनका विज्ञान केवल पदार्थ तत्व है यह बात वह किसी तरह स्वीकार नहीं करना चाहते। तीसरे कुछ मूढ़ लोग मन मे समझते हैं कि विज्ञान द्वारा जीव तत्व प्रगट होने से ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास करने का प्रयोजन नहीं रहेगा, इसलिये वह लोग प्रसन्न और पुलकित हुए हैं। उनका भाव देखकर सुज्ञान वैज्ञानिक उनकी ओर चले हैं इस कारण प्रोफेसर वसु महाशय कुछ वैज्ञानिकों की

सहानुभूति से वञ्चित होंगे। अतएव अकेले उनको अनेक विरो-
धियोंसे युद्ध करना पड़ेगा।

तौ भी जो निरपेक्ष विचार के हैं वे प्रसन्न हुए हैं। वह
कहते हैं कि ऐसी घटना हुई है कि जिस सिद्धान्त को रायल
एसियाटिक सोसाइटी ने पहले अवैज्ञानिक कहकर त्याग दिया
था बीस बरस पीछे फिर आदर के साथ उसको स्वीकार करके
प्रकाशित किया है। प्रोफेसर बसु ने जो महत् तत्व वैज्ञा-
निक समाज में उपस्थित किया है उसका परिणाम बहुदूरगामी
होगा। इस समय उनको इस तत्व द्वारा साहसपूर्वक युद्ध करना
होगा बिना सर्व साधारण में प्रतिष्ठित कराये उनको विश्राम
नहीं मिलेगा। इस काम को जिन्होंने आरम्भ किया है परिणाम
भी उन्हीं के हाथ है। इसका भार और कोई नहीं ले सकता।
प्रोफेसर इस अवस्था में यदि इसको असम्पूर्ण रख जायँगे तो
नष्ट हो जायगा।

—o—

फ़ेजरी बाबा

मन्द्राज प्रेसीडेंसी में कड़ापा प्राचीन समयसे साधु सन्या-
सियों के लिये परिचित है। उस ज़िले में सर्वत्र सुन्दर सुन्दर प-
र्वत, सुन्दर अरण्य, और रमणीय तपोवनों के कारण सदा से
ब्रह्मदर्शी तपस्वी बास करते आये हैं किन्तु वह लोग सचराचर
संसारी मानव गण के दृष्टिगोचर नहीं होते। कोई छब्बीस वर्ष
पहले कड़ापा के एक सुशिक्षित, सद्वंशजात सदाचारी और धर्म्म
भीरु हिन्दू डिपुटी कलेक्टर किसी सरकारी काम के वास्ते उसी
ज़िले के मदनपाली नामक प्रसिद्ध गाँव में गये थे। यहां डेढ़ मील
पर छोटे २ पर्वत और बन हैं। सन्ध्या समय डिपुटी साहब
अपने कई मित्रों के साथ टहलते टहलते उधर निकल गये। तो

देखते क्या हैं कि पर्व्वत से घटाकार धूएं के साथ आग की लहरें निकल कर आकाश की ओर जा रही हैं। क्या बात है जानने के लिये उसके पास गये तो देखा कि चहुँओर जलती आग से घिरा एक आदमी खड़ा है। और समीप जाकर देखा तो एक महापुरुष जलती आग में खड़े होकर अपनी लम्बी भुजाओं को बड़ी तेज़ी से हिला रहे हैं। डिपुटी महाशय के अपने साथियों सहित वहाँ पहुँचते ही वह सुन्दर कान्तिवान महात्मा पुरुष आग से बाहर कूदकर पहाड़ पर चढ़ने को थे कि झट यह लोग दौड़ कर उनके पाँव पड़े। और कहने लगे–"हे देव। आज बड़े भाग्य और पूर्व्व पुण्य बल से आप का दर्शन मिला है। पर्व्वत और जङ्गलोंको पवित्र करना तो आप का नित्य कर्म्म और स्वाभाविक धर्म्म है। किन्तु मायावी मानवोंके घरों को पवित्र करना क्या निषिद्ध है? यदि हम मायामय जीवों के अपावन घरों को पवित्र करके आप लोग पातकियों का उद्धार नहीं करेंगे तो हम लोगों को कौन उपाय है? आप लोग सदाही गृह शून्य हैं किन्तु गृहस्थों का पाप गृह अपने चरण रज से पवित्र करने में आपही सदृश-ब्रह्मर्षि तो समर्थ हैं?"

इसी तरह अनेक विनय निवेदन पर डिपुटी साहब उन महात्मा को अपने डेरे पर लाये। बड़े आदर और भक्ति से उन को ठहराया। फिर दो दिन में वहाँ का काम पूरा करके महात्मा को लिये हुए डिपुटी कछापा पहुँचे। वहाँ भी उनको योग्य स्थान मे उनको ठहराया।

जिनकी बात हम कहते हैं उनकी उमर ते। कोई ठीक नहीं कह सका लेकिन इतना मालूम हुआ कि पचास बरस से ऊपर नहीं गये होंगे। अङ्गरेज़ी, फारसी, अरबी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत मे भी बड़े पारदर्शी थे। कमर में गेरुआ, बदन पर काले

कम्बल का अँगरखा, गले में पीतलकी मोटी सिकली, और हाथ में लोहे का लम्बा छड़ था। खूब मोटे थे न खूब पतले साधारण आकार के सुन्दर पुरुष थे। बातों से वह अन्तर्वेद के निवासी हिन्दू समझे गये थे। मछली या मांस प्रतिदिन नहीं किन्तु जब खाते थे तब आठ दससेर खाकर हजम कर जाते थे। सूर्योदय से सूर्यास्त तक और सूर्यास्त से सूर्योदय तक चौबीस घण्टे में एक तोला अहिफेन खाते और सोलह चिलम गाँजा, और तीन चिलम चरस, पीते थे। तम्बाकू की तो गिनती नहीं थी। चिलमपर चिलम चढ़ती रहती थी। एक दिन उन्होंने ग्यारह बोतल विलायती ब्रांडी (Exshow No. 2) बिना जल मिलाये पी ली थी किन्तु नशा कुछ भी नहीं जान पड़ा। भात खाने बैठते तो आधपाव चावलसे अधिक नहीं खाते थे। कितने ही बड़े बड़े विषैले सांपों को पकड़ कर अपने मुंह से उसका मुंह मिलाते और उनका विष पान करते थे। दिन रात में कभी किसी ने उनको नींद में नहीं पाया। दिन को अन्नाहार करने पर आराम कुर्सी पर बैठकर दोनों पाँव फैलाये हुए आधे घंटे तक आंख मूंद कर पड़े रहते थे।

होते होते कड़ापा नगरमें सर्वत्र उस साधु महात्मा की बात फैल गयी। उनको देखने के लिये झुण्ड के झुण्ड लोग आने लगे। दूर दूर से आने वाले स्त्री पुरुषों का तांता लगा। उधर नगर के जज्ज, मैजिस्ट्रेट पुलीस सुपरिण्टेंडेण्ट, इञ्जिनियर, सिविल सर्जन, जमींदार, सौदागर वकील, मुन्सिफ, सदरआला और शिक्षा विभागके लोग आ आकर दर्शन करने और अपनी आंखों को कृतार्थ करने लगे। साधु बाबा सब के साथ सद्व्यवहार और सुमिष्ट भाषण से बड़े यशस्वी हो उठे।

कड़ापाके प्रसिद्ध ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर फ्रेजर (Fraser)

उस समय देहात गये थे इस कारण साधु दर्शन से वञ्चित रहे। जब लौट कर हेड क्वार्टर में आये तब अनेक मान्य राज कर्म्मचारियों से बाबा की समता कथा सुनकर उनसे मिलनेके अभिलाषी हुए। किन्तु अनवकाश से वह दो एक दिन तक साधु बाबा को सेवा मे नहीं पहुंच सके। कोई एक अठवाड़ा बीतने पर आकस्मात् रास्ता चलते उन्होंने बाबा का दर्शन पाया। फ्रेजर साहब अपनी स्त्री के साथ एक दिन सन्ध्या को सदर सदर सड़क से होकर हवाखाने के लिये पांव पैदल दक्षिण से उत्तर को जा रहे थे। इतने मे डिपुटी साहब अपने बन्धु और साधु बाबा के साथ सामने से आते दीख पड़े। देखते ही साहब ने पूछा—"डिपुटी साहब! सुनते हैं आप के डेरे पर एक अच्छे साधु आये हैं। मुझे उनके दर्शन की बड़ी लालसा है। क्या वह यही—" डिपुटी साहब ने कहा—हाँ यही हैं।"

साधु बाबा की ओर देखकर फ्रेजर साहब ने कहा—"महाशय! सुनते हैं साधू लोग भूत, वर्तमान, भविष्य सब जानतेहैं। मैं आप से एक भविष्य बात पूछना चाहता हू। आप बतला सकेंगे मैं कब विलायत जाऊँगा?"

महापुरुष ने उत्तर दिया—"आज से एक महीने में आप विलायत जायँगे।" साहब ने कहा—"आपसे बात करनेके पहले तो मेरी कुछ श्रद्धा भक्ति आप पर हुई थी किन्तु बात करने पर वह घट चली है।"

इतना कहते हुए फ्रेजर साहबने डिपुटी महाशय की ओर देखकर कहा—"देखिये हम लोग सिविलियन हैं हिन्दुस्तान में छ बरस तक नौकरी करके छ महीने की छुट्टी पाते हैं। पारसाल छुट्टी लेकर मैं विलायत गया था। विलायत से लौटे हुए मुझे डेढ़ महीना हुआ है। अब छ बरस तक हमको छुट्टी नही

मिल सकती। और हमारी ऐसी इच्छा भी नहीं है न कोई ज़रूरत है। इस साधू की बात तो बिलकुल झूठीही जान पड़ती है। एक महीने में तो विलायत जाना बिलकुल अनहोनी बात है।"

इतना कहकर साहब ने साधू की ओर देखा। कहा—"तुम्हारी बात तो बिलकुल पागलों कीसी है। तुम पागलही जान पड़ते हो।"

साधू ने कहा "फ्रेज़र। फ्रेज़र। इसी पागल के पागलपन के लिये तुमको एक महीने के भीतर विलायत जाना होगा। जाना होगा। जाना होगा।" कहते हुए वहाँ से झट आगे बढ़े। फ्रेज़र साहब अपनी स्त्री के साथ हंसते हुए डेरे को गये। डिपुटी साहब अपने साथियों के सहित दौड़कर बाबा के सङ्ग हुए।

इसके दो दिन पीछे बाबाजी कहांपा से कहाँ चले गये किसी को कुछ जानने का उपाय नहीं रहा लेकिन फ्रेज़र साहब को जो बात कह गये थे वह सब को याद थी।

इस घटना के ठीक चौदहवें दिन श्रीमान् फ्रेज़र साहब इजलास पर बैठे मारपीट के मुकद्दमे का विचार कर रहे थे। वादी प्रतिवादी का इज़हार हो चुका था। गवाहों का बयान भी हो चुका। वकील मुख़्तारों की वक्तृता भी समाप्त हो गयी। केवल राय (Judgement) लिखना बाकी था। साहब राय लिखने लगे। लेकिन कलम पकड़तेही हाथ काँपने लगा। किसी तरह आठ दस पाँती लिख गये लेकिन उनकी छाती में ऐसा दर्द उठा कि सहना कठिन हुआ। प्यास के मारे कण्ठ सूखने लगा। झट नौकर ने बरफ़ और लेमनेड पीने को दिया। बड़ी तकलीफ़ से आधा फैसला लिखने पर उनके मन में न जाने क्या आया सब लिखा हुआ फाड़ कर फेंक दिया। फिर कुरसीसे उठ

कर उन्होंने सब कपड़े उतार दिये। नङ्ग धड़ङ्ग मुँह से अनेक अश्लील गाली बकने लगे। कचहरी के लोग साहब की दशा देखकर बहुत डरने और चौंकने लगे। साहब इजलास से कूद कर पहलवान की तरह एक कानिस्टबल पर जा पड़े। और बड़ी बेदर्दी से उसको मारने लगे। निरपराधी कानिस्टबल मार के मारे ज़ोर से चिल्लाने लगा। नाज़िर पेशकार, सरिश्तेदार आदि दौड़ कर आये। साहब बहादुर उनको भी मारने लगे। अन्त को पतलून भी फाड़कर फेंक दिया और बिलकुल नङ्गे होकर कचहरी के कमरे में दौड़ने लगे। अब सब ने मिल कर साहब को पकड़ा और एक जगह सुला दिया। इधर डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट, जज, सिविल सर्जन, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट और साहब लोग जल्दी जल्दी फ्रेज़र की कचहरी में पहुँचे। साहब की परीक्षा करके डाक्टर ने कहा कि यह एक तरह का उन्माद रोग जान पड़ता है।" एक घंटे पीछे वह अपने बंगले को पहुँचाये गये। रोग तो नहीं घटा रोज बढ़ताही गया। यहाँ तक कि दवा कराने के लिये मन्दराज भेजे गये। वहाँ पागलखाने के बड़े बड़े डाक्टरों ने देखकर कहा "विलायत जाकर इसकी अच्छी तरह दवा नहीं होगी तो रोग अच्छा नहीं हो सकेगा। मन्दराज गवर्नमेण्ट के यहाँ भी रिपोर्ट पहुँची। गवर्नमेण्ट के हुक्म से छुट्टी लेकर अट्ठाईसवें दिन दोपहर के बाद फ्रेज़र साहब विलायत के वास्ते जहाज पर स्त्री सहित इङ्गलैण्ड (विलायत) को रवाना हुए। मन्दराज हाते भर में यह बात फैल गयी। उस वाक्सिद्ध महापुरुष के अभिशाप का फल देखकर सब विस्मयसिन्धु में डूबने उतराने लगे।

विलायत जाने पर उनकी दवा हुई। फ्रेज़र साहब नीरोग हो जाने पर इस घटना का पूरा विवरण वहाँ के जगत्विख्यात

टाइम्स पत्र में छपवाने को भेजा। टाइम्स सम्पादक को उस घटना का विवरण पढ़ने पर बड़ा आश्चर्य हुआ। और छापने से पहले फ्रेज़र साहब को बुला भेजा। फिर उनके मुँह से सब हाल सुनकर उस विवरण को बड़ी खुशी से छाप दिया। उसी समय फ्रेज़र साहब ने कहा था कि उसी डिपुटी कलेक्टर को विलायत से चिट्ठी लिखी थी। हम उस चिट्ठी का अनुवाद भी नीचे देते हैं :—

फ़्रेज़र साहब की चिट्ठी।

प्रिय डिपुटी।

मुझे भरोसा है आप यह सुनकर खुश होंगे कि मैं अब भगवान की दया से अच्छा हो गया हूँ। आप के डेरे पर जो हिन्दुस्तानी साधू आये थे वह सचमुच ब्रह्मदर्शी महापुरुष थे। मैं ने वैसा असाधारण आदमी (Extra ordinary man) कभी नहीं देखा था आप दया करके उन साधू महाशय का एक फोटू भेज सके तो मैं सचित्र लण्डनन्यूज नामक समाचारपत्र में उनका चित्र छपवा दूँगा। उनका संक्षेप में जीवनचरित भेजें तो बहुत अच्छा होगा। टाइम्स पत्र में मैंने उनका विवरण छपा दिया है।

भवदीय

फ़्रेज़र।

इसके जवाब में डिपुटी महाशय ने जो चिट्ठी लिखी थी उसका मतलब यों है :—

(डिपुटी महाशय की चिट्ठी)

प्रिय मिस्टर फ्रेजर।

आप की चिट्ठी और आरोग्यता का समाचार पाकर मैं

बहुत खुश हुआ। आप के विलायत जाने से बहुत पहले वह महात्मा पुरुष कड़ापा से प्रस्थान कर चुके हैं वह कहाँ गये हैं सो कोई नहीं जानता। जानने की कुछ तदबीर भी नहीं है। उनका जीवनचरित मैंने संग्रह नहीं किया। ऐसे महात्मा लोगों की जीवनी संग्रह करना बड़ा कठिन है। क्योंकि यह लोग अपना परिचय देतेही नहीं। उनका एक फोटू मैंने लिया था वह मेरे पास है। लेकिन अच्छे फोटोग्राफर के हाथ का नहीं होने से वह अच्छा नहीं हुआ। मै जल्दी मन्द्राज जानेवाला हूँ। वहाँ से उसकी अच्छी कापी कराकर भेजने में मैं नहीं चूकूँगा। मैं भरोसा करता हूँ आप भले चङ्गे होंगे *

छुट्टी पूरी होने पर फ्रेजर साहब फिर कड़ापा पहुँचे। वहाँ उन्होंने उन महात्मा पुरुष को बहुत ढूँढ़ा था लेकिन कभी दर्शन नहीं मिला। तौभी फ्रेजर साहब ऐसे साधु भक्त हो गये थे कि हाट, बाट, मैदान जहाँ साधू के आनेकी ख़बर पाते झट अपने यहां पधरवाते और बड़े आदर से उनको ठहराते और सहायता करते थे।

सेतबन्ध रामेश्वर से लौटती बेर मैं कड़ापा और मदनपाली मे कुछ दिन ठहरा था। इस घटना का विवरण मैं ने वहां अनेक बड़े बूढ़ों के मुंह से सुना है। जिन्होंने उस घटना और महात्मा को अपनी आँखों देखाथा उनमें से कितनेही अभी जीते हैं। जिनके मुंह से मैंने यह घटना सुनी थी उनमे कोई कालिज के प्रिंसपल, कोई जज, कोई डिपुटी कलेकृर, कलेकृर, कोई राजोपाधि प्राप्त जमींदार कोई वकील, कोई ग्रन्थकार कोई

* विलायत का वह फोटू नहीं भेजा गया लेकिन उन महात्मा पुरुष का चित्र मैंने अपनी आँखों देखा है। पहला फोटू अब तक मौजूद है-लेखक।

तत्वदर्शी साधू भी थे। उन महात्मा पुरुष का फोटू मैंने कितने ही बड़े आदमियोंके घर अपनी आंखों देखा है। वह बाबा वहाँ फ्रेंज़री बाबा के नाम से मशहूर हैं। वह बाबा कहते थे कि मं-शयात्मा का अत्यन्त अधःपतन होकर अन्त में नाश होता है।"

मुक्ति।

मुक्ति शब्द कई अर्थों में व्यवहृत होता है। इसी कारण बहुधा तात्पर्य समझने में गड़बड़ हुआ करता है।

आजकल बहुतेरे खृष्टान सेलवेशनिस्टियोंके सालवेशन (Salvation) शब्द का हम लोगों के मुक्ति शब्द के अर्थ में प्रयोग करते हैं। जैसे सालवेशन आरमी "Salvation Army" अर्थात् मुक्तिफौज। खृष्टानों का सालवेशन-आरमी कैसा है? मनुष्य जाति के आदम पितामह बाबा आदम के पाप से उनकी सन्तान सन्तति सब पापग्रस्त हैं। शैतान आदम के समय से आज तक मनुष्य मात्र को फुसलाकर विपथ पर ले आने की चेष्टा करता और उसमें समर्थ भी होता है। इस कारण मनुष्य मात्रही पापी है। ईश्वर करुणामय हैं। उसके भेजे हुए सन्तानों ने मनुष्य जाति के प्रतिनिधि स्वरूप होकर अपने शोणितपात द्वारा उनके पाप का प्रायश्चित्त किया है। जो मनुष्य पूर्ण विश्वास से यीशु खृष्ट का आश्रय लेता है वह उसी प्रायश्चित्तबल से उस पुरातन पाप से मुक्तिलाभ का अधिकारी है मनुष्य मात्र को एक एक आत्मा है। इतर जीव उससे वञ्चित हैं। मृत्यु के पीछे वही आत्मा अन्तिम विचार की राह देखती रहती है। कहां किस अवस्था में रहती है सो नहीं जाना जाता। जान पड़ता है प्रलय होने पर एक दिन अन्तिम विचार होगा। जिन लोगों ने यीशु खृष्ट का आश्रय लिया है वह विचार से रिहाई पावेंगे। उनको स्वर्गवास

का पुरस्कार मिलेगा। जिन्होंने उनका आश्रय नहीं लिया वह दण्डित होकर नरक को भेजे जावेंगे. स्वर्ग कहां है और नरक कहां और वहाँ किस तरह पुरस्कार अथवा दण्ड का विधान होता है, इस विषय में कुछ दिन पहले भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में भिन्न भिन्न मत प्रचलित था। नरक में गन्धक की आग में जलने आदि की बातें कही जाती थी। जान पड़ता है इन दिनों उस प्रकार स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जाता। सम्भव है इतने दिनों पर गन्धक प्रभृति जड़ पदार्थों का किसी प्रकार आध्यात्मिक तात्पर्य निकाला गया हो। विचार हो जाने पर किसी के भाग्य मे चिरकाल स्वर्गवास और किसीके भाग्य में सदा नरक वास होता है किन्तु पुरस्कार और तिरस्कार में व्यक्ति भेद से तारतम्य हो सकता है। मोटी बात यों है कि स्वर्गवास में सुख और नरकवास में कष्ट होता है। किन्तु वह सुख वा दुख कैसा होता है सो ठीक कहना बड़ी जिम्मेदारी का काम है।

सारांश यह कि यीशु खृष्ट के विचार और करुणासे पापी के पाप फल से रिहाई पाने का नाम सालवेशन है। ईश्वर तनय यीशुखृष्टही स्वयम् रिहाई देनेवाले हैं। दुर्बल मनुष्यों को शैतान के भुलावे से बचाने के लिये पृथ्वी में गिरिजा घरों (Churches) का बन्दोबस्त है। चर्च के कर्म्मचारी पुलीस और रयानेजुर का काम करते हैं नैतिक राह घाट से कुश कॉटा हटा देते हैं। गृहस्थों को शैतान दूत के भुलावे से होशयार कर देते हैं रोमन चर्च के एक नेता होते हैं उनका नाम पोप है। वह ईश्वर नियोजित पुरुष है। उन्हीं के हाथ मे एक तरह से स्वर्ग नरक की चाभी रहती है। उनका दिया हुआ सरटिफिकेट अन्तिम विचार के दिन ईश्वर पुत्र का कार्य भार बहुत कुछ कम कर देता है। मनुष्यात्मा पर उनका अतिरिक्त अनुग्रह है।

संक्षेपतः साराश यह है कि खृष्टीय सालभेशनका तात्पर्य विचार के फल से पापमोचन और स्वर्ग प्राप्ति है। उसमें यीशु खृष्ट के सिवाय दूसरा उद्धार करनेवाला नहीं है।

हिन्दू शास्त्र मे पापमोचन और स्वर्ग लाभ को मुक्ति नहीं कहते। हिन्दू के विश्वास में स्वर्ग और नरक हैं, मनुष्य की आत्मा है, प्रायश्चित है, पापमोचन की विविधि प्रणाली और पन्था है किन्तु खृष्टानों के साथ उसका सर्वत्र मिलान नहीं खाता। याग यज्ञादि सम्पादन करने से स्वर्ग लाभ होता है। वहाँ मनुष्य देवत्व लाभ करके विश्राम पाता है। उस स्वर्ग में भी पारिजात पुष्प हैं। मन्दाकिनी नदी है, अप्सरा है। स्वर्ग में भी कई भेद हैं। जैसे वैकुण्ठ वा विष्णुलोक, कैलाश वा शिव-लोक इत्यादि। पापियों की स्थिति नरक में होती है वहाँ कुम्भीपाकादि की व्यवस्था है। याग यज्ञादि सम्पन्न करनेसे स्वर्ग या देवलोक मिलता है। विष्णु भक्ति द्वारा विष्णुलोक और शिवभक्ति द्वारा शिवलोक की गति है।

किन्तु इस स्वर्ग प्राप्ति वा वैकुण्ठ प्राप्ति अथवा शिवलोक प्राप्ति को हिन्दू शास्त्र ठीक मुक्ति नहीं कहता मुक्ति का अर्थ और है।

खृष्टीय मत में जैसे मनुष्य की आत्मा है हिन्दू मत में मनुष्य की वैसी ही कुछ एक है। उसको आत्मा न कहकर सूक्ष्म शरीर अथवा कारण शरीरकी भांति एक नाम देनेही से चल सकता है। कौनसा नाम ठीक शास्त्रसङ्गत होगा निश्चित रूप से नहीं कह सकते किन्तु मृत्यु पर जो वर्त्तमान रहता है इस लोक उस लोक में जाता आता है। और कर्म फलादि भोग करता है वह ठीक आत्मा नहीं है उसका ऐसा ही एक नाम रख देना अच्छा है। अङ्गरेजी Soul (सोल) शब्द हम लोगो के आत्मा शब्द के

साथ एक अर्थ में प्रयुक्त होकर महा अ र्थ कर रहा है । अं Soul ठीक साकार न होने पर भी एक तरह का सङ्कीर्ण मीमां वहु वा व्यक्तित्व युक्त सूक्ष्म पदार्थ है हम लोगों की आत्मा वैसा सङ्कीर्ण शरीर का पदार्थ नहीं है। विशेषतः उसके भोक्तृत्वादि गुण विषय में यथेष्ट सन्देह है। शास्त्र में पुनः पुनः उक्त हुआ है कि आत्मा को कर्तृत्व भोक्तृत्व प्रभृति नहीं है बड़ी कठिनता से उसका द्रष्टत्व वा शान्तित्व मात्र स्वीकृत हुआ है। इस कारण अंग्रेज़ी Soul सोल का अनुवाद आत्मा नहीं कहना अच्छा है। उसके बदले सूक्ष्मशरीर, लिङ्गशरीर अथवा कारण शरीरकी तरह एक सङ्कुल शब्द कहनाही अच्छा है।

जो हो मनुष्य का यह अंश जो स्थूल शरीर से भिन्न है, उह शरीर के ध्वंश होने पर भी वर्त्तमान रहता है। और बार बार देह परिवर्तन करता है। "जीर्णानिवासांसि यथा विहाय" इत्यादि श्लोक बहुतों से अविदित नहीं है। आत्मा जैसे स्थूल शरीर का आश्रय करके रहती है उसी तरह वह सूक्ष्म शरीर आश्रय लेकर रहती है। वर्त्तमान देह के अन्त पर अन्य प्रकार की देह आश्रय करके इस देश उस देश में घूमती है।

इस जन्मान्तर पर हिन्दुओं में बड़ा विवाद चलता रहता है। इस जन्मान्तर वाद को स्थूलतः इसी प्रकार रखने से चलना है मनुष्य से कीट पर्यन्त तृण लता उद्भिद तक विविध जीव वर्त्तमान हैं। अन्यान्य जीव मनुष्यों के नीचे क्षमता में मनुष्य की अपेक्षा हीन हैं। इसके सिवाय मनुष्य से ऊपर भी और अनेक जीव हैं। गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, देवता प्रभृति। इनकी क्षमता अनेक विषयों में मनुष्य से अधिक है। वह लोग सचराचर मनुष्य के अदृश्य हैं बीच बीच में मनुष्य को दृष्टिगत होते हैं। इनका अधिवास कभी पृथ्वी पर कभी पृथ्वी से बाहर

होता है । उनकी परमायु मनुष्यों की अपेक्षा बहुत है । उनके जीवन धारण की प्रणाली अन्य प्रकार की है । देवता लोग स्वर्ग में वास करते हैं । उनमें किसी किसी को क्षमता यथेष्ट है । जगत के एक एक डिपार्टमेण्ट के एक एक कर्त्ता हैं । मनुष्य के भाग्य पर भी उनका यथेष्ट प्रभुत्व है । किन्तु यह देवता उपदेवता गण मनुष्य से भिन्न प्रकृत के प्राणी होने पर भी देह धारी हैं । वह भी कोई चिरजीवी नहीं हैं . बड़े बड़े देवता जो मनुष्योंके उपास्य हैं वह भी कल्पान्त में जन्मे हैं कल्पान्त में उनका भी विलय होगा . वह चिरजीवी नहीं हैं . वस्तुतः मनुष्योंसे शक्तिशाली होने पर भी एक प्रकार से वह मनुष्य और अन्यान्य इतर जीवों के समान पर्य्यायभुक्त देहधारी जीव हैं .

हम जो निर्द्देश कर आये हैं वह हिन्दू मत की ऐतिहासिक आलोचना करने से सर्वत्र सङ्गत नहीं होगा . वैदिक युगमें देवतागण के सम्बन्ध में जैसा विश्वास प्रचलित था पौराणिक युग में ठीक वैसा नहीं था . वैदिक इन्द्र और पौराणिक इन्द्र, वैदिक यम और वरुण पौराणिक यम और वरुण समान क्षमताशाली नहीं हैं . पौराणिक काल में देवताओं की क्षमता घट गयी थी . उनका देवत्व अनेक अंश में मनुष्यत्व के समीपस्थ हो आया था . बौद्धों के हाथ से वह और नीचे उतर आये . बौद्ध गण देवताओं के अस्तित्व में अविश्वास नहीं करते किन्तु उनके निकट देवता केवल मनुष्य की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली जीव मात्र थे .

मनुष्य से अदृश्य अतिमानुष-प्रकृति सम्पन्न जीव प्रकृति अस्तित्व सम्पन्न हैं या नहीं सो हम नहीं जानते उनका अस्तित्व असम्भव है ऐसा तो कोई कह नहीं सकता मनुष्य के नीचे दरजे मे नाना प्रकार के जीव हैं ऊंचे मे देवता नहीं होंगे

यह कौन कहेगा ? उस समय के सिद्ध पुरुष ऐसे अतिमानुष-श-मतापन्न जीवों का दर्शन पाते थे . इस समय के थियासफिस्ट उनका दर्शन पाते हैं . उनका विश्वास है कि हम लोग दुर्भाग्य, हीन शक्ति मनुष्य है . उनके दर्शन लाभ से वञ्चित हैं . हमलोग उनके अस्तित्वमे सहसा विश्वास नहीं करना चाहते किन्तु इसी से वह लोग नहीं हैं ऐसा कैसे कहैंगे ? इस समय वह हमलोगों से अदृश्य हैं . सूक्ष्मदर्शक यंत्रों से छोटे से छोटे कीटाणु तक कितने ही देखे जाते है . किन्तु अभी उनसे किसी देवताका पता नहीं चला . तौ भी इस शताब्दी के वीतने से पहले किसी नूतन आलोक से उनको देख सकेंगे या नहीं सो कौन कह सकता है .

वह जो हो हिन्दू समाज के अधिकांश मनुष्य देवता और उपदेवता के अस्तित्व में विश्वास करते हैं . उनको क्षमता बहुत है, किन्तु वे सृष्टि कर्त्ता नहीं हैं . स्वयम् मनुष्यादि की भांति सृष्ट पदार्थ हैं, अतएव जो हिन्दू तेंतीस कोटि देवता की पूजा करते हैं उनको कुवचन कहने से नहीं बनेगा . खृष्टीय लोग भी अनगिनित इञ्जील और पिशाच के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं . उनकी उपासना करनेवाले भी हैं . इञ्जील और पिशाच का अस्तित्व अस्वीकार करने से वाइविल ग्रन्थ का कितनाही भाग निराधार हो पड़ेगा . स्वयम् यीशुखृष्ट भूत की ओझाई से बड़े निपुण थे . भूत चढ़े हुए शूकर समूह का विनाश करके उन्होंने जैसी प्रतिपत्ति पायी थी Sermon on the mount से वैसी नहीं पायी . खृष्टान के इञ्जील और हिन्दुओं के देवता में विशेष मौलिक पार्थक्य नहीं देख पड़ता . खृष्टान एकेश्वरवादी होने से वाहवाही और हिन्दू बहुदेवोपासक होनेसे गाली पाते हैं यह अति अद्भुत विचार है .

जो हो मनुष्य इस जीवन मे जो काम करता है उसके फल का विनाश नहीं है. मनुष्य का देहान्त है किन्तु उसका कर्म्म फल अविनाशी होता है. वह रह जाता है. कर्म मनुष्य के भविष्य का नियामक है. कर्म से ही मनुष्य के परःकाल की व्यवस्था होती है. जो अच्छा काम करता है वह परजीवनमे स्वर्ग जाता है. कुछ दिन देव होकर देवलोक मे वास करता है. जो खराब काम करता है वह नरक मे जाकर कठोर दण्ड भोगता है. वर्त्तमान जीवन पूर्व्वक जीवन के किये हुए सब कर्म्मों के फल से प्राप्त हुआ है. पूर्व्व कर्म्म से वर्त्तमान जीवन के कर्मका योग होगा और उससे परवर्त्ती जीवन की व्यवस्था होगी. न सदा दुःख भोग है न सदा सुख भोग अच्छे काम के फल से भविष्य में सुख और बुरे के फल से दुःख होता है. कर्म फल से भविष्य में कुछ दिन दुःख सुख भोग करना होता है. असत् कर्म के फल से नरक और सत्कर्म के फल से स्वर्ग होता है. उसमें कुछ धोखा नहीं चलता. प्रकृति राज्य में जो नियम है उनका कोई जैसे उलंघन नहीं कर सकता वैसेही नैतिक राज्य के यह सनातन नियम अलंघनीय हैं. अपने किये काम का फल हमको भोगनाही होगा इस जन्म में भी और उस जन्म में भी. किस काम का क्या फल है और वह फल कितने दिन तक भोगना होगा इसका नियम बँधा है. स्वर्ग, बैकुण्ठ, शिवलोक, सब कर्म फल से पाया जासकता है. कुछ दिनों तक उन लोकों में वास करके सब लोग भोग समाप्ति पर फिर मर्त्यलोक में आवेंगे. फिर वही कर्म्म सञ्चय और वही कर्म्म फल की प्राप्ति होगी. इसी प्रकार मनुष्यात्मा सूक्ष्म शरीर और साथही विविध स्थूल शरीर आश्रय करके अपने कर्म का फल भोग करती हुई भव संसार में इधर उधर घूमती फिरती है. कर्म के बन्धनमें मनुष्यकी आत्मा

बंधी है उस बन्धन से मुक्ति पाने का उपाय क्या है सो पीछे देखा जायगा .

खृष्टानी मत से मनुष्य की विचार प्रणाली जितनी सहज है हिन्दू मत से उतनी नहीं है यह बात देखी जा चुकी . खृष्टानी मत से मनुष्य केवल अपनेही काम (आत्म कर्म) के लिये दायी नहीं है अपने पूर्व पितामह आदम के काम का भी जिम्मेदार है . और वह आत्म कर्म्म वा पितृ कर्म्म दोनों से नरक में जाने के वाध्य हैं . किन्तु ईश्वर पुत्र की शरण लेकर मनुष्य नरक से छुट्टी पा सकता है . मरने पर कुछ दिन राह ताकना होगा उसके पीछे विचार होगा . उसमें इस पार या उसपार जहाँ हो. लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि उसकी अपील वा पुनर्विचार (नजरसानी) नहीं होगी . हिन्दू मत से कर्म्म फलसे छुट्टी नहीं मिलती कर्म्म का फल अवश्यम्भावी है . कोई दया कर अत्याहुति दान का अधिकारी नहीं है . मृत्यु होने पर कोई विचारक बैठकर अपने ख़यालसे अपराधीको रिहाई नहीं दे सकता . यमराज की जो हुकूमत है वह भी आईन के अनुसार है . वह एकजीक्यूटिव अफ़िसर (Executive officer) हैं . कर्म्मानुसार फल विचार भर करते हैं . आईन उलटने की उनको क्षमता नहीं है . और इसी जन्म का कर्म्म फल भोगने से निस्तार नहीं होगा . पर जन्म से भी काम करना और उसका फल भोगना होगा . अतएव कर्म्म का भी शेष नहीं है न कर्म्म फल भोग की ही अवधि है . सदा ऐसे ही चलता रहेगा . कभी सुख भोग कभी दुःख भोग करके कभी कीट रूप कभी मनुष्यरूप, कभी देवरूप, कभी मर्त्यलोक में कभी अन्तरिक्ष वा स्वर्ग में, कभी नरक में भरमना होगा . तब तक जब तक जगत है, यदि मुक्ति न हो .

स्वर्ग वास सत्कर्म्म का फल होने पर भी वह कर्म्म पाशके

बन्धन का फल है . उसको मुक्ति नहीं कहते . मुक्ति के बाद फिर जन्मान्तर ग्रहण नहीं है . आत्मा तब कर्म्मबन्धन से सदा के लिये मुक्त होती है तब उसको स्वर्ग में नहीं रहना होता, मरर्थलोक में नहीं आना होता, नरक का भी भय नहीं होता, तब उसको सूक्ष्म शरीर वा स्थूल शरीर कुछ भी ग्रहण नहीं करना होता . तभी बन्धन मुक्ति होतीहै . स्वर्गवास मुक्ति नहीहै . वह भी बन्धन है . या यों समझो कि वह सोने की सांकल का बन्धन है किन्तु है बन्धन . विष्णुलोक में वास करने का अधिकार पाने पर भी मुक्ति नहीं होती क्योंकि वह भी बन्धन है . वह भी कर्म्म फल से मिला है . कुछ दिन विष्णुलोक में वास करने का अधिकार पाने पर भी भोगने के बाद फिर लोकान्तर प्राप्ति की सम्भावना रह जातीहै . इसे कारण इसको मुक्ति नहीं कह सकते .

तो मुक्ति है क्या ? इसके लिये प्रचलित हिन्दू मत में जो लिखा है सो हम कहतेहैं * ऊपर कर्म्मफल और जन्मान्तर बाद सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह भी सर्वसाधारण प्रचलित मत है . सर्व साधारण का विश्वास वैसाही है . वह सर्वसाधारण का विश्वास द्वैतवाद पर प्रतिष्ठित है . आजकल जो अद्वैतवादी कहकर अपना परिचय देते हैं वस्तुतः वह भी घोर द्वैतवादीहैं । मै उनके मध्य प्रचलित मुक्तितत्व क्या है वही यहां कहता हूं .

प्रचलित अर्थ में मनुष्य देह आत्मा का स्थूल आश्रय है . आत्मा का दो नाम है . परमात्मा और जीवात्मा . दोनोंही एक अथच विभिन्न हैं . परमात्मा और जीवात्मा एकही पदार्थ से

* सर्व साधारण प्रचलित मत की बात कही जाती है दार्शनिक अर्थ क्या है सो नहीं

निर्मित हैं वह पदार्थ चिन्मय पदार्थ अथवा कोई अनिर्दृश्य पदार्थ है . किन्तु परमात्मा अनन्त, असीम और असङ्कीर्ण और जीवात्मा सान्त, ससीम और सङ्कीर्ण है . समुद्र के समग्र जल भाग के साथ उसके कियदंश जल का जैसा सम्बन्ध है, महाकाश के साथ घटाकाश का जैसा सम्बन्ध है, परमात्मा के साथ जीवात्मा का भी वैसाही सम्बन्धहै ; दोनों एकात्म, एकप्रकृतिक अथच विभिन्न हैं . दोनों में एक बड़ा अन्तर है . एक अनन्त दूसरा सान्त है, जीवात्मा, अविद्या युक्त होकर परमात्मा से विभिन्न हो जाती है . परमात्मा से विच्छिन्न रह कर अपनी स्वतंत्र लीला आरम्भ करती है तब वह सूक्ष्म और स्थूल शरीरका आश्रय लेकर संसार में इस लोक से लोकान्तर पर्य्यन्त विचरण करती रहती है . इस अविद्याच्छिन्नावस्था में वह अपने साथ परमात्मा का प्रकृत सम्बन्ध नहीं जान सकती . स्वयम् परमात्मा का अंश स्वरूप होने पर भी अपने को परमात्मा से विभिन्न, स्वतंत्र, असदृश प्रकृतिका समझती है . कभी अपने सूक्ष्म और कभी स्थूल देह को ही सर्वस्व समझती है . फन्देमे पड़कर और कर्म के बन्धन से जकड़ कर नाना लोकों में परिभ्रमण करती रहती है . साधना के फल से जब उसका प्रकृत ज्ञानोदय होता है तभी वह मुक्ति लाभ करती है . ज्ञानोदय से जब वह अपना प्रकृत स्वरूप जान लेतीहै जब परमात्मा का स्वरूप जान लेती है . परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध जान लेती है तब उसका अज्ञान मोह दूर होता है तब वह मुक्त होती है . अर्थात देहान्त पर अन्य देह आश्रय नहीं लेना होता . अन्य लोक में प्रवेश नहीं करना होता, स्वर्ग, मर्त्य वा अधोभुवन में नहीं आना होता . तब वह परमात्मा प्राप्त होती है . अविद्या बल से जहाँ से विच्छिन्न होकर आयी थी विद्या वा ज्ञान के उदय होने से,

भ्रान्ति वा मायाके छूटनेसे फिर वहीं लीन होतीहै। जल बिम्ब जैसे जल में उदय लाभ करके कुछ समयपर फिर उसी जल में लीन होता है उसी प्रकार जीवात्मा कुछ अल्प परमात्मा से विच्छिन्न रहकर अपने तई स्वतन्त्र समझकर अपने को स्वाधीन जान कर अन्त को फिर परमात्मा में संयुक्त वा लीन होजाती है। तब उसका स्वातंत्र्य नहीं रहता महासागर का जल महासागर में जा मिलता है। फिर उसको अलग करके पहचानने का उपाय नहीं रहता है।

मुक्ति शब्द की प्रचलित व्याख्या इसी तरह है। मुक्ति, मोक्ष, निर्व्वाणादि शब्द प्रायः प्रचलित शास्त्र धर्म्म ग्रन्थ और नैतिक ग्रन्थों में इसी प्रकार व्याख्यात होते हैं। जगत में जितने जीवहैं उतनी आत्मा है। प्रत्येक आत्मा एक एक शरीर आश्रय किये हुए है। कभी वृक्ष, कभी कीट, कभी मनुष्य, कभी देवता कभी उपदेवता आदि। अविद्या व मोहवश आत्मा देहबद्ध और परमात्मा से स्वतन्त्र है। मोहवश से वह कर्म्म साधन करती है और अपने कर्म से आपही आक्रान्त होती है। जितने दिन तक ज्ञानोदय नहीं होता उतने दिन तक कर्म्म उसको आक्रमण किये रहता है वह एक देह त्यागकर देहान्तरलाभ करती है किन्तु कर्म्म उसे नहीं छोड़ता। साथ ही साथ चलता है और जितने दिन तक निर्दिष्ट भोग नहीं पूरा होता उतने दिन तक उसको घेरे फिरता है। यदि चिरकाल उसका अज्ञान रहे चिरकाल उसकी कर्म्म मे प्रवृत्तिरहै तो उसका चिरकाल इसी तरह भरमना होगा। कभी सुख भोग कभी दुःख भोग होगा। आत्मा अवश्य ही स्वयम् अविकारी है। स्वयम् वह सुख दुःख की भोक्ता नहीं है किन्तु उसने जो देह आश्रय किया है उस देह में दुःख सुख का भोग घटता है। और कह सकते हैं कि

आत्मा को उस का साक्षी वा द्रष्टा होकर रहना पड़ता है। आत्मा की यही अवगति अपरिहार्य्य है। जब तक ज्ञानोदय नहीं होता तबतक उसकी यही दुर्वस्था है। अन्त को साधना के बल से ज्ञानोदय होनेपर तो कर्म्मदेव से पाता है। ज्ञान की आग सर्व कर्म्म को भस्म करदेती है तब बन्धन विमुक्ति वा मोक्ष घटता है। फिर देह धारण करके भटकना नहीं होता। तब वह परमात्मा मे मिलने का अवकाश पाती है। फिर परमात्मा से उसका विच्छेद नहीं घटता तब उस को स्वर्ग—नरक—वास की सम्भावना नहीं रहती। वैकुण्ठ धाम भी उसके निकट तुच्छ होता है। सुख दुःख दोनों ही उसके समीप समान है। उस अवस्था में कोई सूक्ष्म व स्थूल स्वतंत्र देह नही है। इस कारण उसके लिये सुख दुःख दोनों ही का अस्तित्व नही रहता।

मुक्ति की यही प्रचलित व्याख्या है। मुक्ति का साधन ज्ञान है। ज्ञानोदय बिना मुक्ति नहीं होती। ज्ञान का अर्थ है अविद्या का लोप अर्थात् परमात्मा से अपना जो भेदरूप भ्रम है उसी का लोप। मूलतः जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न है जीव और ब्रह्म मे असादृश्य नहीहै। दोनों का एक स्वरूपहै। केवल बीच मे अविद्या, अज्ञान, माया आकर कुछ दिनों के लिये इस भेदज्ञान की भ्रान्ति घटाती है। साधना से फिर ज्ञान उदय होता है। उसका फल है निर्व्वाण, मुक्ति वा परमात्मा में लय होना।

जीवात्मा की यह परिणति सब को अच्छी नहीं लगती। खृष्टान लोग ऐसी मुक्ति के सिरपर खड्ग लिये रहते है। उनके मत से ऐसी मुक्तिका नामान्तर Annihilation शून्यता पादन (लोप) है बौद्धमत के निर्व्वाण इस एनिहिलेशन के समीप ही

है । क्योंकि बौद्ध लोग परमात्मा के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते । किन्तु यहां हम बौद्धमतकी व्याख्या नहीं लिखेंगे । क्योंकि ऐसा करने से कथा नहीं पूरी होगी हिन्दू मत से मुक्ति शून्यतापादन Annihilation न होने परभी खृष्टीय गण का रुचिकर नहीं है खृष्टान पहले तो सृष्टिकर्त्ता और सृष्ट दोनों में सादृश्य और एक स्वरूपत्व मानना महा पाप समझतेहैं । परमात्मा और जीवात्मा शब्द खृष्टानों में प्रचलित नहीं है । किन्तु उसके स्थान में ईश्वर और जीव प्रचलित है किन्तु उन दोनों मे सादृश्य नहीं है । समस्त पार्थक्य है । ईश्वर ने मनुष्य को अपने समान मूर्त्ति दी थी । ऐसा एक वाक्य है किन्तु उसका प्रयोग और तात्पर्य और है । ईश्वर स्रष्टा जीव सृष्ट दोनों का कभी सम्मिलन नहीं होसकता जीव कभी ईश्वर में लीन नहीं होगा । किन्तु जीव प्रकृति के बल से अर्थात् खृष्टीय दया के कारण ईश्वर का सान्निध्यलाभ भर कर सकता है । ईश्वर के सान्निध्यलाभ का नाम स्वर्ग लाभ है क्योंकि ईश्वर स्वयम् स्वर्ग में रत्नवेदी पर पारिषदवर्ग से वेष्टित होकर बैठे हैं । दूत और लोग वहां सदा उनकी स्तुतिगीत गाते हैं । मनुष्य अन्त तक उनका सान्निध्यलाभ करके उनका ऐश्वर्य्य दर्शन करके तृप्ति लाभ करता है इतनाही उसका परमार्थ है ।

जीवेश्वर का सादृश्य वा एकत्व खृष्टान लोग स्वीकार नहीं करेंगे । और मुक्ति वा लय तो उनके समीप बिलकुल लोमहर्षण परिणाम है । हिन्दूके लिये मुक्तात्मा सुख दुःख वर्जित है । उसको जैसा दुःख नहीं वैसाही सुख भी नहीं है । खृष्टान इसी लिये इस परिणाम से राजी नहीं हैं । जिस परिणाम में सुख नहीं वह कैसे प्रार्थनीय हो सकता है । सुख कहने से अवश्यही कुछ शारीरिक वा ऐन्द्रियिक सुख नहीं समझना चाहिये उसके बदले परानन्द वा

भूमानन्द की तरह कुछ कहा जा सकता है। किन्तु परिणाम में यदि वैसेही एक आनन्द न रहे तो उस परिणाम में कुछ भी प्रार्थनीय विषय नहीं हो सकता। यदि मुक्ति के पीछे किसी आनन्द की सम्भावना नहीं हुई और यहाँ तक कि स्वतंत्र अस्तित्व तक नहीं रहा तो उस मुक्ति से खुष्टान का कुछ भी लोभ नहीं है। उस मुक्ति या परिणाम की खुष्टान प्रार्थना नहीं करते। *

ऐतिहासिकघटना +

नवाब अलीवर्दीखाँ उड़ीसा का झगड़ा दबाकर धीरे धीरे राजधानी को लौट रहे थे। अनेक सेना पहलेही छुट्टी वा मुर्शिदाबाद जाने का हुक्म पाकर विदा हो चुकी थी। नवाब के साथ केवल पाँच हजार सेना थी। वह सब थके हुए लड़ाई करने में असमर्थ थे। मयूरभञ्ज के राजा से बदला लेकर, उनका राज्य उच्छिन्न करके नवाब उस समय मेदिनीपुर के दक्षिण में पहुंच चुके थे। घोर अँधियारी के पीछे लाल किरण की भाँति शुभ्र मिहनत के पीछे

---

* एक हिन्दी प्रेमी बंगाली द्वारा लिखित।

\+ इतिहास में अलीवर्दीखाँ का पांच सहस्त्र महाराष्ट्र सेना के साथ यह लड़ाई एक अति आश्चर्य घटना है। उस समय के एक अङ्गरेज लेखक हाल वेल साहब लिखते हैं।

"if we consider the retreat of these in all its circumstances it will appear as amazing an effect of human bravery as the history of any age or people have chronicled, and we think it merits as much being recorded and transmitted to posperity as that of the celebrated Athenian general and historian"—Holwell---Interesting Historical Events

विश्राम बड़ा मीठा लगता है । युद्ध क्षेत्र में सेना को सदा-भय, सदा श्रम और सदा जीवन नाश तथा मरने की शङ्का रहती है ।

इसी कारण गोलियों के ठहाके और तलवारों की खचाखचके बाद समर के अन्तमें विजय पताका उड़ाती हुई नवाब सेना विश्रामलेती, शिकार खेलती आती थी । शिबिरों में आनन्द का सोता बहता था । चारों ओर से सैनिकों का अट्टहास्यही सुनाई देती थी । सब खुशी में मस्त थे ।

इतने में खबर मिली कि पञ्चकोटके पहाड़ी रास्ते से चालीस हजार घुड़सवार सेना लिये सुविख्यात रघुजी भोंसलाका दर्शानपुरुष सेनापति भास्कर पण्डित चौथ अदा करने के बहाने बङ्गाल लूटने के वास्ते बर्दवान की ओर आरहा है सम्वाद दाता ने निवेदन किया कि मरहठों की सेना समुद्र की लहरों की तरह उमड़ती चली आरही है । यहाँ से बीस कोस पर आ पहुंची है । दूसरे दिन सन्ध्या होते होते नब्बाब के डेरे पर आजायेगी । इतना सुनतेही कूट बुद्धि नब्बाबने मन में समझ लिया कि इस आसन्न विपदके समय तनिक भयका चिन्ह दिखायेंगे तो सेना डर जायगी । अस्त मनका भय मनही में दबाकर जवाब दिया-"वह काफिर कहाँ हैं ? दुनिया में ऐसी कौन जगह है जहाँ उनको पनाह मिल सकती है ? " इस सङ्कट समाचार को सुनने पर भी नब्बाव को निडर और निश्चल भाव देख कर सम्वाद दाता और सब लोग काठ हो गये । किसीके मुहँ से कुछ बात नहीं निकली ।

नवाब मुहँ से चाहे जो कहें लेकिन समाचार सुनतेही बहुत डर गये । थोड़ीही देर सोचने पर उन्होंने सेना को डेरा डण्डा उठा कर बर्दवान की ओर बढ़ने का हुक्म दिया इससे पहिलेही यह सुन चुके थे कि महाराष्ट्र लोग चौथ उगाहने के वास्ते

बङ्गाल में आनेकी चेष्टा करते हैं। लेकिन इस तरह बेकदरी में वे उनपर वार करें गे ऐसा कभी नहीं विचारा था।

नवाब की सेना जल्दी से बर्दवान की ओर चलती हुई। नवाब को मालूम था कि बर्दवान जा पहुँचने पर रसद की कमी नहीं होगी और नगर की ओर पीछा करके उनको रास्ता रोकने में सुभीता होगा। किन्तु छिपगामी अश्वारोही वर्गीगण (१) उनके आने से पहले ही नगर का एक भाग लूट जलाकर खाक कर चुके थे। नवाब की सेनाके आने पर यह लोग कुछ दूर जा खड़े हुए। कई दिन तक सन्मुख संग्राम होने लगा। प्रतिदिन सन्ध्या होने पर दोनों पक्ष के लोग अपने अपने डेरों को लौटते और दूसरे दिन फिर सबेरे लड़ाई में आते थे। दुश्मनों का भावभङ्गी आकार प्रकार और नवाब की तेजस्विता देखकर भास्कर पण्डित ने यही ठीक किया कि लड़ाई नकरके कुछ अर्थ हाथ करना और मान मर्य्यादा से लौट आनाही अच्छा है। अब नवाब के शिविर में कहला भेजा कि मरहठे बहुत दूरसे आये हैं नवाब अतिथिसत्कार स्वरूप दसलाख रुपया देदें तो खुशी से लौट जायेंगे।

नवाब ने इसबात पर राजी होने में हतक समझ कर अपने सेनापति मुस्तफाखाँ की सलाह से उस प्रस्ताव को अस्वीकार किया दो एक दिन पहले की भांति फिर युद्ध होता रहा। बङ्गदेश की सेना मरहठों की लड़ाई का हाल पूरीतरह से नहीं जानती थी। दुश्मनों के अतर्कित आक्रमण से वे लोग चकित होने लगे।

---

(१) वर्गी शब्द की व्युत्पत्ति में मतभेद है। कोई संस्कृत वर्गी कोई फारसी "बागी" (विद्रोही अश्वारोही) से इसकी उत्पत्ति बतलाते हैं। और कुछ लोग "बार गर स्वार्वह." कोप उठा कर इसे महाराष्ट्रों के कन्धे पर रखते हैं।

नवाब ने स्थिर किया कि एक दिन समग्र बल एकत्र करके शत्रुओं पर आक्रमण करें। उसी के अनुसार सेना में बोझा ढोने वाले और नौकरों को जाने की मनाही हुई। सबेरे नवाब आपही घोड़े पर सवार होकर फौज पर कमाण्ड करने लगे। लेकिन उधर शिविर के अनुचर वर्ग दुश्मनों से डर कर नवाब की निषेधता टालकर सेना में शरण लेने लगे। इस कारण उनकी सेना उसभीड़ में निर्बल हो पड़ी।

महाराष्ट्र सेना उसी अवसर की ताक में थी। तुरत चारों ओर से नवाब सेना पर आक्रमण किया। नवाब की सेना भी बड़ी बहादुरी से लड़ने लगी। बहुतेरे मारे गये और घायल हुए। लेकिन वे सिलसिले मार काट से चारों ओर विषमविभ्राट उपस्थित हुआ। इतने में समर भूमि के एक ओर कुछ महाराष्ट्र वीर अलीवर्दीखाँ की बेगम का हाथी घेर कर खड़े हुए। उधर नवाब के मुसाहिबखाँ नामक सुदक्ष सैनिक ने देखा कि बेगम साहबा बन्दिनी हो रही हैं झट वहाँ पहुंचा और जान-झोंपकर उनकी रक्षा की।

अलीवर्दीखां ने देखा कि मुस्तफ़ाखाँ और अन्य अफ़गान सेनापति अच्छी तरह नहीं लड़ते। शिविर का सब माल दुशमनों के हाथ चला गया। सन्ध्या भी सिर पर आपहुंची। अब आगे बढ़ना या पूर्व शिविर में पहुंचना दोनों असम्भव है। इस कारण जहाँ थे वहीं शिविर स्थापन करने को बाध्य हुए। एक छोटा सा-तम्बू और तीन चार शिविका के सिवाय बङ्ग विहार उड़ीसा के नव्वाब को रात काटने के लिये और कुछ आश्रय नहीं मिला। नवाब ने अब महाराष्ट्रों को दस लाख रुपया देने की बात मंजूर करके दूत भेजा। किन्तु भास्कर पण्डित ने घात पाकर एक करोड़ हाँका उधर जब सन्ध्या हो गयी नवाब के अनेक लोग

मरहठों की सेना में जाकर मिलने लगे। सब लोगों में यह बात फैल गयी कि जो पनाह माँगेगा उसीको महाराष्ट्र लोग शरण देंगे।

उस समय नवाब ने एक और तदबीर की। उस अन्धेरी रात के सन्नाटे में अपने प्राणप्रिय बालक सिराजुद्दौला का हाथ पकड़े हुए मुस्तफ़ाखाँ के शिविर में पहुंचे। सोते से उठकर सेनापति ने डरते हुए नवाब का स्वागत सम्भाषण किया। नवाब ने कहा—"बिरादर! गुज़श्ता दो एक कार्रवाइयों से नाराज़ होकर तुम क्यों मेरी बरबादी चाहते हो? देखो मैं सिराज के साथ तुम्हारे सामने हूं इरादा होतो एकही तलवार से हम दोनों का सिर जुदा करो बस ख़तम है। नहीं अगर मेरा कुछ भी एहसान तुम पर हो और साबिक़ दोस्ती से कुछ भी दिल में मेरी भलाई की ओर रग़बत होतो मामूली ग़लती को मुआफ करके सैदाने-जङ्ग में मेरा साथ दो। तुम्हारी मदद से मैं इन बाग़ियो को दबाने की तदबीर का मौका पाऊंगा दुश्मन को अपने लई सुपुर्द कर देने की निस्बत और सब काम मैं अच्छा समझता हूं "(२),,

मुस्तफ़ाखा ने और अफ़गान सिपहसालारों से सलाह करके मालिक के काम में जान तक देने की बात कबूलकी। कहा—"लोग तो कहते हैं कि चालीस तलवार वाले एक राय होजांय तो राज्य छीन सकते हैं। हम लोग तो अभी तीन हज़ार से ऊपर घुड़सवार मौजूद हैं। इंशाअल्लाह काफ़िरों का दांत तोड़ने को कम नहोंगे।,, नवाब ने उस समय दल बल सहित शत्रु सैन्य भेद करके मुर्शिदाबाद की ओर कदम बढ़ाना ठीक किया। उन का मतलब था कि "गंगा पर सुस्ताकर,, सेनाओं को संग्रह करके तो शत्रुओं पर आक्रमण करें।

(२) उड़ीसा की लड़ाई पर नवाब ने और कई अफ़गान सैनिको को छुट्टी दी लेकिन इनको नहीं दी थी।

उधर रात को घात पाकर महाराष्ट्र लोग नब्वाब की सेना को तंग करने लगे। लूट में उन्होंने एक बड़ी तोप पायी थी। उसी को पास के एक पेड़ में लगा कर नब्वाब के नये शिविर पर आग बरसाने लगे। रात भर शिविर से घायलों की आह ऊह और चिल्लाना सुनाई देता रहा। वर्द्धमान के दीवान मानिकचन्द डर के मारे सब लोगों के साथ सबेरे भागने को तैयार हुए थे। रात को महा अन्धकार में नवाब की सेना चारों ओर से घिरगयी। वैरी कहीं कहीं सैन्य श्रेणी भेद कर के आक्रमण करने लगे। बङ्ग सेना भी असम साहस और अमित विक्रम से युद्ध करने लगी। अन्त को मरहठों ने उत्साह हीन होकर लड़ाई से पीठ दिखायी। नब्वाब को सांस लेने की छुट्टी मिली।

पौ फटते ही नब्वाब के हुक्म से फौज दुश्मनों का शिविर तोड़ कर कटोया की ओर बढ़ी। महाराष्ट्रदल पीछेसे उनको तङ्ग करने लगी बङ्ग सेना की बची हुई चीजें भी इस समय दुश्मनों के हाथ थीं। बिना खाये दो तीन हजार सेना भूखे दुर्बल अश्व पर चढ़कर धीरे धीरे आगे बढ़ी। उनके साथ नौकर चाकर और बोझा ढोने वालों को मिलाकर सब पांच हजार आदमी पैदल जाते थे। उधर मरहठों ने चारों ओर से उनको घेर लिया। उनके घोड़े बड़े मिहनती और तेज थे इसी कारण उनके लिये बेखबरी में छापा मारना और हट जाना दोनों सहज था। वर्द्वान से कटोया सत्तरह कोस है। सारी राह लड़ते भिड़ते, रोकने वालों की लगातार चोट सहते, भूख से दुर्बल बङ्गसेना धीरे-धीरे आगे बढ़ी; इतनी विपत पर भी सैनिक कुछ विचलित नहीं हुए। नेता के उत्साह और सेनापति गण के दुर्द्दम विक्रम से खूब उत्साहित हो कर वह लोग रास्ता भर दुश्मनों के साथ लड़ाई करते गये। उनकी बहादुरी देखकर महाराष्ट्र लोगों को डर होने लगा।

अगले दिन सवेरे से सेना के लोगों को आहार नहीं मिला। खाने की सब चीजें दुश्मनों के हाथ थीं। रास्ते के दोनों ओर पांच पांच कोस तक की प्रजा मार काट करने वालों के डर से भाग गयी थी। किसी ओर से खाने की वस्तु पाने का भरोसा नहीं था। इधर बरसात की झड़ी और घास उजार भी पलटाइयों का साथ देकर बङ्ग सेना को अधिक पीड़ित करने लगी। भाग्य से रास्ते के किनारे प्राचीन हिन्दू प्रथा और धर्म व्यवस्थानुसार बड़े बड़े जलाशय मौजूद थे। उनके पहाड़ से ऊंचे भीटों पर बड़े बड़े पेड़ों की कतारें थीं। वह अपने सुन्दर श्यामल लहराते पत्तों की आड़ में आगत पथिकों को छायादान करने के लिये मानो आदर से बुलाते रहते थे। दिन भर की थकी मांदी बङ्ग सेना उन्हीं में से किसी एक पोखरी पर यामिनी यापन करती थी। रात को सेना या अन्य सब कर्मचारी धरती पर बैठ कर पेड़ के पत्ते और घास आदि से अपने पेट की भूख बुझाने और कुछ समय तक नींद की गोद में विश्राम करते थे। नीचे रत्न गर्भा भूमि बिछौने का और ऊपर वर्षा का आकाश ओढ़ने का काम देता था। सेनापति वा और मान्यगण की अवस्था भी साधारण सैनिकों की अवस्था से अच्छी नहीं थी। तम्बू आदि सब सामान शत्रुओं के हाथ होगया था। बहुत कुछ रुपया रहने पर भी खाने को रसद मिलने की कोई तदबीर नहीं थी। धनगर्व गर्वित विलासप्रिय धनी, उमराव लोगों को उस समय अपने सोने रूपे की तुच्छता जान पड़ी थी। पेट को दुःख देकर सब सन्ताप सहने की अपेक्षा और उपाय नहीं था। पेड़ के पत्ते, बकले, और यहां तक कि कीड़े पतङ्गादि भी खाकर बहुतों को अपनी भूख बुझानी पड़ी थी।

तारीख युसुफी के लेखक यूसुफ अलीखां स्वयम् वहां उप-

स्थित थे। उन्होंने अपनी तवारीख़ में सिपाहियों के अपूर्व साहस और सहिष्णुता का बड़ा विवरण लिखा है। कहा है—"बर्द्दवान से कटोया पहुंचने के तीन दिनों मे हम लोगों को बड़ी बड़ी कठिनाइयों से एक बार तीन पाव खिचड़ी मिली थी। नाना प्रकार की चटकदार चरपटी चटनी और तरह तरह की तरकारी सहित नित खाना खाने की आदत रखने वाले हम सात भले आदमियों ने उस खिचड़ी को बांटकर खाया था। और एक दिन गिनेहुए सात बकरपाले (एक तरह की मिठाई) पाये थे। तीसरे दिन मरे जानवर का आध सेर मास मिला था। हम पिछली सन्ध्या को खाती बेर कई आदमी एक एक ग्रास लेने के लिये दाँत काढ़ते हुए आपहुँचे थे। हम लोग उनको दिये विना नहीं रह सके "।

इसी प्रकार अतिक्लेशसे भूख के मारे प्राय पागल बङ्ग सेना लड़ाई करती हुई आगे बढ़ी। सब तोपें दुश्मनों के हाथ थीं। दुश्मनों की सेना ने चारों ओर से घेर लिया था। लेकिन तौ भी इतनी दूर पर थी कि बङ्गाल सेना की गोली उनको छू नहीं सकती थी। घात पाकर दुश्मन उन पर चोट करते थे। उस समय बङ्गाल सेना की अवस्था स्वयम कल्पना करने योग्य है वर्णन के योग्य नहीं।

एक दिन सेनापति मुस्तफ़ाखांने देखा कि सामने महाराष्ट्रों की सेना का एक दल हथियार छोड़कर आन्हिक कर्म और आहार के आयोजन में लगा था उनको यह सपने में भी शङ्का नहीं थी कि बङ्गाल की अन्न बिना भूखी प्रजा उन पर आक्रमण करने का साहस करेगी। बस इतने में सेनापति की ललकार से सब सेना नङ्गी तलवार लिये हुए बड़े वेग से उन पर टूट पड़ी। बाघ की तरह टूटते हुए उन सैनिकों को देख कर महा-

राष्ट्र सेना सब जहां की तहां छोड़ कर भागती हुई । बस बङ्ग सेनाने उन्हीं भागी हुई महाराष्ट्र सेना का छोड़ा हुआ आहार भोजन करके कुछ बल पाया । उसके बाद तो दुश्मनों की सेना सावधान हो गयी । नब्वाब की फौज काया क्लेश पाती हुई आगे बढ़ी ।

तीसरे दिन रोशनी लगते ही महाराष्ट्र सेना ने एक व एक चारों ओर से आक्रमण किया। बङ्ग सेना अभी लड़ाई के लिये तैयार नहीं हो सकी थी न नब्वाब हाथी पर बैठनेही पाये थे कि उन्होंने महा संग्राम करना आरम्भ कर दिया। इस कारण सेना का एक होकर रीत्यनुसार युद्ध करना असम्भव हुआ । जो जहाँ था वहीं वह अपनी जान बचाने लगा। इस समय एक ऐसी घटना से नबाब अलीवर्दीखाँ की जान बची जिस के होने की आशातक नहीं थी। नबाब के हाथी के सामने झण्डा (पताका) और साज सामान ले चलने के वास्ते सजे सजाये दो हाथी रहते थे। उनके बड़े बड़े दांतों में एक एक बड़ी सांकल लगी रहती थी । चलते समय वह उसी सांकल की आवाज़ करते हुए नब्वाब के हाथी से आगे आगे चलते थे। नब्वाब पर वैरियों के आक्रमण करते ही वह दोनों हाथी चारों ओर से अपरिचितों की भीड़ देखकर बिगड़ खड़े हुए और ज़ोर से सांकल घुमाने लगे उन्हो की चोट से अनेक शत्रु सेना घायल वा मृतक होकर भूपतित होने लगी । नब्वाब की सेना को आगे बढ़ने का अवसर मिला। बस बङ्ग सेना को क्रुद्ध होकर सन्मुख युद्ध आरम्भ करते देख महाराष्ट्र सैनिकों को मैदान से भागते देर नहीं लगी ।

इसी तरह बड़ी बड़ी दुर्गति सहकर अनेक बाधा विघ्न अतिक्रम करके नब्वाब की सेना तीन दिन में काटोया पहुँची। लेकिन वैरी पहलेही कटोया पहुँच कर नगर लूट चुके थे । आग

लगाकर कटोया का अन्न भाण्डार खाली कर चुके थे। निराहार से पीड़ित अवसरी बङ्ग सेना उसी जले हुए भातकी को अमृत के समान मीठा जान कर पेट भर खाया और उसी पर सन्तोष कर के विपत काटी।

राष्ट्रभाषा।

(१)

यह पुस्तक पं० वामन पेठे ने मराठी भाषा में लिखी है उसका अनुवाद हिन्दी भाषा में पं० गंगा प्रसाद अग्निहोत्री जी ने किया है और वही उक्त नाम से काशी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा प्रकाशित हुआ है। कागज और छपाई बुरी नहीं है। अनुमानतः मूल्य चार आना होगा. टाइटिल पेज पर मूल्य और पता का उल्लेख नहीं है इससे साधारण पाठकों को चिट्ठी आदि भेजने में गड़बड़ाहट मालूम होगी. मैं जहाँ तक समझता हूँ यह पुस्तक का० ना० प्र० सभा के द्वारा विक्रीत होती है वहीं ग्राहकों को चिट्ठी भेजनी चाहिये.

(२)

मूल पुस्तक की प्रशंसा बम्बई के पचीसों समाचार पत्र और पं० बालगंगाधर तिलक प्रभृति अनेक विद्वानों ने की है इससे अनूदित पुस्तक भी प्रशंसनीय हो सकती है यद्यपि अनुवाद करने में त्रुटियां नहीं की गयी हों. मेरे सामने मूल पुस्तक नहीं है परन्तु अग्निहोत्री जी की विद्वत्ता और विज्ञता के भरोसे यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अनुवाद अच्छा हुआ है. पुस्तक का

विषय गंभीर न्यायानुगत है और मुहाविरे भी बिगड़ने नहीं पाये हैं इस से सोने मे सुगन्ध हो गयी है .

ग्रन्थकार ने इस पुस्तक में अपने अभीष्ट विषय के प्रदर्श करने के लिये चार प्रश्न उत्थापित किये हैं :—

(१) राष्टीयता के लिये एक भाषा की कितन ी आवश्यकता है और उस का समाज पर क्या परिणाम होता है ?

(२) कौनसी भाषा का एक भाषा (राष्ट्र भाषा) होना सम्भव है ?

(३) उसके सम्पादन में कठिनाइयां कौन २ सी हैं ?

(४) शासक तथा जन समाज का इस विषय में क्या कर्त्तव्य है.

इन प्रश्नों पर भली भाँति बिचार करके ग्रन्थ कारने अपना सिद्धान्त यह प्रकटित किया है कि हिन्दी को बहुत लोग बोलते और जानते है इसकी वर्णमाला पूर्ण और सुपाठ्य है अतएव यह शीघ्र सभी को आजाती है . राजा और प्रजा को उचित है कि इस भारत वर्ष मे वे हिन्दी को राष्ट भाषा बनावे क्योंकि विना एक भाषा हुए इस राष्ट्र का कल्याण नहीं होगा . भारत वर्षके प्रत्येक प्रान्त में हिन्दी भाषा का प्रचार होने से बँगला आदि भाषाएँ नष्ट हो जायँगी अथवा येही व्याघतक हैं फिर हिन्दी कैसे राष्ट्र भाषा हो सकती है ? ग्रथकारने इस विरोध का यों परिहार किया है कि गुजराती और मराठी को वर्णमाला नागरी की सी ही है . शेष भाषाएँ भी पहले नागराक्षरों में लिखी जावें त्रे धीरे २ संस्कृत शब्दों के द्वारा आपस में मिल जुल कर हिन्दी को प्रधान भाषा बना लेंगी क्योंकि हिन्दुस्तान मे हिन्दोही का प्रभाव अधिक है . रही नष्ट होने की बात सो ठीक नहीं . जब कई छोटे २ पदार्थ किसी बड़ी वस्तु का आश्रय कर संसार का उपकार करने लगनें हैं तब उसे उन्नति कहते हैं न

कि नष्ट होना, इस प्रकार से हिन्दी भाषा के विशेष परि वर्तन का भय किया जा सकता है किन्तु यह परिवर्तन उपकारक और आनन्द दायक है, प्रायः प्रत्येक भाषा के रूप का परिवर्तन हुआ करता है और हुआ करेगा इत्यादि।

पुस्तक का आशय बड़ा परिष्कृत और गम्भीर है, बंगाल के छोटे लाट उडवर्न साहब बहादुर ने किसी बंगभाषा परिषद् में कहा था कि यदि बंग भाषा नागराक्षरों में लिखी जाय तो इसकी शोभा दूनी हो जाय।

पृथ्वी राज रायसा और भारत सौभाग्य की भाषा मे कितना अन्तर है? किन्तु इससे कोई हानि नहीं होती एक जब दूसरे की भाषा नहीं समझता तब कभी २ मार पीट हो जाती है अथवा दोनों को बड़ी हानियां उठानी पड़ती हैं हिन्दी के राष्ट्र भाषा होने से यह विपद् दूर हो जायँगी।

बहुत से अङ्गरेज एक राष्ट्रीयता दृढ़ करने के लिये रोमन अक्षरों का प्रचार करना चाहते हैं उन्हें भी मुह तोड़ उत्तर पुस्तक की टिप्पणी में दिया गया है कि रोमन में परिमिताक्षर से परिमित वाक्य नहीं लिखे जाते अथवा जैसा उच्चारण किया जाता है वैसा नहीं लिखा जाता इत्यादि ग्रन्थ कारने इस बात की ओर भारत वासियों का ध्यान विशेष आकृष्ट किया है कि सभाओं में व्याख्यान हिन्दी भाषा में होना चहिये।

विना भाषा की ऐक्यता हुए जातीय ऐक्यता नहीं हो सकती और जातीय ऐक्यता सम्पादन किये विना जातीय महा सभा (नेशनल कौंग्रेस) कुछ नहीं कर सकती इस अभिप्राय से इसके लिये उक्त पुस्तक में यह सम्मति उपन्यस्त की गयी है कि सभ्यों को (डेलिगेटों को) हिन्दी का ज्ञान अवश्य होना चाहिये। सुनते हैं कि "आरा नागरी प्रचारिणी सभा" के मासिक अधिवेशन

में उसके किसी सभासद्ने एक पाण्डु लिपि प्रस्तुत की थी की वह सभा से अङ्गीकृत होकर अहमदाबाद के नेशनल कांग्रेस में भेजी जाय उसमें यह बात लिखी हुई थी कि सभा का व्याख्यान और पत्रादि व्यवहार हिन्दी भाषा में होना चाहिये तथा "इंडिया" पत्र के स्थान में हिन्दी का कोई पत्र प्रकाशित होना उचित है अथवा वर्त्तमान किसी हिन्दी पत्र को सहायता से पुष्ट कर अपने ढंग पर कर लेना चाहिये इत्यादि । न जाने इस प्रस्ताव को सभाने क्यों अनादृत किया ? ।

पुस्तक में गुण इतना है कि सभों का उल्लेख करना कठिन है।

(३)

इस पुस्तक में जो दोष रह गये हैं उनके भोगी तीन हैं मूल ग्रन्थकार, अनुवादक और प्रकाशक इनमें से प्रथम पुरुष विषय गत दोषों के भागी हैं। मूल ग्रन्थ के अनुचित स्थलों पर टिप्पणी नहीं लिखने के कारण दूसरा अनुगन्ता हुआ तब तीसरे प्रकाशक के ऊपर सब से अधिक उत्तर दायित्व है क्योंकि उसीके प्रयत्न से पाठकों को हानि उठानी पड़ी। अर्थात् विषयगत दोषोंमें तीनों की अनवधानता है । शेष दोषों का उत्तर दायित्व पृथक् २ एक २ पर है ।

वर्त्तमान आर्य भाषाओं का उद्भव संस्कृत से हुआ है यह लोगों का अनुमान युक्ति सङ्गत नहीं बोध होता । प्राकृत शब्द मूल वाचक प्रकृति शब्द से हुआ है । भाषाएं संस्कृत के पूर्व थीं संस्कृत की समकालीन थी और उसके अनन्तर भी हैं । मनुष्य को जब से वाणी का संस्कार हुआ तब से उसकी स्थिति है (१४ । पृ०)

वर्त्तमान आर्य्य भाषाओं की उत्पत्ति प्राकृत से है परन्तु प्राकृत की उत्पत्ति किसी से नहीं है वह मूल भाषा है यह बात

प्रमाण शून्य है। लोग प्रकृति का अर्थ मूल करते हैं उससे अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहते हैं किन्तु प्रकृति का अर्थ मूल किसी कोष में नहीं (प्रकृति गुण साम्यं स्यादमात्यादि स्वभावयोः। योनौ लिङ्गे पौरवर्गे–इतिमेदिनी) लिखा है।

गुणत्रय साम्यावस्था को भी प्रकृति कहते हैं उसका विशेषण मूल शब्द (मूल प्रकृतिर विकृतिरिति सांख्य कारिका) दिखायी पड़ती है अतएव सृष्टि के निदान को किसी २ प्रकार गौणी वृत्ति से मूलवाचक प्रकृति कह सकते हैं नकि सामान्य रूप से सभी प्रकृति को।

संस्कृत का "प्राकृत" शब्दही कह रहा है यह भाषा संस्कृत के पूर्व नहीं थी क्योंकि यदि यह पूर्व होती तो इसका नाम संस्कृत शब्द से बना हुआ प्राकृत नहीं होता दूसरा कुछ होता। इसके भेद जो शौर सेनी और मागधी इत्यादि हैं वे भी संस्कृत के शूर सेन और मगध इत्यादिक से बने हुए हैं।

प्राकृत व्याकरण के बनाने वाले इसे संस्कृतही से निकला मानते हैं और उसी शैली से उन्होंने इसका व्याकरण बनाया है।

पतञ्जलि जी ने महाभाष्य में लिखा है कि केवल एक गो शब्द का (एकैकस्य गो शब्दस्य वहवो ऽपभ्रंशाः। तद् यथा गौ रित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता गोपोतलिकेत्येवमादयो ऽपभ्रंशा इति महाभाष्यम्) गावी, गोणी, गोता और गोपोतलिका इत्यादि अपभ्रंश हैं और जो प्राकृत में मिलते हैं अर्थात् संस्कृत के अपभ्रंश से प्राकृत की उत्पत्ति है।

सच पूछिये तो प्राकृत शब्दोंमें शब्दत्व नहीं उनका नाम अप शब्द (भूयांसोऽपशब्दाः..........गावी इत्यादि महाभाष्यम्) है। अर्थात् संस्कृत में शब्द व्यवहार और उसके अपभ्रंश प्राकृत में अप शब्द व्यवहार सिद्ध है अतएव "प्राकृत" मूल भाषा नहीं हो सकती।

अप शब्द भाषाओं के "प्राकृत" नाम होने का कारण यह है कि प्रकृति पौरवर्ग अर्थात् प्रजाओं को कहते हैं उनमें सबकोई अनादि संस्कृत भाषा का उच्चारण नहीं कर सकते थे अतएव उसे बिगाड़ कर बोलने लगे वही प्राकृत अर्थात प्रजा की भाषा हुई। इसका अर्थ मूल भाषा नहीं है तथा यह संस्कृत के पहले नहीं थी। जो लोग संस्कृत का शुद्ध उच्चारण कर सकते थे उन की भाषा प्राकृत की उत्पत्ति के समय में भी संस्कृतही रही। इसी से नाटकों में उच्चपात्र की भाषा संस्कृतही रहती है।

"आर्य लोगों के समूह एक के पश्चात् दूसरे इस देश में आये और जहां तहां वासस्थिर किया उनमें स्थल और काल के कारण भेद पड़ता चला गया" (१४ पृ०)

समय का हेर फेर है अब हम कोई न रहे। जिसके जी में जो बात आती है वह हमारे विषय में कहता है और हम उसे बिना जीभ हिलाये मान लेते हैं योरप निवासी कहते हैं कि आर्य भारत वर्ष के प्राचीन निवासी नहीं हैं उनके पूर्वज मांस खाते और मद्य-पीते थे। उनकी अपनी कोई भाषा नहीं थी, अनार्यों की भाषा (प्राकृत) को काट छांट कर शुद्ध संस्कृत बनाया (अर्थात् पहले गूंगे थे) इत्यादि। जिस जाति में अपने स्वत्व का विचार नहीं होता वह पद दलित होकर बिना युक्ति और प्रमाण के दूसरों की बात मान लेती है यही कारण है कि इस पुस्तक में ग्रन्थकारने उपर्युक्त बात लिखी है।

(१) यदि आर्य्य लोग यहाँ के निवासी नहीं हैं तो इस देश का नाम उनके आनेके पहले क्या था?

(२) जिस देश को जीतकर मनुष्य अपना वासस्थान बनाता है उस देश की निन्दा और अपने देश की प्रशंसा करता है यह एक स्वाभाविक बात है जो इस समय भी देखी जाती है आर्य

लोगोंने उसके विरुद्ध अपनी पुस्तकों में इसकी प्रशंसा क्यों लिखी है ?

(३) यहाँ आर्य्यों का बाहर से आना एक बड़ी भारी ऐतिहासिक बात है इसका वर्णन किसी आर्य्य पुस्तक अथवा किंम्वदन्ती में क्यों नहीं मिलता ?

(४) भारत समीपवर्त्ती किसी दूसरे ऐतिहासिक ने इस विषय में अपना सन्देह ही क्यों नहीं प्रगट किया ? इत्यादि अनेक बातें अङ्गरेजी ऐतिहासिकों की बात पर विश्वास करने से रोकती हैं ।

जिन कारणों से आर्य्य लोग दूसरे देश के निवासी समझे जाते हैं वेही कारण यह बात सिद्ध करते हैं कि आर्य्य लोग यहां से बाहर गये थे । मनुस्मृति में भी लिखा है कि इस देश के बहुत से क्षत्रिय दूसरे देशों में जाकर म्लेच्छ हो गये । पुरातत्वानुसन्धानकारी योरप निवासी मे० टौन साहब ने भी आर्य्यों को आदि भारत निवासी स्थिर किया है ।

"वैदिक काल के लोगोंने परमेश्वर की स्तुति की भाषा में अशुद्धता न रहने पावे इस अभिप्राय से तत्कालीन उत्तमोत्तम शब्द और धातु चुन कर संस्कृत भाषा को धार्म्मिक भाषा बना लिया और संस्कृत का अर्थ भी " उत्तम प्रकार से किया हुआ है " (१४ पृ०)

ग्रन्थकार के मन का उफान अब बाहर की ओर चला आया वे जो कहना चाहते थे उसे उन्होंने कह डाला । किसी बात को सहसा कहना ठीक नहीं अतएव डरते थे धीरे २ सब अभिप्राय उनका प्रादुर्भूत होही गया । संस्कृत की उत्पत्ति प्राकृत से में इस के धातु चुनकर संस्कृत भाषा बनायी गयी तथा वह धार्म्मिक भाषा हुई उस नवीन भाषा में लोगों ने वेद बना डाले । क्या खूब ! काशी नागरीप्रचारिणी सभाने अच्छी पुस्तक प्रकाशित की ।

क्या उसके सभासद् महा महोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी तथा महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार मिश्र शास्त्री जी भी इस पुस्तक की बातों को मानते हैं ? वे चाहे मानें अथवा न मानें । सभाने अपने नियम विरुद्ध कार्य्य किया । किसी धार्म्मिक विषय पर अपना विचार प्रगट करना उसका काम नहीं है। पढ़े लिखे लोगों के सन्मुख यह हास्यास्पद कार्य्य है । मैं उसका यथार्थ हितैषीहूँ इसी कारण मैंने इतनी बात कहदी ।

संस्कृत का अर्थ "उत्तम प्रकार से किया" यह व्यापक नहीं है कहीं २ पर संस्कृत शब्द का भक्ष्य पदार्थादि कों के साथ ऐसा अर्थ होता है सर्वत्र नहीं संस्कृत शब्द का व्यापक अर्थ भूषित अर्थात् सुन्दर है यह बात सिद्धान्त कौमुदी और परिभाषेन्दु शेखर (सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे.................. क्वचिद् भूषणेऽपि सुट् संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकादिति कौमुदी । ज्ञापक सिद्धं न सर्वत्रेति परिभाषेन्दु शेखरम्) से स्पष्ट रूप से मालूम हो जाते है । सो संस्कृत भाषा का अर्थ हुआसुन्दर भाषा सब से सुन्दर ईश्वर है उसी की यह भाषा भी सुन्दर है अतएव इसका दूसरा नाम देववाणी भी प्रचलित है । सृष्टि के आदि में सब बड़े लोग उसी पवित्र ईश्वरीय भाषा को किसी न किसी प्रकार बोलते थे परपूर्ण रीति से नहीं बोल सकते थे उससे बिगड़ते २ लौकिक शब्द उत्पन्न हुए । महाभाष्य कारने भी संस्कृत शब्दों के दो भेद (केषां शब्दानां लौकिकानां वैदिकानाञ्चेति महाभाष्यम्) माने हैं लौकिक और वैदिक अर्थात् संस्कृत स्वभावही से सुन्दर है । इसका किसी ने संस्कार नहीं किया न यह किसी दूसरी भाषा से निकली है बल्कि यही सब भाषाओं की माता है ।

"इसी लाग पर गौतम बुद्ध और जैनने हिन्दूधर्म में हेर फेर किया उनकी भाषाएँ प्राकृत थीं" (१४ पृ०)

किस स्थान पर हेर फेर हुआ ? साफ़ लिखना उचित था जैन क्या किसी सम्प्रदाय प्रवर्त्तक आचार्य्य का नाम है ? मेरी समझ से जैनी महाशयों के चौबीस तीर्थङ्करों में से किसी का नाम जैन नहीं है। यदि सम्प्रदाय के लिये यहाँ जैन शब्द प्रयुक्त हुआ है तो जैनी लिखना चाहिये क्योंकि ऐसाही लिखने की परिपाटी है।

आर्य्य और गौतमबुद्धादिकों में भाषा सम्बन्धी कोई वैरभाव नहीं था। वे आर्य्यों की यज्ञीय हिंसादिकों से रुष्ट हो कर उनसे पृथक् हुए। उन महात्माओं के प्राकृत में उपदेश करने का कारण यह है कि उस समय के लोगों की रुचि प्राकृत की ओर अधिक थी। यह बात स्वभाव सिद्ध है कि नयी बातों की ओर सर्व साधारण का खिचाव हो जाता है इसी से प्राकृत ने सब को मोहित कर लिया। कोई कोई कहते हैं कि इस स्वाभाविक खिचावही के कारण इस का नाम स्वाभाविक अर्थात् प्राकृत पड़ा इत्यादि।

इस ग्रन्थ के अन्य दोष सह्य हैं अथवा उन से किसी का हानि होने की सम्भावना नहीं है अतएव उनका उल्लेख करना मैं अनुचित समझता हूं।

(४)

पुस्तक उत्तम श्रेणी की है। इसमें गुण अधिक और दोष थोड़े हैं। हिन्दी रसिकों को उचित है कि इस पुस्तक को क्रय करके वे अवश्य पढ़ें। आशा है कि वे अवश्य लाभ उठावेंगे। इस ढङ्ग की दूसरी पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। मैं इसके गुणों पर मोहित हो कर रचयिता, अनुवादक और प्रकाशक को धन्यवाद देताहूँ।

लक्ष्मीनारायण पाण्डेय

सूचना ।

समालोचक प्रयाग में छपता है । और प्रयाग में प्लेग ने इस साल ऐसा उपद्रव किया कि अनेक काम काजी लोगों को नगर छोड़ कर भाग जाना पड़ा । इसी प्रकार धार्मिक प्रेस में कई तरह की गड़बड़ी होने से काम में अनेक तरह की अड़चन आ पड़ी जिससे समालोचक के अङ्क ठीक समय पर नहीं निकल सके ।

जनवरी और फरवरी का अङ्क आज ग्राहकों की सेवा में जाता है मार्च अप्रैल और मई का अङ्क भी इसी मई में ग्राहकों का पहुंचे गा ।

फिर तो हर महीने का समालोचक ठीक अन्तिम सप्ताह में पहुँचता रहे गा ।

मेनेजर

समालोचक

मासिक पत्र ।

सम्पादक ।

बाबू गोपालराम गहमरनिवासी ।

वर्ष १ला	मार्च, अप्रैल, मई, १९०३	अङ्क ८, ९, १०

मुद्रित विषय ।

प्रोप्राइटर और प्रकाशक ।

श्रीयुत मि॰ जैनवैद्य जौहरी बाजार जयपुर ।

Chandraprabha Press, Benares City.

नियमावली ।

१—" समालोचक " हर अङ्गरेज़ी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करता है ॥

२—दाम इसका सालाना १॥) है, साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा न =) का टिकट भेजे बिना नमूना पा सकेगा ॥

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी; कोई विज्ञापन बिना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा ॥

४—आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी. किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी जो समालोचना न्याय पूर्ण और पक्षपात शून्य होगा वही छापी जायगी ॥

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा ॥ जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होंगी उसके प्रचार का उचित प्रयत्न किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसा पत्र व पुरस्कार प्रदानादि से भी उत्साहित किया जायगा ॥

६—जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होती है वही छापी जाती है समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझनी चाहिये ॥

७—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाज़ीपुर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र विज्ञापन के मामिले की चिट्ठी पत्री सब समलोचक के मेनेजर मिस्टर जैनवैद्य (जौहरी बाज़ार जयपुर) के पते पर भेजना चाहिये ॥

मैनेजर ।

नेशन क्या है ?

(रेनाँ का मत)

"नेशन क्या है" सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारवान रेनाँ ने इस प्रश्न की आलोचना की है। किंतु इस सम्बन्ध में उन के मत की व्याख्या करने से पहले दो एक शब्दों का अर्थ ठीक कर लेना होगा।

स्वीकार करना होगा कि हिन्दी में "नेशन" का प्रति-शब्द नहीं है। हमारे यहां प्रचलित भाषा में ज़ाति कहने से वर्ण समझा जाता है। और अङ्गरेज़ी में जिसको रेस (race) कहते हैं वह भी समझा जाता है। हम ज़ाति शब्द अङ्गरेज़ी रेस शब्द का प्रति शब्दही व्यवहार करेंगे। और नेशन को नेशनही कहेंगे। नेशन और नेशनल शब्द हिन्दी में चलने से अर्थ और भावों को मतभेद से रिहाई मिलेगी॥

नेशनल कांग्रेस शब्द का तरजुमा करने में हम लोग "जातीय महा सभा" शब्द व्यवहार करते हैं किन्तु जातीय कहने से बङ्गाली जातीय, महाराष्ट्र जातीय, सिख जातीय आदि जब जातीय समझा जा सकता है। भारतवर्ष का सर्व जातीय नहीं समझा जाता। मन्द्राज, और बम्बई वाले नेशल शब्द का अनुवाद करने में जाति शब्द का व्यवहार नहीं करते। उन्हों ने स्थानीय नेशल सभा को महाजन सभा और सार्वजनिक सभा नाम दिया है। बङ्गाल वालों ने

और कुछ चेष्टा न करके "इण्डियन एसोसियेशन" नाम से काम चलाया है। इन बातों से उपर्य्युक्त जातियों के साथ परस्पर प्रभेद लक्षित होता है। वह प्रभेद बङ्गालियों के आन्तरिक नेशनत्व की दुर्बलता प्रमाणित करता है॥

महाजन शब्द हिन्दी में व्यौपार के कारवार को उचित रूप से चलानेवाले के लिये व्यौहार होता है। "सार्व जनिक" शब्द विशेष्य के रूप में नेशन शब्द का प्रति शब्द नहीं किया जा सकता। "फ्रांसीसी सर्व जन" फ्रांसीसी नेशन शब्द के स्थान में सङ्गत नही जान पड़ता॥

महाजन शब्द को छोड कर महाजाति शब्द लिया जा सकता है किन्तु 'महत्' शब्द महत्व सूचक विशेषण के रूप में बहुत जगह नेशन शब्द के पहले आवश्यक हो सकता है। वैसे स्थान में "ग्रेट नेशन" कहने से महती महाजाति कहना होगा और उसका उलटा समझाने के वास्ते क्षुद्र-महाजाति कहने से हास्यास्पद होगा॥

किन्तु नेशन शब्द को अविकृत आकार में ग्रहण करने से हमारा काम चल जायगा। भाव भी विलायती है नाम भी विलायती सही। उपनिषद् का ब्रह्म शङ्कर का माया और बुद्ध का निर्वाण शब्द अङ्गरेज़ी में प्रायः भाषान्तरित नहीं होता और होना उचित भी नही है।

रेनाँ कहते हैं प्राचीन काल में "नेशन" नहीं था। इजिप्ट चीन, प्राचीन कोल्डेडिया नेशन नहीं जानते थे। आसिरीय, पारसिक और अलक्ज़ण्डर का साम्राज्य किसी नेशन का साम्राज्य नहीं कहलाता॥

रोम साम्राज्य नेशन के निकट पहुँचा था किन्तु सम्पूर्ण नेशन बांधने से पहलेही बर्ब्बर जाति के धक्के से टूट कर टुकड़े टुकड़े हो गया वही टुकड़े कई सदियों तक कई प्रकार के सयोग और मेलजोल से होते होते नेशन बन गये हैं और फ्रांस, इङ्गलैण्ड, जर्मनी और रशिया सब नेशनों में शीर्षस्थानीय हो रहे हैं ॥

किन्तु यह लोग नेशन क्यों कहलाये? स्वीटज़लैंण्ड अपनी विविध जाति और भाषा को लेकर नेशन क्यों हुआ। आस्ट्रिया क्यों राज्यही रहा नेशन नहीं हुआ?

कोई कोई राष्ट्रतत्वज्ञाता कहते हैं नेशन का मूल राजा है। किसी विजयी वीर ने प्राचीन काल में लड़ाई करके कोई देश जीता और देश के लोग कालक्रम से उस बात को भूल गये। उसी राजवंश ने केन्द्र रूप होकर नेशन को पक्का कर दिया। इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड, और आयर्लैण्ड पहले एक नही थे उनके एक होने का कारण भी नहीं था। राजा के प्रताप से क्रमशः वह एक हो गये हैं। नेशन होने में इटली को इतना विलम्ब इसी कारण हुआ कि उसके अनेक छोटे छोटे राजाओं में कोई एक मध्यवर्त्ती हो कर सारे देश में ऐक्य विस्तार नहीं कर सका ॥

किन्तु यह नियम सब जगह नहीं चला जो स्वीज़रलैण्ड और अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स क्रमशः संयोग साधन करते करते बड़े हुए हैं उनको तो राजवंश की सहायता नही मिली ॥

राजशक्ति नही है और नेशन है। राजशक्ति ध्वंस हो

गयी नेशन मौजूद है यह दृष्टान्त प्रगट है। राजा का अधिकार सब अधिकारों से ऊँचा है यह बात इन दिनों प्रचलित नहीं है। अब यही स्थिर हुआ है कि नेश्नल अधिकार राजकीय अधिकार के ऊपर है इस नेश्नल अधिकार की भित्ति क्या है और किस लक्षण से वह पहचाना जाता है।

बहुतेरे कहते हैं जाति अर्थात् race का ऐक्यही उसका लक्षण है। राजा, उपराज और राष्ट्र सभा कृत्रिम और और अध्रुव हैं। जाति सदा रहती है उसी का अधिकार असल अधिकार है॥

किन्तु जाति मिश्रण नहीं हुआ यूरोप में ऐसा देश नहीं हैं। इङ्गलैण्ड फ्रांस, जर्मनी, इटली कहीं भी विशुद्ध जाति खोजे नहीं मिलती, यह सब जानते हैं। कौन ट्यूटन और कौन केल्ट है इस समय इस की मीमांसा करना असम्भव है। राष्ट्र नीति तंत्र में जाति विशुद्धि को कोई नहीं पूछता। राष्ट्र तंत्र के विधान से जो जाति एक थी वह भिन्न भिन्न होगई और जो भिन्न भिन्न थी वह एक हो गयी हैं॥

भाषा के सम्बन्ध में भी यही बात है। भाषा का ऐक्य नेश्नल ऐक्य बन्धन की सहायता करता है। इसमें सन्देह नहीं है। किन्तु उससे एक होवेहीगा ऐसा नहीं है। यूनाइटेड स्टेट्स और इङ्गलैंड की भाषा एक है स्पेन, स्पेनवालों के अमेरिका (अमेरिका का जो भाग स्पेन का है उस) की भाषा एक है किंतु वह लोग एक नेशन नहीं हैं। स्वीजर्लैण्ड में तीन चार भाषा हैं। तौ भी वहां एक नेशन है। भाषा की अपेक्षा मनुष्य की इच्छा शक्ति बड़ी है भाषा की

भिन्नता होते भी समस्त स्वीज़र्लैन्ड की इच्छा शक्ति ने उसको एक किया है ॥

इसके सिवाय भाषा से जाति का परिचय पाया जाता है यह बात भी ठीक नहीं है। प्रूसिया के लोग आज जर्मन बोलते हैं कई सदी पहले स्लावोनिक बोलते थे। वेल्स अङ्गरेज़ी व्यवहार करते हैं। इजिप्ट अरबी ज़बान में बात करते हैं ॥

नेशन धर्म्म और मत का ऐक्य भी नहीं मानता व्यक्ति विशेष कैथलिक हो या प्रोटिस्टेण्ट, यहूदी हो वा नास्तिक जो हो किसी को अंगरेज फ्रांसीसी वा जर्मन होने में बाधा नहीं होगी ॥

वैषयिक स्वार्थ का बन्धन दृढ़ बन्धन है इसमें सन्देह नहीं है किन्तु रेनॉ के मत से वह बन्धन नेशन बांधने के लिये यथेष्ट नहीं है। वैषयिक स्वार्थ महाजन की पञ्चायत गठन कर सकती है किन्तु नेशनलत्व में भाव का स्थान है। उसको जैसे देह है वैसे ही अन्तःकरण का अभाव भी नहीं है। महाजनपाँती को ठीक मरूभूमि कोई नहीं समझता ॥

भौगोलिक अर्थात् प्राकृतिक सीमा भाग नेशन की भिन्नता का एक प्रधान हेतु है यह बात सब स्वीकार करेंगे। नदी स्रोत जाति को वहां ले गया है किन्तु पर्व्वत उसको रोके हुए है। तौ भी कोई नक्शा उतार कर नहीं दिखा सकता कि कहां तक किस नेशन का अधिकार उचित है। मानव के इतिहास में प्राकृतिक सीमा कुछ काम की वस्तु नहीं है। भूमण्डल पर जाति और भाषा नेशन का गठन नहीं करती। भूमण्डल पर युद्धक्षेत्र और कर्म क्षेत्र का पत्तन

हो सकता है किन्तु नेशन का अन्तःकरण भूखण्ड से सीमा बद्ध नहीं है। जनसम्प्रदाय कहने से जो पवित्र पदार्थ समझा जाता है मनुष्य ही उसका श्रेष्ठ उपकरण है। सुगभीर ऐतिहासिक मन्थन से पैदा हुआ नेशन एक मानसिक पदार्थ है। वह एक मानसिक भूखण्ड की आकृति से आबद्ध नहीं है॥

भावार्थ यह कि जाति, भाषा, वैषयिक स्वार्थ धर्म्म के ऐक्य और भौगोलिक संस्थान, नेशन नामक मानस पदार्थ है सृजन करने का मूल उपादान नहीं हैं तो उसका मूल उपादान क्या है?

नेशन एक सजीव सत्ता एक मानस पदार्थ है। दो वस्तुओं से इस पदार्थ की अन्तः प्रकृति गठित हुई है। वह दोनों वस्तुतः एकही हैं। उनमें से एक सर्वसाधारण की प्राचीन स्मृति की सम्पत्ति है और एक है परस्पर की सम्मति, एकत्र वास करने की इच्छा। नेशन सुदीर्घ अतीत काल के प्रयास, त्याग स्वीकार और निष्ठा से व्यक्त होता है। हम लोग अपने पूर्व्व पुरुषों के द्वारा पहले से ही बहुत कुछ गठित हो आये है। अतीतकाल के वीर्य्य, महत्व, और कीर्ति पर ही नेशनल भाव पड़ा है। अतीतकाल के सर्व साधारण का एक गौरव और वर्त्तमान काल के सर्व साधारण की एक इच्छा, पहले एकत्र होकर कोई बड़ा काम करना और फिर उसी प्रकार एकत्र होकर काम करने का सङ्कल्प, यही जन सम्प्रदाय के गठन का मूल है॥

अतीतकाल की गौरवमय स्मृति और उस स्मृति के अनुरूप भविष्य का आदर्श, एकत्र होकर दुःख पाना, आनन्द

करना, आशा करना यही सब असल चीज़ें हैं। जाति और भाषा की विचित्रता होते भी इन सब का माहात्म्य समझा जाता है। एकत्र दुःख पाने की बात इसी लिये कही गयी कि आनन्द से दुःख का बन्धन दृढ़ है॥

अतीतकाल में सब का मिलकर त्याग दुःख स्वीकार करना और फिर उसीके लिये सब को मिलकर तैयार रहने का भाव जो सर्वसाधारण को एक एकीभूत निविड़ अभि-व्यक्ति दान करता है वही नेशन है। उसके एक पृष्ट पर अतीत लगा होता है किन्तु उसका प्रत्यक्ष सभ्य लक्षण वर्त्तमान में मिलता है। वह और कुछ नहीं है केवल-सब की सम्मति, सब के मिलकर एक जीवन वहन करने की सुस्पष्ट इच्छा है॥

रेनॉ कहते हैं कि हम लोगों ने, राष्ट्रतंत्र से राजा का अधिकार और धर्म्म का आधिपत्य निकाल डाला तब रहा क्या मनुष्य, मनुष्य की इच्छा और मनुष्य का प्रयोजन। बहुतेरे कहेंगे कि इच्छा परिवर्त्तन शील है अनेक समय वह अनियंत्रित और अशिक्षित है। उसके हाथ में नेशन की नेशनल्टिी के समान प्राचीन महत् सम्पद् की रक्षा का भार देने से होते होते वह एक दिन विकसित होकर सब नष्ट हो जायगी॥

मनुष्य की इच्छा का परिवर्त्तन है किन्तु पृथ्वी में ऐसी भी कोई वस्तु है जिसका परिवर्त्तन नहीं होता? नेशनें अमर नहीं हैं। उनका आदि था अन्त भी होगा। कभी इसी नेशन के स्थान में एक यूरोपीय सम्प्रदाय भी सङ्घटित हो

सकती है। किन्तु अभी तक उसका लक्षण नहीं देखा जाता। यहां के लिये नेशनों के भीतर की भिन्नता ही अच्छी और आवश्यकता की वस्तु है। उन्ही में सब की स्वाधीनता वची हुई है। एक आईन और एक प्रभु होने से स्वाधीनता के लिये सङ्कट आता है॥

वैचित्र्य और अनेक समय विरोधी प्रवृत्ति द्वारा भिन्न भिन्न नेशन सभ्यता वढ़ाने में सहायता करती है॥

जो हो रेनाँ कहते है कि मनुष्य जाति, भाषा, धर्म्म मत अथवा नदी पर्वत का दास नहीं है। अनेक संयतमना और भावोत्तप्तहृदय मनुष्यगण का महासङ्घ जो एक सचेतन चारित्र सृजन करता है वही नेशन है। सर्व्वसाधारण के मङ्गलार्थ व्यक्ति विशेष के त्याग स्वीकार से यह चारित्रचित्त जब तक अपना बल सप्रमाण करता है तब तक वह सच्चा समझा जाता है और तब तक उसको टिकने का सम्पूर्ण अधिकार है॥

रेनाँ की उक्ति यही है अब रेनाँ के इन सारगर्भ वाक्यों का अपने देश के प्रति प्रयोग करके आलोचना करेंगे।

हिन्दुत्व ।

तुरस्क ने जहाँ जहाँ दख़ल किया है वहां राजशासन एक है किन्तु उनमें और कुछ एकता नहीं है। वहां तुर्की, ग्रीक, अर्मनी, स्लाव, कुर्द कोई किसी के साथ नही मिलता वरञ्च आपस में लड़ झगड़ कर किसी तरह दिन काटते हैं। जो शक्ति एक करती वह सभ्यता की मा है वह शक्ति तुरस्क राज्य की राज लक्ष्मी के समान होकर अब तक उन को प्राप्त नहीं हुई ॥

प्राचीन यूरोप में बर्बर जाति के लोगों ने रोम के प्रकाण्ड सम्राज्य को बाँट बखरा कर लिया किन्तु वह लोग अपने अपने भाग में पाये हुए राज्यों में एमे मिल गये कि कुछ भी बीच नहीं रहा। जेता और विजित ने भाषा, धर्म और समाज में एकाङ्ग हो कर एक एक नेशन-कलेवर धारण किया। उसी मिलन शक्ति का जो उद्भव हुआ उस ने नाना प्रकार विरोधों के आघात से कठिन हो कर सुनिर्दिष्ट आकार धारण करके बहुत दिनों पर एक एक नेशन को एक एक सभ्यता का आश्रय कर दिया ॥

चाहे जिस उपलक्ष्य से हो अनेक लोगों का चित्त एक होने पर उस से बड़ा फल फलता है। जिस जनसम्प्रदाय में उस प्रकार एक होने की शक्ति स्वभावतः ही कार्य्य करती है उन्हीं में से किसी न किसी प्रकार महत्व अङ्ग धारण करके दीख पड़ता है, उन्हीं से सभ्यता जन्मती है और वही सभ्यता का पोषण करते हैं। विचित्र को मिलित करने की शक्तिही सभ्यता का लक्षण है। सभ्य यूरोप जगत में सद्भाव

फैला कर ऐक्य सेतु बांधता है वर्व्वर यूरोप विच्छेद, और अन्तर डालता है विनाश करता है। इसका इन दिनों चीन में प्रमाण पाया गया है। चीनही क्यों हम लोगों को भारतवर्ष में भी यूरोप की सभ्यता और वर्व्वरता दोनों का काम प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। सभ्यताओं के मर्म स्थल में मिलाप का उच्च आदर्श विराजमान है समझकर उसआदर्श की जड़ में वर्व्वरता की चोटों से दूनी वेदना और अपमान प्रति दिन हम लोग अनुभव करते रहते हैं॥

लोक चित की यह एकता सब देश में एक भाव से नही मिलती। इसी कारण यूरोप का ऐक्य और हिन्दूओं का ऐक्य एक प्रकार का नही है। किन्तु इसी कारण हिन्दूओं में ऐक्य नही है ऐसा नही कहा जा सक्ता। उस ऐक्य को नेशल ऐक्य न कहा जाय तो चिन्ता नही क्योंकि नेशन और नेशल शब्द हमारे यहां का नहीं है। उस का अर्थ यूरोपीय भावों से सीमावद्ध हो चुका है॥

प्रत्येक जाति अपने विशेष ऐक्य कोंही स्वभावतः सब से वड़ा समझती है। जिस कारण उस को आश्रय दिया है उसे भीतरही भीतर वड़ा समझ कर पहचाना है, और किसी आश्रय को उस ने आश्रय नहीं समझा है, उसी कारण से यूरोप के समीप नेशल ऐक्य अर्थात राष्ट्रतंत्र मूलक ही श्रेष्ट है, और हम लोग भी यूरोपीय गुरूओं से उस वात को ग्रहण करके पूर्व पुरुषों के नेशल भाव के अभाव से लज्जित होते हैं॥

सभ्यता का जो महत कार्य विचित्र को एक कर डालना है। हिन्दू ने उस का क्या किया है सो देखना है। इस एक

करने की शक्ति को नेश्नल कह कर संम्बोधन किया जाय या और कोई नाम दिया जाय उस से कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मनुष्यों को ऐक्य से बाँधनाही आलोचना का विषय है।

अनेक युद्ध विग्रह और रक्त पात के पीछे यूरोप की सभ्यता ने जिन को एक नेशन में बाँधा है वह सवर्ण हैं। भाषा और पहनाव एक होने पर ही उन में और कोई प्रभेद आँखोंतर आने वाला नहीं था। उन में कौन जेता और कौन जित है, यह भूल जाना कठिन नहीं था। नेशन गढ़ने के लिये जैसे स्मृति दरकार है वैसेही विस्मृति भी आवश्यक है। नेशन को विग्रह विरोध की बात जितना जल्द हो सके भूल जाना होगा। जहाँ दोनों पक्ष का चेहरा एक और रङ्ग एक है वहाँ सब तरह का विच्छेद भूल जाना सहज है। वहाँ एक एकत्र रहने सेही मिल जाना स्वाभाविक है।

बहुतेरे लड़ाई भिड़ाई के बाद हिन्दू सभ्यता ने जिन को एक कर लिया था वह असवर्ण थे वह स्वभावही से एक नही हैं। उन से आर्य जाति का जो विच्छेद था उस के शीघ्र भूल जाने का उपाय नहीं था।

अमेरिका और आष्ट्रेलिया में क्या हुआ? यूरोपीय गण जब वहां पधारे तब वह खृष्टन थे शत्रु पर प्रीति करने का मंत्र पाये हुए थे। किन्तु अमेरिका ने आष्ट्रेलिया के आदिम निवासियो को देश से एक दम उखाड़े विना नहो छोड़ा। उन को पशु की तरह मारा है। अमेरिका ने आष्ट्रेलिया में जो नेशन बांधा है उस में आदिम निवासी नहीं मिल सके॥

हिन्दूसभ्यता ने जो एक अत्याश्चर्य प्रकाण्ड समाज बाँधा है उसमें ऐसी कोई जाति नहीं जिसको स्थान नहीं मिला। प्राचीन शक जातीय जाट और राजपूत; मिश्र जातीय नैपाली आसामी; द्राविड़ी, तैलङ्गी और नाय्यर अपनी भाषा अपने वर्ण, धर्म्म और आचार में नाना प्रभेद रहते भी सुविशाल हिन्दूसमाज का एक वृहत औचित्य रखकर एकत्रनिवास करते हैं। हिन्दूसभ्यता ने इतने विचित्र लोगों को आश्रय देने में अपने तईं नाना प्रकार से वञ्चित किया है किन्तु तो भी किसी को परित्याग नहीं किया। उच्च, नीच, सवर्ण असवर्ण सभी को घनिष्ठ करके बाधा है। सब को धर्म्म का आश्रय दिया है। सब को कर्त्तव्य पथ पर स्थिर करके शिथिलता और अध पतन के गड़हे से दूर खींच रखा है॥

रेनॉ ने दिखलाया है कि नेशन का मूललक्षण क्या है। उसका निकालना बड़ा कठिन है। जात की एकता, भाषा की एकता अथवा धर्म्म की एकता या देश का भूसंस्थान इन सब पर नेशनलत्व का एकान्त निर्भर नहीं है। वैसेही हिन्दूत्व का मूल कहाँ है सो निर्णय करके कहना कठिन है। नाना जाति नाना भाषा, नाना धर्म्म और नाना प्रकार के विरुद्ध आचार विचारों को हिन्दू समाज में स्थान मिला है॥

परिधि जितनी ही बड़ी हो उसका केन्द्र ढूंढ़कर पाना उतना ही कठिन है। हिन्दू समाज का ऐक्य क्षेत्र निरतिशय वृहत है इस कारण इतने विशालत्व और वैचित्र्य में उसका मूल आश्रय निकालना सहज नहीं है॥

हिन्दूत्व के मूल उपादान सम्बन्ध में हम और एक लेख

में कहेंगे। यहाँ प्रश्न हमारा यही है कि हम लोग प्रधानतः किधर मन दें और ऐक्य के किस आदर्श को प्रधानता दें?

राष्ट्रनीति की ऐक्य चेष्टा को हम उपेक्षा नही कर सकते क्योंकि मिलन जितने ही प्रकार से हो उतनाही अच्छा है। कांग्रेस की सभा में जो मिलते हैं उनको इस बात का अनुभव है कि सब कुछ उसका उद्योग व्यर्थ हो तो भी मिलन कांग्रेस का धर्म फल है। इस मिलन को यदि बचा कर चला जाय तो वह उपलक्ष विफल होने पर भी किसी न किसी ओर से सार्थक करेहीगा। देश के लिये क्या मुख्य है उसको वह निकालेहीगा। जो वृथा और क्षणिक है उसे आपही आप परिहार करेगा॥

किन्तु हम लोगों को यह बात समझनी होगी कि हमारे देश में समाज सब से बड़ा है। अन्य देशों में नेशन अनेक विप्लवों में आत्मरक्षा करके जयी हुई है। हमारे देश में इन से अधिक दिनों से समाज ने अपने तईं सब तरह के सङ्कटों में रक्षा की है। हम लोग जो सहस्त्र वर्षों के विप्लव, उत्पीड़न, पराधीनता और अधःपतन की अंतिमसीमा में नहीं गये हैं, अब भी हमारी निम्न श्रेणी के लोगों में साधुता और भद्र मण्डली में मनुष्यत्व का उपकरण विद्यमान है। हम लोगों के आचार से संयम और व्यवहार से शीलता प्रकाश होती है अब भी जो हम लोग पग पग पर त्याग स्वीकार करते हैं, वह दुख का धन अब भी सब में बांटकर भोग करना उत्तम समझते हैं साहब बहादुर का बेहरा सात रुपये के तलब में से तीन रुपये से पेट भर कर चार रुपया घर भेजता है, पन्द्रह रुपया महीना पाने वाला मुहर्रिर आप आधा

पेट खाकर दिन काटता और छोटे भाई को कालिज में पढ़ाता है। यह सब हमारे प्राचीन समाज के जोर से होता है। यह समाज हम लोगों को सुख को ही बड़ा कह कर नहीं बतलाता सब बातों में, सब काम और सब सम्बन्धों ही में केवल कल्याण, केवल पुण्य और धर्म्म का मंत्र कान में देता है। उसी समाज को ही हम लोगों को सर्व्वोच्च आश्रय कह कर उसी पर विशेष दृष्टि रखना आवश्यक है॥

कुछ लोग कहेंगे समाज तो हुई है उसे तो हमारे पूर्व्व पुरुषों ने नहीं गढ़ दिया है। हम लोगों को अब कुछ करना नही है॥

इसी विचार और सिद्धान्त से हम लोगों का अधःपतन होता है। यही वर्त्तमान यूरोपीय सभ्यता ने वर्त्तमान हिन्दू सभ्यता को जीता है॥

यूरोप का नेशन एक सजीव सत्ता है। अतीत के साथ नेशन के वर्त्तमान का केवल जड़ सम्बन्ध नहीं है। पूर्व्व पुरुषों ने जान देकर जो काम किये हैं वर्त्तमान पुरुष आँख बन्द करके उनका फल भोग नहीं करते। अतीत और वर्त्तमान में निरन्तर चित्त का सम्बन्ध है। अखण्ड कर्म्मप्रवाह चला आता है। एक अंश प्रवाहित और एक अंश बन्द नहीं है। एक अंश प्रज्वालित और अपर अंश निर्व्वापित नहीं है वैसा होने से तो सम्बन्ध टूट जाता है॥

केवलमात्र असल भक्ति से योग साधन नहीं होता वरन्न वह और दूर ले जाता है, अङ्गरेज जो पहनते हैं, जो खाते हैं, जो कहते और जो करते हैं, सभी अच्छा है यही

भक्ति हम लोगों को अन्ध अनुकरण में प्रवृत्त करती है। इससे हम लोग अमल अङ्गरेज़त्व से दूर हो जाते हैं। क्योंकि अङ्गरेज़ ऐसे निरुद्यम और अनुकरणकारी नहीं हैं। अङ्गरेज़ स्वाधीन चिन्ता और चेष्टा के बल से ही बड़े हुए हैं। पराये की गढ़ी वस्तु आलस्य भाव से भोग करके वह इस उन्नति को प्राप्त नही हुए हैं। अतएव अङ्गरेज़ बनने में हम लोगों के लिये अमल अङ्गरेजत्व दुर्लभ हो जाता है॥

वैसेही हम लोगों के पितामह गण जो बड़े हुऐ थे वह केवल हम लोगों के प्रपितामह गण की गोद में निश्चल भाव से शयन करके ही नहीं हुए थे। उन्हौंने ध्यान किया, विचार किया, परीक्षा और परिवर्त्तन किया। उनकी चित्त वृत्ति सचेष्ट थी, इसी कारण वह बड़े हो सके हैं। हम लोगों का चित्त यदि उनके उस चित के साथ योगयुक्त नहीं होने से केवल उनके कृत कर्म के साथ हम लोगों का जड़ सम्बन्ध रह जाता है तब हम लोगों में ऐक्य नहीं होता। पिता माता के साथ पुत्र के जीवन का योग है। उनकी मृत्यु होने पर भी जीवन क्रिया पुत्र के देह में एकही तरह से काम करती है। किन्तु हम लोगों के पूर्व पुरुषों की मानसी शक्ती ने जिस भाव से काम किया है हम लोगों के मन में यदि उसका कुछ निदर्शन न मिले, हम लोग यदि केवल उनका अविकल अनुकरण करके चलें तो समझना होगा कि हम लोगों में अपने पूर्व्व पुरुष अब सजीव नहीं हैं। सन की दाढ़ी लगा कर जैसे नाटकों के नारद आज कल महर्षि नारद बनते हैं हम लोग भी वैसेही आर्य हैं। हम लोग एक बड़े नाटक के एक्टर है। समस्त जगत एक्टर है एक्टर ही एक्टर देखने

वाले हैं। कृत्रिम पहिनाव पोशाक से हम लोग पूर्व्व पुरुषों का रूप लिये अभिनय करते हैं। पूर्व्व पुरुषों के उसी सचेष्ट चित्त को हम लोग अपने जड़ समाज पर जगा डालने से बड़े हो सकेंगे। हम लोगों का समस्त समाज यदि प्राचीन महत्स्मृति और वृहत भाव द्वारा आद्योपान्त सजीव सचेष्ट हो उठें अपने समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग में बहुशताब्दी का जीवन प्रवाह अनुभव करके अपने तईं सबल और सचल कर डाले तो राष्ट्रीय पराधीनता और अन्य सर्व दुर्गति तुच्छ हो जायगी समाज की सचेष्ट स्वाधीनता अन्य सब स्वाधीनताओं से बड़ी है॥

सजीव पदार्थ सचेष्ट भाव से बाहर की अवस्था को अपने अनुकूल कर लेता है। और निर्ज्जीव पदार्थ को बाहर की अवस्था ही बल पूर्व्वक आघात करके अपने हाथ में लेती है। हम लोगों की समाज में जो कुछ परिवर्त्तन होता उसमें चैतन्य का काम नहीं है, उससे बाहर के साथ भीतर की अवस्था का मिलान नहीं है। बाहर से परिवर्त्तन आपही आप माथे आ पड़ता और समाज की सब सन्धि-शिथिल कर देता है॥

नयी अवस्था, नयी शिक्षा, नयी जाति और नया सङ्घर्ष इनको अस्वीकार नहीं किया जाता। हम लोग यदि ऐसे भाव से चलने की इच्छा करें मानो हम लोग तीन हज़ार वर्ष पहले के समय में हैं तब तीन हज़ार वर्ष पहले की अवस्था हम लोगों की कुछ सहायता नहीं करेगी। और वर्त्तमान परिवर्त्तन की बाढ़ हम लोगों को बहा ले जायगी। हम लोग वर्त्तमान को स्वीकार मात्र न करें और पूर्व्व पुरुषों

की दुहाई मानें तो भी पूर्व्व सहायता नहीं करेंगे। हमारे पूर्व्व पुरुष हम लोगों की दुहाई सुनकर कहते हैं, वर्त्तमान के साथ सन्धि करके हम लोगों की कीर्त्ति रक्षा करो उसके प्रति अन्ध होकर इसे जड़ सहित ध्वंस मत होने दो। हम लोगों के भावसूत्र की रक्षा करके सचेतन भाव से एक काल के साथ और एक काल को मिला लो नहीं तो सूत्र आपही आप छिन्न हो जायगा।

क्या करना होगा? नेशन के हर एक लोग नेशनल स्वार्थ रक्षा के लिये अपना स्वार्थ विसर्ज्जन कर देते हैं। जिस समय हिन्दू समाज सजीव था। उस समय समाज का अङ्ग प्रत्यङ्ग समाज के कलेवर के स्वार्थ से ही अपना स्वार्थ समझते थे। राजा समाज का ही अङ्ग होते थे। समाज के संरक्षण और संचालन का भार उन्हीं पर था। ऊपर से ब्राह्मण समाज में समाज धर्म्म के विशुद्ध आदर्श को उज्वल और चिरस्थायी रखने के लिये नियुक्त थे। उनका ध्यान, ज्ञान, शिक्षा साधना सब समाज की सम्पत्ति थी। गृहस्थ ही के समाज का स्तम्भ होने से गृहाश्रम वैसा गौरवमय कहा जाता था। उसी गृह को ज्ञान से, धर्म्म से भाव और कर्म्म से रखने के लिये समाज की विचित्र शक्ति सचेष्ट भाव से काम करती थी। तब का नियम, तब का अनुष्ठान उस समय के लेखे निरर्थक नहीं था॥

अब वही नियम हैं किन्तु वह चेतना नहीं है। समस्त, समाज के कल्याण की ओर लक्ष्य रख कर उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग की सचेष्टता नहीं है हम लोग अपने पूर्व्व पुरुषों के

उस नियत जाग्रत मङ्गल भाव को हृदय में प्राण की भांति प्रतिष्ठित करके समाज में सर्वत्र उसका प्रयोग करें तभी विपुल हिन्दू सभ्यता को फिर प्राप्त होंगे। समाज को शिक्षा दान, स्वास्थ्यदान, अन्नदान, धन सम्पद दान यह हम लोगों का अपना काम है। इसी में हम लोगों का मङ्गल है। इसके बदले पुण्य और कल्याण छोड़ कर और कुछ आशा न करना यही यज्ञ यही ब्रह्म के साथ कर्म्म योग है, यही सदा स्मरण करना चाहिये यही हिन्दुत्व है। स्वार्थ के आदर्श को ही मानव समाज के केन्द्र स्थल पर न स्थापन करके ब्रह्म में ही मानव समाज को निरिक्षण करना हिन्दुत्व है। इस से पशु से मनुष्य तक सब के प्रति कल्याण भाव परिव्याप्त हो जाता है। और सदा के अभ्यास से स्वार्थ परिहार करना सांस फेंकने की तरह सुगम हो जाता है। समाज के नीचे से ऊपर तक सबको निःस्वार्थ कल्याण के एक बड़े बन्धन से बांधना यह हम लोगों के लिये सब चेष्टाओं से बड़ी चेष्टा का विषय है। इसी ऐक्य सूत्र से ही हिन्दू सम्प्रदाय के एक के साथ दूसरे और वर्त्तमान के साथ अतीत का धर्म्म योग साधन करना होगा। हम लोगों के मनुष्यत्व लाभ का यही एक मात्र उपाय है। राष्ट्र नीति के चेष्टा से कुछ फल नहीं है ऐसा हम नहीं कहते किन्तु वह चेष्टा हमारे सामाजिक ऐक्य साधन में कुछ दूर तक सहायता कर सकती है॥

राष्ट्र और नेशन ।

भाग्यवश हमारे भारत वर्ष में इन दोनों पदार्थों का किसी कारन में अस्तित्व नहीं था । शहावुद्दीन गोरी को यदि भारत वर्ष व्यापी महाराष्ट्र का सामना करना पड़ता तो भारत का परवर्ती इतिहास और आकार धारण करता । और यदि भारत में नेशन होता तो पृथ्वी का इतिहास भी कैसा बदल जाता सो नही कहा जा सकता ।

अध्यापक सीली ने कहा है कि भारत वर्ष में नेशन नहीं है किन्तु जान पड़ता है ऐसा बीज है जिसमे समय पर नेशन का अङ्कुर निकल कर बढ़ सकता है ।

इसी कारण राष्ट्र किसे कहते हैं और नेशन क्या कहलाता है यह भारत वासियों को समझना कठिन है किन्तु अब समझने की आवश्यकता हुई है ॥

नेशन के लक्षण सम्बन्ध में रेनाँ का मत अन्यत्र अनुवाद करके दिया गया है । जो उसे मनोयोग पूर्ब्बक पढ़ेंगे वह समझ जायंगे कि एक बात में नेशन की संज्ञा कह देने से नहीं चलेगी राष्ट्र केही आश्रम पर नेशन उत्पन्न होता है किन्तु राष्ट्र मात्र में नेशन नहीं जन्मता । यूरोपखण्ड में रूस प्रबल प्रतापवान राष्ट्र है किन्तु रूसीय जाति को नेशन कहा जायगा या नहीं इस में सन्देह है वह नेशन नही कहा जा सकता क्योंकि रूसीय नामक महाराष्ट्र एक मात्र नियन्त्री सर्वतोमुखी राजशक्ति ही है । उस राजशक्ति को प्रजाशक्ति का मुंह नहीं ताकना पड़ता न प्रजाशक्ति स्वेच्छा पूर्व्वक राजशक्ति का समर्थन करती है ॥

जहाँ राजशक्ति और प्रजाशक्ति में ऐसा विच्छेद नही है वहीं नेशन मूर्तिमान होकर खड़ी है । यूरोप में वृटिश,

फ्रांसीसी और जर्मन और अमेरिका में युक्तप्रदेश की प्रजागण नेशन का उत्कृष्ट उदाहरण हैं ॥

किन्तु यूरोप का इतिहास आलोचना करने से देखा जाता है कि वहुत दिन पहले वहाँ भी नेशन का अस्तित्व नहीं था किन्तु यूरोप के समाज क्षेत्र में वहुत दिन पहले ऐसा वीच पड़ा था जिस से कितनेही नेशन अङ्कुरित वृद्धिप्राप्त हुए हैं। इटली नेशन और जर्म्मन नेशन असल में विगत ऊनविंश शताब्दी की सर्व्व प्रधान ऐतिहासिक सृष्टि है।

सक्षेप से नेशन का लक्षण विवरण नहीं हो सकता। यदि एक दम संक्षेप ही में कहना हो तो हम नेशन के अर्थ में सुगठित संहत शरीरवद्ध मानव समाज समझ सकेंगे। यह समाज शरीर सदा जाग्रत और सचेतन रह कर अपने स्वार्थ अर्थात सर्व साधारण के स्वार्थ रक्षा के लिये सचेष्ट है। शत्रु से अपने तईं वचाने और पराये के विरुद्ध आत्म प्रसाद के लिये सदा मुंह खोले रहता है। उसका प्रत्येक अङ्ग सार्वजनिक स्वार्थ रक्षा के लिये एक योग से कार्य्य करता है। एक अङ्ग में आघात करने से दूसरे अङ्ग से आर्त्तध्वनि निकलती है। और समग्र शरीर के मङ्गल के लिये प्रत्येक अङ्ग अपना सङ्कीर्ण मङ्गल त्याग करने में कुंठित नहीं होता ॥

समग्र नेशन की शक्ति को राजशक्ति और प्रजाशक्ति इन्हीं दो भागों में विभक्त करने से देखा जाता है कि नेशन की राजशक्ति का मूल प्रजाशक्ति की भित्ति पर और प्रजाशक्ति को अवलम्वन करके खड़ी है। प्रजाशक्ति सदा और सर्वत्र राजशक्ति का माहात्म्य अक्षुण्ण रखने के लिये यत्नवान है।

और जिस प्रजासङ्घ से नेशन का शरीर है उसी प्रजासङ्घ का सब तरह से मङ्गल साधन के लिये राजशक्ति वर्त्तमान है। राजशक्ति के आस्तित्व का दूसरा उद्देश्य नहीं है॥

गज़नवी महमूद ने जब सोमनाथ महादेव का मन्दिर लूटा था तब भारत वर्ष के विभिन्न प्रादेशिक हिन्दू समाज के लोगों ने उस अत्याचार की ख़बर लेना भी अपना काम नहीं समझा महाराणा प्रतापसिंह ने जब अकेले सिंह विक्रम से ज़िन्दगी भर दिल्लीश्वर से संग्राम करके भी अपना ऊंचा मस्तक नीचा नहीं होने दिया भिन्न२ प्रदेशों के भारत सन्तान का शीतलरक्त तब भी उष्ण नहीं हुआ। मरहठी सेना जब पूर्ब्ब काल में दिल्लीपति की प्रजाओं पर अत्याचार करती हुई घूम रही थी तब उनके सजातित्व और सधर्म्मत्व की बात भी इनके मन में नहीं याद आयी॥

इसका मतलब यह कि भारत वर्ष व्यापी प्रकाण्ड पुरातन हिन्दू समाज का अस्तित्व था किन्तु हिन्दू नेशन का अस्तित्व नही था हिन्दू समाज के एक अङ्ग की व्यथा दूसरे को अनुभव करने की सामर्थ्य नहीं थी॥

फिर चौहान पति को आक्रान्त और विपन्न देख कर राठौर राज जब हँसते थे और मुसलमानों के हाथ से मगधराज्य विनष्ट होता देखकर भी आस पास के बङ्गराज जब भाग जाने की साइत निश्चित करने के लिये पञ्चाङ्ग उलट रहे थे तब भारत में खण्ड राष्ट्र था। और खण्डराष्ट्र में कुल और कुलपतिगण की मर्य्यादा थी किन्तु भारत व्यापी महाराष्ट्र और महाराष्ट्र व्यापी महानेशन नहीं था॥

अति प्राचीन काल में इन सब खण्डराष्ट्रों में राजशक्ति एक वंश से दूसरेवंश को सञ्चरित होती थी। एक कुल से कुलान्तर को संक्रान्ति होती थी। प्रजासङ्घ उदासीन की तरह देखती रहती थी। प्रजा गण को उसमें सुख दुःख का कोई कारण नहीं था। उत्तर काल में हिन्दू राजा के हाथ से शासनदंड मुसलमान के हाथ और मुसलमानों के हाथ से खृष्टानों के हाथ गया है किन्तु भारत की प्रजा ने इन सब राजविप्लवों को नैसर्गिक विप्लव की भाँति अपनी सहिष्णुता से सहन किया। और इन विप्लव घटनाओं के अनुकूल वा प्रतिकूल खड़ा होना अपना कर्त्तव्य कदापि नहीं समझा। इस का अर्थ यही है कि भारतवर्ष में प्रजा शक्ति ने कभी राजशक्ति के पीछे खड़ी होकर उसको वलवती नहीं किया राजशक्ति प्रजाशक्ति पर प्रतिष्ठित नहीं थी भारतवर्ष में कभी नेशन नहीं था॥

भारतवर्ष में नेशन नहीं था इसी कारण भारतवर्ष का इतिहास ऐसा हुआ इस में सन्देह नहीं है। किन्तु यूरोप में भी एक समय नेशन नहीं था। यूरोप के नेशन की उत्पत्ति का इतिवृत्त आलोचना करने से भारतवासियों को और नहीं तो कुछ शिक्षा लाभ अवश्य सम्भव है॥

सामाजिक एकता नेशन के गठन कार्य्य में सहायता करती है किन्तु एकता कहाँ है। उसे निकालना कठिन है॥

वृटिश द्वीप महादेश से विच्छिन्न है। वृटिश द्वीप में जान पड़ता है कि संहत नेशन की उत्पत्ती हुई है। जातिगत एकता पूर्ण रूप से तो नहीं है तो भी अधिकांश में

वृटिश प्रजा सेकेसन वंशधर कहकर स्पर्धा करती है। भाषागत ऐक्यता नहीं थी किन्तु अङ्गरेज़ी भाषा के प्रचार से और भाषाएं लोप हो चली हैं। धर्म्मगत एकता बहुत है। एक समय समग्र प्रजा पुञ्ज को एकही बन्धन से बांधने की चेष्टा हुई थी किन्तु वह चेष्टा व्यर्थ हुई। धर्म्मगत ऐक्य की अपेक्षा आचारगत ऐक्य अधिक है। और सब से ऊपर राष्ट्रीय ऐक्य है सारी प्रजा सम भाव मे एक राष्ट्रतंत्र के आधीन है। इन्हीं सब ऐक्यों का कांम वृटिश नेशन है। अनेक शताब्दीतक इसका जीवन सुर बांध कर उन्नति के मुख की ओर चलता रहा है वह एतिहासिक प्राचीनता प्रत्येक वृटिश प्रजा को एक और गौरव की बात और ऐक्य साधन का और एक बन्धन है॥

आइरिश जाति की वासभूमि वृटिशद्वीप से विच्छिन्न है। इसके सिवाय जातीगत, भाषागत और धर्म्मगत अनैक्य वर्त्तमान है। सब से बड़ी बात यह कि आइरिश जाती अपने पराजय और अपमान की कथा अब तक नहीं भूल सकी है। अङ्गरेज ऐतिहासिकों ने भी उसे भूलने का अवसर नहीं दिया है। यहां राष्ट्रीय एकता होते भी आइरिश जाती वृटिश नेशन के कलेवर में नहीं मिल सकी है॥

फ्रांस देश की भौगोलिक सीमा रेखा प्राय चहुं ओर से स्पष्ट है। केवल उत्तर पूर्व्व कोन पर ही सुचिन्हित सीमा नहीं है उसी ओर गोलमाल है। स्लाइवीरीय, केल्ट और जर्मन को मिलान से फ्रांसीसी जाति उत्पन्न हुई है। जान पड़ता है प्रत्येक फ्रांसीसी के देह में तीनों का रक्त

वर्त्तमान है। धर्म्मगत आचारगत और भाषागत एकता बहुत कुछ है फ्रांसीसी साहित्य और फ्रांसीसी विज्ञान के गौरव में फ्रांसीसी मात्र अधिकारी हैं। और पड़ोसी जर्म्मन के प्रति विद्वेष करने में भी उनकी एकता विद्यमान है। फ्रांसीसियों का प्राचीन इतिहास जर्मन की पराजय कहानी वारम्बार याद कराकर फ्रांसीसी ऐक्य की घोषणा करता है। इन्हीं सब ऐक्य के फल से फ्रांसीसी नेशन हुआ है॥

उसके पीछे जर्मन नेशन है। इस जाति में जितनी वंश-गत विशुद्धी है उतनी उस देश की और जाति में है या नहीं कहते सन्देह होता है। जर्मन अपने शरीर में पुरातन रोम साम्राज्य के विप्लपकारी टिउटन का रक्त प्राय विशुद्ध अवस्था में वर्त्तमान कहकर श्लाघा करते हैं, ऊपर से भाषागत और आचारगत ऐक्य तो हुई है। तो भी चालीस वरस पहले जर्मन नेशन नहीं था जर्मन नेशन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध की सृष्टि है॥

जर्मन को जुट बांधने में इतना समय क्यों लगा? जिस एकता बन्धन से नेशन की उत्पत्ति है वह एकता जर्मन जाति में अधिकता से होने पर भी जर्मन नेशन ने जोर क्यों नहीं पकड़ा इसका अर्थ आलोचना के योग्य है॥

पहले ही दीख पड़ता है कि जर्मनी की सुनिर्द्दिष्ट सीमा नही है। उतर में डेनमार्ड और हालैण्ड के लोग जर्मन, पश्चिम में फ्रांसीसी दक्षिण में हङ्गेरियन और तुर्क पूरब में स्लाव जाति इन्हीं विभिन्न भाषी, और विभिन्न जाति के मध्य जर्मन का निवास है। किसी उन्नत पर्व्वत, प्राचीर वा किसी

सागर शाखा ने बीच देकर जर्मनी की भौगोलिक सीमा रेखा का निर्द्देश नहीं किया। जर्मन ठीक नहीं जानते कि उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूरब में उनकी बास भूमि का अन्त कहाँ है। किस डॉड को पारकर के वह आगे नहीं जा सकते सो उनको मालूम नहीं है। उनके पड़ोसी भी नहीं जानते कि किस रेखा पारकरने से जर्मन देश में अनधिकार प्रवेश कहलायगा। इसका फल यह हुआ कि पार्श्ववर्त्ती विभिन्नजाति ने जर्मनी पर बार बार आक्रमाण कर के उस देश को यूरोप का युद्ध क्षेत्र बना दिया। उसी अविराम संग्राम की कथा से यूरोप के मध्ययुग का इतिहास शब्दायमान है। नैसर्गिक सीमान्त रेखा के अभाव से जर्मनी ने भी बार बार परराष्ट्र और पर जाति पर आक्रमण किया इन्हीं कारणों से शान्ति के अभाव से जर्मन को यथा बाँधने का अवसर नहीं मिला।

इस प्राकृतिक कारण के सिवाय और एक ऐतिहासिक कारण दीख पड़ता है। उस कारण की खोज के लिये रोम-साम्राज्य के पतन काल में जाना होता है। रोमसाम्राज्य के पतन के समय जर्मन जाति अनेक कुलों में बँटी थी। एक एक कुलवालों ने रोमराज्य का एक एक प्रदेश अधिकार कर लिया। फ्रेङ्क, गाथ, लम्बर्ड, प्रभृति कुलों का नाम इतिहास में प्रसिद्ध है। इन विभिन्न कुलों मे परस्पर सम्प्रीति नहीं थी। उनका परस्पर विरोध जर्मनजाति को एक होने में बड़ी बाधा डाले हुए था। कुलपति गण का परस्पर विरोध बहुत दिनों तक उनको एक होने अथवा मिलने नहीं दिया।

काल की गति से वह कुलगत विरोध मिट गया। तब एक और विरोध आपड़ा। रमोसाम्राज्य को ध्वंस कर के कुलपतिगण ने अपने अनुगत अनुचर वर्ग को भूमि बाँट दी। उन अनुचर गणों में कुछ लोग एक एक विस्तीर्ण प्रदेश के भूस्वामी और सर्वमय कर्त्ता हो गये। रोम साम्राज्य के पुनः प्रतिष्ठित होने पर सम्राट पदवी एक कुल विशेष और वंश विशेष के बन्धन से बांधी गयी। किन्तु सम्राट स्वयम् प्रादेशिक पराक्रान्त भूम्यधिकारियों के अधीन हो गये। इस तरह यूरोप में फिउडल तंत्र की उत्पत्ति हुई। जर्मन राज रोम सम्राट के नाम से समग्र खृष्टीय जगत के अधिपति थे किन्तु काम में इन खण्ड राष्ट्रों के अधिपतियों के अध्यक्षमात्र थे। खण्डराष्ट्रों में सदा परस्पर विवाद होता रहा। सम्राट उस विवाद को दूर करने में असमर्थ थे। काल की गति से होते होते धर्म गत विवाद ने भी उस राष्ट्र गत विवाद में मिलकर और आग लहका दी। प्रोटेष्टेन्ट और कैथलिक जर्मन राष्ट्रपति में विकट धर्मयुद्ध होने लगा। उसी अग्निकाण्ड में जर्मन राष्ट्रतंत्र एक बार भस्म होने पर था। रोमक सम्राट की पदवी काल पाकर हाव्सवर्ग वंश के पाले पड़ी। हाव्सवर्ग वंश के लोग बहुत दिनों तक समग्र खृष्टीय जगत को रोम सम्राट के शासनाधीन रखने का स्वप्न देखते रहे थे किन्तु जर्मन राष्ट्रपतिगण के एकता साधन में समर्थ नहीं हो सके। नपोलियन ब्रोनापार्ट के अभ्युदय होने पर रोमसाम्राज्य का नाम तक लोप हुआ किन्तु उस फ्रांसीसी संघर्ष के विपत् काल में भी जर्मनी को एकता नसीब नहीं हुई तो भी वहा वालों ने इतना जान लिया कि जर्मनी की

स्वतंत्रता रक्षा के लिये एकता बन्धन की बड़ी आवश्यकता है। नूतन सृष्ट जर्मन साहित्य, जर्मन दर्शन और जर्मन विज्ञान इस एकता लाभ के लिये सब जर्मन राष्ट्रों को एक सुर से बुला रहा था हाब्सबर्ग बश वाले रोमसम्राट की उपाधि माया काट कर जर्मन राष्ट्रपति गण पर नाम मात्र का प्राधान्य पाकर तृप्त रहे किन्तु उस प्राधान्य परिचालन की उन्हें शक्ति नही थी। सहसा उद्धत प्रूसिया राज्य ने बिसमार्क की सलाह पर चलकर अस्ट्रिया पति को जर्मन राष्ट्रतंत्र से निकाल दिया। और तीसरे नपोलियन की अदूरदर्शिता से फ्रांसीसी विग्रह का सुयोग पाकर तथा जर्मन राष्ट्र समूह का नेतृत्व लेकर जर्मन नेशन की सृष्टि की। उसी विस्मयकर घटना के पीछे सहत जर्मन नेशन ने यूरोप खण्ड में महिमा और मान मर्य्यादा पायी है और महीमण्डल में अपने प्रभुत्वविस्तार की चेष्टा कर के दर्प सहित जर्मन नेशन का माहात्म्य घोषित कर रहा है। जातिगत, भाषा गत और आचार गत ऐक्य से धर्मगत अनैक्य लोप हो गया है। और स्वार्थ की एकता के साथ फ्रांसीसी विद्वेष की सार्व जनिक एकता ने मिलकर सुरक्षित, दुर्भेध दुर्गप्राचीर बनाकर नैसर्गिक सीमान्त रेखा का अभाव मोचनकिया है॥

इसमें सन्देह नहीं कि धर्म्मगत, आचार गत, भाषागत, और जातिगत एकता नेशन बांधने में सहायता करती है। बृटिश, फ्रांसीसी और जर्मन जाति के नेशन बाँधने में इसी एकता ने सहायता की है। अस्ट्रियाराज्य जर्मन राष्ट्र समूह से विच्छिन्न होने पर भी मुख्यतः इसी ऐक्य के अभाव से नेशन का दरजा नहीं पासका है। अस्ट्रिया राज्य में जर्मन

स्लाव और नूरानिक इन्हीं तीन विभिन्न जातियों का निवास है, उनमें भौगोलिक भेद के साथ भाषा भेद, धर्म्मभेद और आचार भेद तक वर्त्तमान है। इसी कारण यह विभिन्न जाति जमात बांधकर एक पराक्रान्त नेशन में परिणत नही होने पाती और इस अनैक्यजात दुर्बलता से ही अस्ट्रियापति प्राचीन ऐतिहासिक प्रसिद्ध होते भी जर्मनजाति के नेतृत्व पद से कई सौ बरस पीछे परिभ्रष्ट हुए है। भाषागत, आचारगत और धर्म्मगत तथा कुछ जातिगत ऐक्य होने के कारणही विविध प्रतिद्वन्द्वियों के राष्ट्रपति गण के द्वंद्व क्षेत्र इटली भूमि में भी इतने दिन पर नेशन की प्रतिष्ठा सम्भव हुई है। किन्तु सब एकताओं से स्वार्थगत एकता प्रबल है। अङ्गरेज़ जाति. स्कॉच और वेल्स के भाषा भेद, और जातिभेद होते भी वेलोग आपस में मिलकर नेशन हुए हैं इसका कारण यहकि स्कॉच का स्वार्थ और वेल्स का स्वार्थ सम्प्रति अङ्गरेज़ के स्वार्थ से अभिन्न है। जर्मन राष्ट्र समूह जो इतने दिनों में विवाद विसम्वाद भूलकर एकता बन्धन में बँधे है उसकी जड़ में भी वही राष्ट्रीय स्वार्थ फ्रांसवालों के आक्रमण से अपने तई रक्षा करने की प्रवृत्ति है। इटली की नेशनत्वप्राप्ति की जड़ में भी वह शत्रु से आत्मरक्षा का सार्वजनिक स्वार्थ विद्यमान है। इस राष्ट्रीय और सार्वजनिक स्वार्थ के ऐक्य ने और अनैक्य को जीत लिया है। जर्मनी से हारने के कारण सार्वजनिक स्वार्थ में आघात पाकर फ्रांसीसी जातिकः नेशनत्व और दृढ़ता से बंध गया है। अङ्गरेज़ों के साथ वाणिज्य प्रतिद्वन्द्विता का संघर्ष होने से जर्मन जाति के सार्वजनिक स्वार्थ में आघात

लगना संभव है इसी कारण जर्मन जाति का नेशनत्व क्रमशः और सहत होता जाता है। यही सार्वजनिक राष्ट्रीय स्वार्थ की एकता सब भेदों को डुबाकर नेशन की सृष्टि करती है। यही राष्ट्रीय एकताही सब तरह का अनैक्य विनष्ट करने की चेष्टाकरती है इसी कारण वृटिश द्वीप के अधिवासी मात्रही आज तुल्य राजनैतिक क्षमता के अधिकारी हुए हैं। और सब अपने तई वृटिश नेशन का अङ्गीभूत जानकर अपना गौरव समझते हैं और यही कारण है कि हमलोग भारत-जात पारसी को अङ्गरेज़ों के प्रतिनिधि रूप में पार्लामेण्ट में देखते हैं, इसी कारण यहूदी के हाथ से वृटिस साम्राज्य के शासन दण्ड का परिचालन देखकर हमलोग विस्मित नही होते। यहूदी हों, या पारसी हों अथवा मुसलमान या खृष्टान जोहो जाति वर्ण की विशेषता छोड़कर वृटनवासी प्रजामात्रही प्रकाण्ड वृटिश नेशन का अङ्गीभूत है और वह वृटिश नेशन की माहात्म्यरक्षा में यत्नवान है॥

धर्म्मगत, भाषागत, जातिगत ऐक्य नेशन बन्धन की अनुकूलता करते हैं और वहीं नेशन रूप महावृक्ष का अङ्कुर निकलता है। ऊपर से राष्ट्रीय स्वार्थ का ऐक्य होने से वह महावृक्ष बडी तेजी से पुष्ट होकर बढ़ जाता है। स्वार्थ की एकता अन्योन्य विषय में सामान्य अनैक्य को नष्ट करके नेशन शरीर गढ़डालती है। और जहाँ राष्ट्री स्वार्थ का आकर्षण धर्म्मगत वा आचारगत या भाषागत अनैक्य के विकर्षण से पराभूत होता है वहां नेशन नही उत्पन्न होता॥

किन्तु केवल स्वार्थ रक्षा में समर्थ होने ही से नेशन नहीं होता। वर्त्तमान काल में रशिया के समान स्वार्थ रक्षा में

समर्थ महाराष्ट्र कोई नहीं है किन्तु रशिया महाराष्ट्र मात्र है। वहाँ नेशन नहीं है। नेशन इस कारण नहीं है कि वहां राजशक्ति प्रजाशक्ति से विच्छिन्न है। दोर्द्दण्ड राजशक्ति प्रजाशक्ति को संयत और नियमित करती है किन्तु प्रजाशक्ति पर उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती। राजा और प्रजाजन समाज के दोनों प्रधान अङ्ग हैं। जहां दोनों प्रधान अङ्गों में विच्छेद है, जब एक की व्यथा से दूसरा कातर नहीं होता, जब एक को चोट लगते पर दूसरा सहाय नहीं करता तब वहाँ नेशन शरीर वर्त्तमान नहीं है॥

भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास में खण्डराष्ट्र का अस्तित्व देखा जाता है। किन्तु उन सब राष्ट्रों में एक समवेदना का आत्मीय बन्धन नहीं था। भारतव्यापी महाराष्ट्र स्थापन करने की अनेक बार चेष्टा हुई थी किन्तु वह स्थायी नहीं हुआ भारत में महाराष्ट्र तो थाही नहीं नेशन भी नहीं था। क्योंकि राजशक्ति के साथ प्रजाशक्ति का किसी तरह स्वार्थ सम्बन्ध नहीं था। राजशक्ति के अभ्युदय वा पराभव से प्रजाशक्ति सदाही उदासीन थी। इस कारण भारत में भारत वर्ष व्यापी महाराष्ट्रस्थान भारतव्यापी नेशन था॥

सम्प्रति भारतव्यापी महाराष्ट्र स्थापित हुआ है अङ्गरेज़ साम्राज्य प्रति के छत्रतले वृटिश प्रजा और वृटिश सम्राट के सामन्त भूपगण ने आश्रय पाकर महाराष्ट्र सिरजा है। रशिया सम्राट दूर से इसके ऐश्वर्य्य की ओर लुब्धनेत्रों से ताक रहे हैं। किन्तु साहस नहीं होता कि इस महाराष्ट्र को आक्रमण करें। भारत वर्ष व्यापी राष्ट्र का इस समय अस्तित्व है किन्तु भारतवर्ष में अब तक नेशन सृष्ट नहीं हुआ है क्योंकि भारत

में राजशक्ति के साथ प्रजाशक्ति का कोई दृढ़ बन्धन नहीं है। प्रजाशक्ति पर राजशक्ति नहीं प्रतिष्ठित है। प्रजाशक्ति राजशक्ति का सहाय नहीं है। राजशक्ति का प्रजाशक्ति विनीत भाव से भय और भक्ति करती है किन्तु प्रेम नहीं करती और अपना आत्मीय कहकर नहीं जानती मानती। जब इन दोनों शक्तियों में एकात्मता नहीं उपजेगी तब तक भारतवर्ष में नेशन की सृष्टि नहीं होगी। यदि काल की विचित्र गति से एकात्मता की उत्पत्ति भी असम्भव हुई तो भारत वर्ष में नेशन की उत्पत्ति भी असम्भव होगी॥

वर्त्तमान काल में हम लोगों की राजशक्ति विदेशीय लोगों के हाथ है। और इस कारण राजा प्रजा में ममत्व-बन्धन का अभाव अच्छी तरह समझ में आ जाता है किन्तु जब राजशक्ति देशीय राजा के हाथ थी तब भी यहाँ राजा प्रजा में ममत्वबन्धन क्यों नहीं था यह विचाराणीय विषय हो पड़ा है॥

मुसलमानों की चढ़ाई के समय भारतवर्ष में एकता का अभाव ही भारत के पतन का कारण बतलाया जाता है। विभिन्न राष्ट्र के ऐक्य का अभाव पतन का प्रधान कारण है। इस में सन्देह नहीं है, किन्तु राजा के साथ प्रजा का ऐक्य बन्धन भी दूसरा प्रधान कारण है उसे ऐतिहासिक लोग सदा नहीं लिखते। भारतवर्ष में राष्ट्ररक्षा का काम सदा से राजा के हाथ समर्पित है। राजा अपना सैन्य सामन्त लिये शत्रु का वार निवारण करने की चेष्टा करते थे किन्तु प्रजा उनकी मदद करती थी इस बात का प्रमाण बहुत नहीं पाया जाता। राजा जिस से हार गया प्रजा चुपचाप उसी

की अधीनता स्वीकार करती आयी है। राजा का सहायक रूप होकर स्वतःप्रवृत्त हो रणभूमि में खड़ा होना प्रजा ने कर्त्तव्य नहीं समझा न राजा के पराजित होने पीछे स्वयम् आक्रमणकारी को रोकना ही अपना कर्तव्य कर्म्म जाना। यही भारतवर्ष का इतिहास है। यहाँ राजा राजा से सदा लड़ाई होती है। प्रजा उदासीन होकर खड़ी देखती है। जो उनमें जीतता है प्रजा उसी को आत्मसमर्पण करती और उसी की अधीनता में रहना स्वीकार करती है॥

यूरोप का इतिहास और तरह का है। बोनापार्ट के इङ्गलैण्ड पर आक्रमण करने की आशङ्का होते ही वृटिश प्रजा ने दल बांधकर वहां वालण्टियरों के रजिस्टर में अपना नाम लिखवाया था। सिडन की रणभूमि में तीसरे नपोलियन के आत्मसमर्पण करने पर भी फ्रांसीसी प्रजा जर्मन के साथ जूझती रही थी। उस साल बूरयुद्ध में अङ्गरेज़ों की राजशक्ति पर आघात लगते ही वृटिश प्रजा झुण्ड के झुण्ड समुद्र पर होकर जान देने के लिये दौड़पड़ी थी॥

पूर्व्व काल में भारतवर्ष शतखण्डों में शतराष्ट्रों में विभक्त था, इसमें अकचकाने का कोई कारण नहीं है। अङ्गरेजों में कैसा ऐक्य है। फ्रासीसियों में कैसी एकता है, जर्मन लोग भी इतने दिनों पर ऐक्य बन्धन में बधे हैं और भारतवासी एक हिन्दू समाज युक्त होकर भी ऐक्य बन्धन नहीं लाभ कर सके हैं इस के लिये भारतवासियों को तिरस्कार करना एक प्रथासी चलपड़ी है। किन्तु इस विषय में भारतवर्ष के साथ यूरोप की किसी एक देश की तुलना ठीक सङ्गत नहीं हो सकती। बल्कि सारे यूरोप के साथ भारत की तुलना हो

सकती है। आयतन और लोक सख्या में भारतवर्ष के साथ यूरोप महादेश ही की तुलना होती है। यूरोप के अन्तर्गत किसी देश की नही। रोम सम्राट सब यूरोप को एक छत्र नही कर सके। दो हज़ार वर्ष की कोशिशों के बाद वह चेष्टा निष्फल समझ कर त्यागदी गयी है। समग्र यूरोप ने खृष्टान धर्म अवलम्बन कर लिया है किन्तु एक नही हुआ। प्रायः समग्र यूरोप रोम की सभ्यता का उत्तराधिकारी है तौभी समग्र यूरोप एक नहीं हुआ। तब भारतवर्ष साप्रकाण्ड देश जो आयतन में यूरोप से बहुत छोटा नही है जिसकी लोक संख्या यूरोप के समान है जिसके भीतर वर्णभेद, जाति-भेद, धर्म्मभेद, भाषाभेद, आचारभेद आदि यूरोप की तुलना से बहुत अधिक हैं, उस प्रकाण्ड देश के सब अधिवासियों ने ऐक्य बन्धन में न आकर एक वृहत् राष्ट्र की सृष्टि नही की तो इसमें अकचाने या विस्मित होने की तो कुछ बात नहीं है। बल्कि यूरोप में जैसे जातिविद्वेष, और धर्म विद्वेष वर्त्तमान है भारतवर्ष में वैसे जातिविद्वेष वा धर्म्मविद्वेष किसी समय नहीं था॥

अङ्गरेज़ और फ़ांसीसी, फ़ांसीसी और जर्म्मन, जर्म्मन और रूस, अङ्गरेज़ और रूस इनमें आपस की प्रतिद्वंद्विता है। इर्षा और विद्वेष की मात्रा अत्यन्त तीव्र है। बङ्गाली और विहारी, विहारी और पञ्जाबी, पञ्जाबी और मरहठे, मरहठे और राजपूत इन में वैसी इर्षा वा विद्वेष कभी किसी समय नहीं था। और यूरोप प्रोटेस्टेण्ड कैथलिक में जैसा विद्वेष, मारकाट, और खूनखराबी हुई है। भारतवर्ष के हिन्दू समाज के विभिन्न सम्प्रदायों में शाक्त का वैष्णवों से वा

वैष्णव जैन से इतनाही नहीं वरञ्च हिन्दू और बौद्ध से भी वैसी खूनखराबी कभी नहीं हुई । जान पड़ता है ऐसा धर्म्मगत विद्वेष भारतवासियों के स्वभाव से बाहर है ॥

यूरोप के साथ भारतवर्ष की तुलना करने से ऐक्य के अभाव के कारण भारत वासियों का तिरस्कार करना उचित नहीं है ।

समग्र यूरोप एक नहीं हुआ उसके अन्तर्गत क्षुद्रखण्डराष्ट्र सब जमात बांधकर एक एक महा प्रतावान नेशन हुए हैं इसी प्रकार समग्र भारतवर्ष एक महाराष्ट्र न होकर भी यदि क्षुद्र क्षुद्रराष्ट्रों में परिणत होता । तौभी भारतवर्ष का पतन अनिवार्य्य हो सकता था ।

इसी कारण हम समझते हैं कि भारत वर्ष में राष्ट्रीय अनैक्य, बहुसंख्यक खण्ड राज्यों का अस्तित्व, पतन का एक प्रधान कारण होने पर भी प्रधानतम कारण नहीं है। भारत वर्ष यूरोप की भांति बहुराष्ट्रों में विभक्त होने पर भी भारतवर्ष की पराधीनता अनिवार्य नहीं होती । भारत वर्ष के पतन का कारण यह कि इसके अन्तर्गत राष्ट्र सब नेशन नहीं हुए राष्ट्र से राष्ट्र का आनैक्य तो थाही किन्तु प्रत्येक राष्ट्र में प्रजाशक्ति राज शक्ति से विछिन्न थी । राज शक्ति को प्रजा शक्ति पर प्रतिष्ठा लाभ नहीं था । प्रजा शक्ति से विछिन्न रहने के कारण राज शक्ति सम्यक् रूप पर सामर्थ्य लाभ नहीं कर सकी । राजा के सुख दुःख में प्रजा ने कभी सम वेदना नही दिखलायी ।

राज के आपद्काल मे प्रजा उदासीन थी। राजा के पीछे खड़ी होकर प्रजा ने राष्ट्र रक्षा के लिये अपनी दुर्ज्जेय शक्ति

का प्रयोग करना नहीं सीखा । राज शक्ति और प्रजाशक्ति जहाँ की ऐसी विछिन्न है वहां नेशन नहीं उपजता । भारतवर्ष में नेशन का अस्तित्व नहीं था इसी कारण भारतवर्ष प्राक्रमण निरोध में सफल नहीं हुआ ॥

नेशन उपजने का बीज भारत क्षेत्र में नहीं रहा ऐसा हमारे कहने का मतलब नहीं है किन्तु उस बीज में अङ्कुरही नहीं निकला ॥

यहां यूरोप की इतिवृत्ति के साथ भारतवर्ष इतिवृत्ति का अनैक्य हैं । दोनों इतिहास अलग अलग दो रास्ते से जाकर दो तरह का फल उत्पादन करते हैं । उनके इस प्रभेद का फल कारण क्या है, यह ऐतिहासिकों के विचार करने का विषय है । प्रसङ्गातर में हम उसकी आलोचना करेंगे ॥

परनिन्दा ।

परनिन्दा पृथ्वी पर इतना प्रचीन और इतना व्यापक है कि उसके विरुद्ध सहसा कुछ ऐसा वैसा मत प्रकाश कर देना ढिठाई कहलाने लगती है। वैसा विवेचना करके इसके प्रति बहुत कुछ सन्मान और श्रद्धा करना कर्त्तव्य है।

साधु लोग इसको जगत से निकाल देने का प्रस्ताव किया करते हैं यदि उनको इसका अधिकार होता तो राम के पीछे पीछे जैसे लक्ष्मण भी वन को गये थे पृथ्वी भी वैसे ही निवासिता के पीछे पीछे निर्वासन ग्रहण करने को उद्यत होजाती॥

हम लोग साधु हों या असाधुही हों जगत के विधान पर हम लोगों को कुछ विश्वास रखना उचित है। जिस पर निन्दा के चरचे से समस्त मानव समाज जकड़ा हुआ है उस को एक दम बुरा कह बैठना अत्यन्त सन्दिग्ध प्रवृत्ति का काम है हम एक छोटे हैं और आज है कल नहीं की नौवत है तब जो महसे बहुत बड़ा और बहुत दिनो से वर्त्तमान है उस पर एक अन्ध विश्वास रखना भी हम दोष नहीं समझते॥

खारा जल सदा पीने के योग नहीं है यह लड़का भी जानता है किन्तु जब देखते हैं कि सातों समुद्रो का जल खारा है, जब वही खारा पानी धरती को घेरे हुए है तब यह बात कहने की किसी तरह की हिम्मत नहीं होती कि समुद्र के जल में नमक नहीं होता तो अच्छा होता। और वास्तव में अच्छा नही होता सम्भव था खारे जल के अभाव

से समस्त पृथ्वी सड़ उठती। इसके लिये विधाता को कुछ और उपाय करना होता॥

वैसे ही परनिन्दा समाज की नस नस में यदि नहीं घुसा रहता तो अवश्यही बड़ा अनर्थ होता। वह नमक की तरह संसार को विकार से बचाता है। संसार में कूड़ा कर्कट बहुत है वह सब सड़कर प्रेमसमुद्र को वीभत्स कर डालते। समुद्र में सर्वत्र विद्वेष और निन्दा का खार मिला है इसी से चलता है। मनुष्यों की बनाई हुई म्यूनिसिपेल्टी की छोटी सी व्यवस्था से संसार का शोधन कार्य्य बहुत कम होता है। पुलीस और आईन यह टोट्का की तरह असर करने वाली दवा का काम करती हैं। पर निन्दा समाज के रक्त में मिल कर उसको स्वास्थ्य के रास्ते पर खींच ले जाती है॥

बिचारवान पाठक यही कहेंगे—"बस! बस! समझ लिया। जो तुम कहना चाहते हो वह पुरानी बात है। अर्थात् निन्दा के भय से समाज की गति ठीक है।

यदि यह पुरातन है तो खुशी की बात है हम यही कह रहे हैं कि जो पुरातन है वह विश्वास के योग्य है॥

वस्तुत: निन्दा न होती तो पृथ्वी में जीवन का गौरव कहाँ? जैसे किसी अच्छे काम में हाथ लगाया, उसकी यदि कोई निन्दा नहीं करे तो उस अच्छे काम का मोल क्या रहा! एक अच्छा लेख लिखा, यदि उसको निन्दा करनेवाला पक्षपात पूर्ण समालोचक कोई नही मिला तो उस लेख के लिये ऐसा मर्म्मान्तक अनादर क्या और हो सकता है? यदि किसी ने जीवन को धर्म्मचर्चा में उत्सर्ग किया और उस में गूढ़-

मन्द अभिप्राय किसी ने नही देखा तो साधुता बड़ी सहज हो जायगी ॥

सब कामों में सब चेष्टाओं में जो जगत भर के लोगों से समान भाव से वाहवा हासिल कर गये हैं वह अवश्यही धोखा दे गये हैं। वह अवश्यही कार्य्य की अपेक्षा लोगों से स्तुतिपाना अधिक पसन्द कर गये हैं। महत्व को पदपद पर निन्दा का कण्टक कुचल कर चलना पड़ता है। उसकी पग पर परीक्षा होती रहती है। उससे जो हार मानता है जो उससे रणभूमि में गिर जाता है वह वीरों की सद्गति नही लाभ करता। पृथ्वी में निन्दा दोषी को संशोधन करने के लिये नहीं है किन्तु महत्व को गौरव देना उसका बड़ा काम है॥

निन्दा वा विरोध सन्ताप दायक नहीं है ऐसा कोई ही कोई कह सकता है जिसका हृदय बड़ा है उस को व्यथा पाने की शक्ति भी बड़ी। जिस को हृदय है वही संसार में काम के लायक काम में हाथ डालता है और कार्य्य के योग्य कार्य्य और आदमी के लायक आदमी देखने से ही निन्दा की धार चौगुनी चोखी हो जाती है। इसी से देखा जाता है कि विधाताने जहाँ अधिकार अधिक दिया है वहीं दुःख और परीक्षा बड़ी कड़ी करदी है। भगवान करे विधिका वही विधान विजयी हो। निन्दा, दुःख और विरोध अच्छे गुणी और योग्य लोगों के ही भाग्य में खूब घटे जो यथार्थ रूप से व्यथा भोगना जानता हो वही व्यथा पावे। अयोग्य क्षुद्र व्यक्ति पर निन्दा की फ़जूल खर्ची न हो॥

सरल हृदय पाठक यहाँ फिर कहेंगे—" मालूम है, निन्दा से उपकार होता है। जो दोष करता है उसको दोष

घोषणा करना अच्छा है किन्तु जो नहीं करता उसकी निन्दा से संसार में भला नहीं हो सकता। मिथ्या वस्तु किसी आवस्था में अच्छी नहीं है।"

लेकिन ऐसा होने से तो निन्दा की टाँग टूट जायगी। प्रमाण लेकर दोषी को दोषी सिद्ध करना तो विचारक का काम हुआ उसका भार कै आदमी ले सकता है? और उतना समय ही किसको है? इसके सिवाय पराये के लिये इतनी बेतरह गरज भी किसी को नहीं है। यदि होती तो वह और को सही नहीं जाती। निन्दक का आघात सहा जाता है क्योंकि उसकी निन्दकता की निन्दा करने का सुख हमारे हाथ में मौजूद है। किन्तु विचारक का कौन सहेगा? असल बात यह कि हम लोग अतिसामान्य प्रमाण से निन्दा करते हैं यदि निन्दा में वह लाघवपन नही होता तो समाज की हड्डी चकनाचूर हो जाती। निन्दा की सम्मति अन्तिम सम्मति नहीं है। निन्दित व्यक्ति चाहे तो उसका प्रतिवाद भी नहीं कर सकता यहाँ तक कि निन्दा वाक्य है सङ्का उड़ा देनाही सुबुद्धि का परिचायक कहलाता है किन्तु यदि निन्दा विचारक की सम्मति होती तो सुबुद्धि को वकील मुख़ारों की शरण लेनी पड़ती। जो जानते हैं वह स्वीकार करेंगे कि वकील मुख़ारों के साथ कारबार हँसी की बात नहीं है। इससे प्रगट हुआ कि संसार में जो कुछ गुरुत्व चाहिये वह निन्दा में मौजूद है और जितना लघुत्व चाहिये उसका भी अभाव नहीं है॥

पहले जो पाठक हमारी बातों से असहिष्णु हो उठे थे वह अवश्य कहेंगे कि तुच्छ अनुमान के आधार पर हो वा

निश्चित प्रमाण पर ही निन्दा यदि करनाही हो तो व्यथा वा मनोवेदना के साथ करना उचित है। निन्दा में सुख पाना उचित नहीं है।"

जो ऐसा कहेंगे वह अवश्यही सहृदय व्यक्ति है। इस कारण उन को विवेचना कर के देखना चाहिये कि निन्दा से निन्दित व्यक्ति व्यथा पाताही है फिर निन्दक भी यदि व्यथानुभव करे तो संसार में दुःख और वेदना का परिमाण कैसा अपरिमित रूप पर बढ़ जायगा! फिर तो निमंत्रण सभा में सन्नाटा रहेगा बन्धु मण्डली विषाद से मुहर्रमी सूरत बना कर बैठेगी। हम समझते हैं गृह के रहने वालों की भी ऐसी दशा नहीं होती।

इस के सिवाय मनुष्य जाति ऐसी भयङ्कर निन्दक नहीं है कि वह सुख भी नही पावे और निन्दा करे। मनुष्य को सिरजन हार ने इतना शौकीन बनाया है कि जब वह अपना पेट भरा कर प्राण रक्षा करने चलता है तब भी क्षुधानिवृत्ति और रुचि तृप्ति का सुख उस को आवश्यक होता है। वही मनुष्य गाड़ी का भाड़ा देकर बन्धु के घर जायगा और परायी निन्दा कर आवेगा और सुख नहीं पावेगा? जो धर्म्म नीति ऐसी असम्भव प्रत्याशा करती है वह पूजनीय है किन्तु पालनीय नही।

आविष्कार मात्र में सुख का अंश है। शिकार कुछ भी सुख का नही होता यदि मृग जहाँ तहां रहता और व्याधा को देख कर भाग नही जाता। मृग को हम लोग किसी आक्रोश के कारण नहीं मारते किन्तु वह बेचारा गहन वन

में रहता और भागने में बड़ा चतुर है। इसी से वह मारा जाता है।

मनुष्य के चरित्र विशेषतः दोष सब झाड़ियों की आड़ में रहा करते हैं और पाँव की आंहट पा करही दौड़ भागना चाहते हैं इसी कारण निन्दा को इतना सुख है। मैं नसनस का हाल जानता हुं मुझ से कुछ छिपा नहीं है निन्दक के मुख से इतना सुनतेही समझा जाता है कि वह आदमी शिकारी जाति का है। आदमी अपना जो अंस दिखाना नहीं चाहता उसे वह रगेद कर पकड़ता है। वह जल की मछली को बंसी फेंक कर पकड़ता है, आकाश के पक्षी को तीर फेंक मारता है। जङ्गल के पशु को जाल डाल कर फांसता है यह उसके वास्ते बड़े सुख का है। जो छिपा है उस को बाहर करना, जो भागता है उस को बांधना इन कामों के लिये आदमी क्या नहीं करता।

दुर्लभता की ओर मनुष्य का बड़ा मोह है। वह मन में समझता है कि जो सुलभ है वह असल वस्तु नहीं है। जो ऊपर है वह आवरण मात्र है। जो छिपा है वही असल है। इसी कारण गुप्त वस्तु का परिचय पाने परही वह और कुछ न विचार प्रकृति वस्तु का परिचय पाया समझ प्रसन्न हो उठता है। मनुष्य यह नहीं समझता कि ऊपर के सत्य से भीतर का सत्य अधिक सत्य नहीं है। यह बात उन को समझाना कठिन है कि सत्य यदि बाहर रहे तो भी सत्य है और जो भीतर है वह यदि सत्य नहीं हो तो वह असत्य है।

महाकाव्य का लक्षण ।

अङ्गरेज़ी एपिक शब्द के अनुवाद में महाकाव्य शब्द का प्रयोग चला आता है। किन्तु एपिक के सब लक्षणों से महाकाव्य के समस्त लक्षण मिलते हैं या नही सो नही कहते। संस्कृत अलङ्कार शास्त्र में हम को कुछ दखल नहीं है लेकिन सुनते हैं कि अलङ्कारिक लोगों ने महाकाव्य के लक्षण ऐसी बारीकी से बाँध रखे हैं कि उसमें महाकवियों को चिन्ता करने का कारण नहीं रहा है। कालिदास, भारवि, माघ प्रभृत्ति कवियों के रचित महाकाव्य इस देश में प्रचलित हैं और यह सब महाकाव्य सम्भवतः अलङ्कार शास्त्र सम्मत महाकाव्य हैं। रामायण और महाभारत इन दो ग्रन्थों को महाकाव्य कहना उचित है या नहीं यह बात झट विचार शील के मन में आ उपस्थित होती है। अङ्गरेज़ी पुस्तकों में रामायण और महाभारत एपिक कहे गये हैं किन्तु हमारे देश के पण्डित उनको महाकाव्य कहने में सदा सम्मत नहीं होते। पहले तो दोनों ग्रन्थों ने अलङ्कार शास्त्र के नियमों का उत्कट रूप से उल्लङ्घन किया है दूसरे महाकाव्य कहने से उनको गौरव हानि की सम्भावना होती है। इतिहास, पुरान धर्म्म शास्त्र इत्यादि आख्या देने से इन दोनों ग्रन्थों की मर्य्यादा रक्षा हो सकती है। किन्तु महाकाव्य कहने से उनका महात्म्य खर्व, करने का दोष होता है॥

वस्तुतः बात ठीक है। कुमार सम्भव और किरातार्जुनीय जिस अर्थ में महाकाव्य हैं उस अर्थ में रामायण और महाभारत महाकाव्य नहीं हैं। कुमार सम्भव और किरातार्जुनीय जिस श्रेणी और जिस पर्य्याय के ग्रन्थ हैं रामायण और

महाभारत कभी उस श्रेणी वा उस पर्य्याय के ग्रन्थ नहीं हैं। एक को महाकाव्य कहने से दूसरे को महाकाव्य कहना उचित नही होता ॥

रामायण और महाभारत के एतिहासकत्व और धर्म्मशास्त्रत्व पर सम्पूर्ण आस्थावान होकर भी हम को स्वीकार करना पड़ेगा कि उनमें काव्य रस भी यथेष्ट वर्त्तमान है। महर्षि वाल्मीकि और कृष्णद्वैपायन का मुख्य उद्देश्य चाहे जो हो उन्होंने जो लिख डाला है उस में प्रचुरता से कवित्व विद्यमान है। चाहे वह कवित्व उनके जाने में रहा हो या नहीं किन्तु कवित्व है इस बात में सन्देह करने का उपाय नहीं है ॥

रामायण और महाभारत में कवित्व का अस्तित्व स्वीकार करने से ही महर्षिद्वय को महाकवि और उनके काव्य को महाकाव्य कहे विना नहीं चलता। क्योंकि भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं है जिससे इन दोनों काव्यों का सङ्गत नाम करण हो सके। अतएव यही हम इन्हीं दोनों को महाकाव्य नाम देकर आगे चलते हैं ॥

मैकाले साहब की बात याद आती इन्होंने कहीं लिखा है कि सभ्यता के साथ कवित्व का अनेक अंश में खाद्य-खादक वा अहि-नकुल का सम्बन्ध है सभ्यता कवित्व को ग्रास कर लेती है अथवा असभ्यता के थाले में कविता की लता बढ़ने नहीं पाती। यह कहना नहीं पड़ेगा कि मेकाले की और उक्तियों की भाति इसको भी लोगों ने हसी ही में उड़ा दी है। लेकिन गत उन्नीसवीं शताब्दी में सभ्यता का आस्फालन रहते भी यूरोप में कवित्व की नोस्फुति देखी गयी है वह मेकाले की बातों के प्रमाण में कम नही है ॥

किन्तु हम समझते हैं मेकाले की उक्ति में कुछ सत्य प्रच्छन्नभाव से विद्यमान है। सभ्यता कवित्व का कपार नहीं चबा डालती किन्तु महाकाव्य को सदेह निगल जाती है। यह भी जान रखना चाहिये कि महाकाव्य शब्द हम अलङ्कारिक सम्मत अर्थ में नहीं व्यवहार करते। न रघुवंश, कुमार सम्भव और पैरीडाइसलष्ट को यहाँ महाकाव्य में डालते हैं। रामायण और महाभारत जिस पर्य्याय के काव्य हैं उसी पर्य्याय उसी श्रेणी के काव्य को हम महाकाव्य कह कर आलोचना लिख रहे हैं। पृथ्वी में कितने ही कवि कितने ही काव्य लिख कर यशस्वी हो गये हैं किन्तु महाकाव्य जब रचा गया था उसके पीछे एक भी और महाकाव्य नहीं रचा गया। पाश्चात्य काव्य साहित्य में होमर के नाम से प्रचलित दो ग्रन्थों के सिवाय और किसी काव्य को रामायण, महाभारत के समान महाकाव्य स्थान नही दिया जा सकता। पश्चात्य देश में सभ्यता वृद्धि के साथ कवित्व की अवनति हुई हैं; ऐसा कोई नहीं कह सकता किन्तु शेक्सपीयर का नाम न भूल कर भी यह बात कही जा सकती है कि यूरोप महादेश में भी एक वार से अधिक होमरका जन्म नहीं हुआ।

पृथ्वी के साहित्येतिहास और सभ्यता के इतिहास में किसी प्राचीनकाल में वाल्मीकि, व्यास और होमर का उद्भव हुआ था उसके पीछे कितने ही हज़ार बरस बीत गये किन्तु महाकाव्य की फिर उत्पत्ति नहीं हुई। क्यों ऐसा हुआ इस का कारण चिन्तन के योग्य है। किन्तु उस कारण के आविष्कार करने की क्षमता हम (इस प्रबन्ध के लेखक) को नही है। तो भी इतना मन में आता है कि मनुष्य समाज की

वर्त्तमान अवस्था ही उस श्रेणी के महाकाव्य उत्पादन के लिये अनुकूल नहीं है ॥

रामायण, महाभारत और होमर के महाकाव्य में हम लोग मनुष्य समाज का जो चित्र अङ्कित देखते हैं उस से उस समाज को आजकल के हिसाब से सभ्य नहीं कहा जा सकता। मनुष्य समाज की वह अवस्था फिर कभी लौट आवेगी या नहीं सो नहीं जानते किन्तु उस काल के समाज में जो सब घटनाएँ प्रति सङ्कुटित होती थी समाज की वर्त्तमान अवस्था में वह नहीं घट सकती। ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती कि अमेरिका के युक्त राज्य के सभापति किसी यूरोपीय राजसभा में आतिथ्य स्वीकार करके अन्त को राजलक्ष्मी को स्टीमर पर लादकर प्रस्थान करते हैं और उसका बदला लेने के वास्ते यूरोप के नरपालगण वाशिङ्गटन रोककर दस वर्ष से बैठे हुए हैं डिलारे बन्दीकृत लार्ड मेथूयेन को गाड़ी के पहिये से बाँधकर दक्षिण अफ्रिका की वन्धु उपत्यका में घुमाता फिरता है यह बात किसी दिन के टेलिग्राम में पढ़ने की किसी ने आशा नहीं की। सीड़न की लड़ाई में विस्मार्क लुई नपोलियन को हस्तगत किये हुए थे किन्तु उस की छाती चीरकर नपोलियन वंश का शोणित आस्वाद ग्रहण करना आवश्य नहीं समझते थे। त्रेतायुग के बीतने पर बहुत दिन पीछे बूरदेश में लङ्काकाण्ड की अपेक्षा भी भयानक काण्ड घटा किन्तु किसी विजयी महावीर को उसके वास्ते पूंछ का व्यवहार नहीं करना पड़ा॥

(शेष मग्रे)

उपन्यास में स्त्री चरित्र।

आजकल वङ्ग साहित्य के पण्डितों में यह बात उठी है कि सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक राय बहादुर बाबू बङ्किमचन्द्र चटर्जी ने अपने उपन्यासों में जो भारतवर्षीय स्त्रियों के चरित्र अङ्कित किये हैं वह ठीक हिन्दू नारी के अनुरूप नहीं हैं॥

नारी चरित्र दो भावों से अच्छी तरह प्रस्फुटित होता है। एक उसका पत्नीत्व और दूसरा मातृत्व। इन्हीं पत्नीत्व मातृत्व दोनों दोनों भावों की उपयुक्तता और नित्य सम्बन्ध नारीचित्र को सम्पूर्णता दान करता है, हमारे देश के नारी चरित्र में इसी मातृ भावही को समधिक प्राधान्य दिया गया था। समाज के कल्याण के लिये यह मातृ भाव जिससे यथायथ परिपुष्टि लाभ करे उसके लिये हमारे देश में कितनेही शिक्षा और आचारक प्रयोजन पड़ा, कितने संयम, कितनी विधि व्यवस्था का परिवर्तन हुआ वह अकथनीय है॥

कल्याणमयी, महिमामयी अन्नपूर्णा मातृ मूर्ति के भीतर प्रेममयी अभिमानिनी पत्नी मूर्त्ति मानो सङ्कुचित हो पड़ी थी। कोई कोई कहते हैं कि वङ्किम बाबू इस महिमामयी मातृ मूर्त्ति नहीं उतार गये। उनके बनाये हुए नारी चरित्र में मानो अधिकांश पाश्चात्य भाव की छाया पड़ी है। उनके बनाये हुए स्त्री चरित्र हमलोग आदर्श हिन्दूनारी के चरित्र रूप में नहीं ग्रहण कर सकते॥

सो ठीक है वङ्किम बाबू का भी वह मतलब नहीं था। हम समझते हैं वङ्कीम चन्द्र ने प्राचीन आर्य्यरमणी की

उज्ज्वल मातृ मूर्त्ति के बगल में वैसेही आदर्श नारीचित्र खींचने की आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने स्त्री चरित्र की दूसरी पीठ दिखा दी है यह पत्नीत्व है। हिन्दू नायका जिसको पत्नीत्व कहते हैं। नारी चरित्र का यह पत्नीत्व प्रेमही से जीता है और प्रेमही में परिणतिलाभ करता है। बायरन ने कहा है—

"Love is women's whole existence" बङ्किमबाबू ने प्रेम के प्रकाश में इस पत्नीत्व का विभिन्न चित्र अङ्कित करके हम लोगों को दिखा दिया है। पारिपार्श्विक घटना, संसार और समाज के घात प्रतिघात से प्रेम की कितनी विभिन्नता प्रकाशित हो सकती है, और उसका अथवा स्त्री चरित्र का कितना परिवर्त्तन कितने विभिन्न परिणाम, कितनी विचित्र गति प्रकृति हो सकती है यह सब उनके उपन्यासों में स्पष्टरूप से प्रस्फुटित उठा है। इसी पत्नीत्व का एक एक भाव विश्लेषण कर के एक एक चरित्र में जितना दिखाया जासकता है उतने में उन्होंने त्रुटि नहीं की है॥

एक बात यह भी साहित्य मर्म्मज्ञों को भूलना नहीं चाहिये कि उन्होंने किसी समाज के आदर्श चरित्र की रचना करने के अभिप्राय से उपन्यास रचना नहीं की स्त्रीचरित्र का पत्नी भाव ही विकसित करके दिखाना उनका मुख्य उद्देश्य था।

(बाक़ी आगे)

पारसीलोगों का भारत में आना।

भारतवर्ष में जैसे भिन्न भिन्न समयों में सूर्य्य वंशी और चन्द्रवंशी राजाओं ने भिन्न भिन्न प्रदेशों में राज किया है पारस्य देश में भी वैसे ही भिन्न भिन्न वंशीय राजाओं ने भिन्न भिन्न समय भिन्न भिन्न प्रदेशों में राज किया है। यीशूखृष्ट के जन्म से कोई हजार वर्ष पहले कयोमर्स नामक एक राजा ने पारस्य देश के आदिमनिवासियों को जीत कर वहां अपना राज बनाया। उन आदिमनिवासियों को पारसी राक्षस, प्रेत आदि नामों से पुकारते थे। उसी कयोमर्स के पौत्र "होषं" ने अपने राज्य में राजनियम प्रचलित किया प्रजागण में कृषिकार्य्य का विस्तार किया। "होषं" को इस तरह नियम प्रवर्त्तक देखकर सब लोग "पेषदाद" वा नियम संस्थापक कहते थे। वह फारस के मनु थे उनके वंशधर लोग पेषदादियन कहे जाते थे। इस पेशदादियन वंश के जमशेद नामक सम्राट ने बड़े बड़े नगर बसाये। फारस की खाड़ी से मोती निकालना उन्होंने जारी किया अनेक राजपथ उन्होंने बनवाये। फार्जिन नामक एक फारस सम्राट ने अतिविस्तृत फारस राज्य को तीनभागों में विभक्त करके सालम, तूर और इराज नामक अपने तीन पुत्रों को दे दिया और आप वानप्रस्थ अवलम्बन करके जीवन विताया। पेषदादियन वंश के अन्तिभारराजानुज की अमलदारी में तूरान देश के राजा अफ्रिसियब ने आक्तस नदी पार होकर अपने हाथ से नुजर को काट डाला और आप उसके सिंहासन पर बैठा। विख्यात पारसी बीर रुस्तम के पिता जालजार अपने वाहुबल से

अक्रिसियव को जीत कर उसे आक्सस नदी के पार भगा दिया किन्तु अन्त को इन तूरानियों ने आकर पेषदाद वंश का लोप कर दिया ॥

पेषदाद वंश का पतन होने पर कायोनियन वंश के कैखुशरो नामक एक आदमी ने अपने वाहुवल से तूरानियों को पारस से दूर किया यूरोपियन लेखकों में यह कैखुशरो कैसर नाम से अधिक प्रसिद्ध है कैखुशरो के वाद गुष्टप अथवा देराइसहेस्टसपिस नामक एक सम्राट ने ग्रीस देश पर चढ़ाई की। गुष्टप के वाद दारा अथवा देरायसकडोमानस के राज में महावीर सिकन्दर वा अलकजण्डर ने पारस सम्राट को पराजित और कयोनियन वंश का लोप साधन किया। कैखुशरो ५५० वर्ष इस्वीसन से पहले पारस का शाहंशाह हुआ ॥

इन कयोनियनों के राज में पारसियों के धर्म की अवस्था कैसी थी उसका ठीक पता नहीं लगता। गुष्टप ने एक इतिहास का संग्रह किया उसमें "अरा—माजद") जिनको आजकल के पारसी "हुरा—मज्द" कहते हैं) देव का नाम उल्लेख है किन्तु जो रस्त्रा का कहीं उल्लेख नहीं है। गुष्ठप के समय में फारस राज्य ने सब विषयों में उत्कर्ष लाभ किया। कायोनियन शब्द के बदले बहुतों ने "आकिमिनियन शब्द व्यवहार किया है। अलेकजण्डर सन् इस्वी ३३१ वर्ष पहले पारस राज को ध्वंश किया उसके वाद २२६ ई० तक फारस अनेक छोटे छोटे भागों में वँटा था। उन भागों में पहले ग्रीक फिर पार्थिनियन गणने राज किया। अन्त को २२६ ई० में अरदेशर वापजन नाम के एक प्राचीन राज वंशीय सेनापति ने क्षुद्र क्षुद्र राज्य जय करके फिर पारसीक साम्राज्य स्थापित किया।

५०० वर्ष तक विदेशी के अधीन रहने से पारसियों की सर्ब ओर से अवगति हुई थी। बावेजन ने फिर उनकी उन्नति की ओर ध्यान दिया। उन्होंने मोवेद" नाम के एक पण्डित की सहायता से उनके धर्म्म ग्रन्थ को पुनरुद्धार किया॥

अरदेशर वंश के पीछे सासनियन वंश का एक राजा फारस के राजासिंहासन पर बैठा था लेकिन उनमें से किसी ने पारसियों की आध्यात्मिक उन्नति की कुछ भी चेष्टा नहीं की। उसी वश के नसरवान नामक राजा ने (५३१ से ५७९६० तक) सिन्धु नदी से भूमध्य सागर तक अपना राज्य बढ़ाया था। सासनियन वंश के सब लोग "अजदीशन" वा "हवा माजदा सेवक" उपाधि ग्रहण करते थे॥

सासनियन वंश का अन्तिमराजा "याज्दइजरात्" था। उसीके समय में मुसलमानों की चढ़ाई से पारसी लोग सदा के वास्ते फारस से भगाये गये। फारस की प्राचीन राज धानी "एकबाटना" से २५ कोस दक्षिण को "नाहावांद" नामक समरभूमि में फारस के सौभाग्य सूर्य्य सदा के लिये अस्त हो गये। अरब के खलीफा उमर ने फारस में घुसकर पहले "कदेशिया" फिर "जावुला" और अन्त को "नाह-वंद" की लड़ाई में पारसियों को लगातार शिकस्त दी उसी अन्तिम युद्ध में फारस के सम्राट ने स्वयम् एक लाख पच्चास हजार सेना लेकर "हमदान" नामक पहाड़ी रास्ते पर रखवारी की थी किन्तु अन्त को धर्मोन्मत्त मुसलमानों के निकट हार कर प्रवित्यदेश से प्रस्थान कर गये॥

कुछ दिनों तक बनों में घूम घूम कर "याज्द इजरात" ने फिर लारस से ऊपर सेना इकट्ठी की और कादेशिया के

मैदान में मुसलमानों का सामना किया । चार दिन की भयानक लड़ाई के बाद पारसी सेनापति रुस्तम मारे गये उनके धर्म की पवित्र वैजयन्ती "दरेफशी कयानी" मुसल-मानों के द्वारा गृहीत और धर्षित हुई । उसके बाद राज एक बार और विधर्मी लोगों के साथ सन्मुख समर में उतरे थे किन्तु लक्षाधिक पारसी मुसलमानों के हाथ से प्राण गँवा कर अमर धाम को पधारे । राजा ने जङ्गलों में भागकर जान बचायी किन्तु कुछ दिनों पीछे रुपये के लोभ से किसी चोर ने उनको सोते में मार डाला । बहुत काल से प्राचीन बहुजन सेवित पारसीगण के धर्म्म का चिरकाल के लिये पतन हुआ । मुसलमानौं के अत्याचार से अधिकांश ने अपना धर्म और प्राण दे डाला । बहुत थोड़े से आदमियों ने प्राचीन "मजद सनियन" धर्म लेकर जङ्गल में भागकर जान बचायी ॥

मुसलमानों की चढ़ाई के बाद प्रायः सौ वर्ष तक मुट्ठी-भर पारसी अपनी जान हथेली पर लिये हुए जङ्गलों में भागकर अपना धर्म बचाये फिरते थे । भविष्य में पारसियों के दिन फिरने का भरोसा न देखकर बहुतेरे धर्म रक्षा के लिये फारस छोड़ देने को तैयार हुए । सौ बरस तक खुरासान में बसकर अन्त को वह लोग फारस खाड़ी के तटपर "अरमस" बन्दर में जा पहुँचे, और वहीं आर्णवपोत (जहाज़) तैयार करके उसी पर भारतवर्ष की ओर रवाना हुए ॥

उचित समय पर वह लोग गुजरात के दक्षिण "द्वीप" या "हिउ" नामक एक छोटे से टापू मे जा पहुँचे । यहाँ उन्नीस वर्ष रहने पर वह लोग और उपयोगी और विस्तृत स्थान की खोज में लगे । एक दिन वह लोग जहाज़ पर चढ़

कर भारत वर्ष की ओर चले आ रहे थे कि अकस्मात आ-काश में बड़े जोर की आंधी उठी और उस के बल से उनकी बड़ी दुर्गति हुई मानो उन पर मनुष्य और देवता दोनों की कोपदृष्टि पड़ी। वह लोग अब आसन्न विपत जानकर अपने इष्ट देवकी चिन्ता करने लगे। वह अग्नि पूजक थे, उन्हों ने अग्नि देव से प्रार्थना करके मन्नत की कि यदि इस दैवी विपत से रिहाई पावैं तो "आतस-बेरहम" वा ब्रह्माग्नि को प्रज्वलित कर रखेंगे। हमारे शास्त्रों में भी अब कहीं कहीं गृह दाह होने से लोग ब्रह्मा की पूजा करते हैं हमारे यहाँ भी ब्रह्मा को अग्नि का अवतार वा अधिष्ठात्री देवता कहा गया है। जो हो बिधाता ने उनकी रक्षा की उनकी प्रार्थना सुन ली। वे लोग निकट वर्ती स्थल में उतर गये।

वह लोग जहाँ उतरे उस देस का नाम "सज्जन" था। वह गुजरात के दक्षिण अंश में था वहाँ यादवराना नामका एक क्षत्रिय राज करता था। वहां के आगत पारसियों की ओर से पुरोहित प्रतिनिधि स्वरूप एक आदमी उस राजा के सामने गये। राजा उनका निडर प्रशान्त सुन्दर उज्वल मुखमंडल देख कर नाम धाम पूछने लगा। "दस्तुर" ने कहा कि यह लोग पारस्य देश बासी हैं। मुसल मानों के अत्याचार से अपना धर्म बचाने के लिये हिन्दुस्तान में हिन्दू राजा की शरण आये हैं।" फिर राजा से थोड़ा सा भूखंड की चाहना करके कहने लगे—"हम लोग और कुछ नहीं चाहते। यही चाहते हैं कि बे रोकटोक के अपने धर्म्मचर्चा में लगे रहें।" राजा ने पूछा "आप लोगों का धर्म या मत कैसा है उसको

जाने विना मैं क्या कह सकता हूँ।" "दस्तूर" राजा से दो चार दिन की मुहलत लेकर अपने डेरे पर गये और साथियों से सलाह करके सोलह श्लोकों में संक्षेपत: अपना धर्म्मानुसार व्याख्या करके राजा के सामने आये। राजा ने उनको आदर से बुलाकर उनकी धर्मप्रणाली और आचार व्यवहार की बातें पूछी। दस्तूर ने जवाब दिया—

१—हम लोग "हरमाज्दा" सूर्य्य और पञ्चभूत के उपासक हैं॥

२—हम लोग स्नान के समय, पूजा करते और आहार के समय मौन रहते हैं॥

३—पूजा के समय फूल और सुगन्धि द्रव्य व्यवहार करते हैं॥

४—गौ की पूजा करते हैं॥

५—"सत्र" नामक पोशाक, "कोष्टी" नामक उपवीत और द्विधाविभाजित शिरस्त्राण व्यवहार करते हैं॥

६—व्याहादि में नाच, गीत और बाजे का व्यवहार करते हैं॥

७—गन्धद्रव्य और अलङ्कार दान से स्त्री गण की सम्वर्द्धना करते हैं॥

८—हम लोग स्वभाव से दाता हैं विशेषतः जलाशय प्रतिष्ठा में जी खोलकर दान करते हैं॥

९—नरनारी दोनो पर सामान सहानुभूति प्रकाश करते हैं॥

१०—गोमूत्र मे स्नात हो कर पवित्र होते हैं॥

११—हम लोग प्रार्थना और आहार करते समय पवित्र रज्जु (उपवीत) व्यवहार करते हैं ॥

१२—चन्दनकाष्ठ वा और सुगन्धित द्रव्य से अग्नि को प्रज्वलित रखते हैं ॥

१३—प्रति दिन पाँच वार वन्दन करते हैं ॥

१४—दाम्पत्य विधान की ओर विशेष दृष्ठि रखते और सतीत्व तथा पातिव्रत्य की श्रद्धा करते हैं ॥

१५—पितृपुरुषों के उद्देश्य से वात्सरिक अन्त्येष्टि क्रिया करते हैं ॥

१६—नव प्रसूत स्त्रियों की शुचिता रक्षा के लिये विशेष दृष्ठि रखते हैं ॥

दस्तूर की बातों पर खुश होकर राजा ने उनकी विशेष सम्वर्द्धना की सज्जन राज्य की सीमा पर बहुतसा स्थान खाली था यादवराना ने वहीं पारसी महाशयों को रहने का आदेश किया । उन्हों ने राजा के दिये हुए इस भूभाग का वन काटकर नगर बसाया सब से पहले अपने मानसिक के अनुसार अग्नि देव अथवा ब्रह्मा के मन्दिर की प्रतिष्ठा की ७२१ ई० में भारतवर्ष में पहले पहल पारसी लोगों का प्रथम अग्नि मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ ॥

ऊपर के सोलह श्लोकों का भावार्थ पढ़ने से जाना जाता है कि बुद्धिमान पारसी बहुत दिनों तक जङ्गल पहाड़ों में घूमते घूमते ऐसे विरक्त होगये थे कि वह लोग चाहे जैसे बने एक आश्रय के लिये बड़े ही व्याकुल हो रहे थे । इसी कारण उन्हों ने चतुराई से राजा को प्रसन्न करने के लिये

अपने उन सोलह श्लोकों में उन्ही बातों को रक्खा जो उनके धर्म्म में पालनीय हैं और हिन्दुओं के यहाँ जिनका कुछ निषेध नहीं है । और वे वेदविद्वेषी, असुर पूजक हैं मृत देह सत्कार में नयी रीति जो वह लोग अवलम्बन करते हैं इन सब बातों को उसमें नहीं कहा । पारसी लोग गौ पूजन करते किन्तु गौमांस भी भक्षण करते थे भारतवर्ष में आकर उन्हों ने हिन्दू राजा की सन्तुष्टि के लिये गो पूजा तो रखी किन्तु गो मांस भक्षण परित्याग नहीं किया । जो थोड़े से पारसी फारह जङ्गलों में अपना धर्म लेकर छिपे थे वह गो मांस भक्षण करते थे और उनके वंशधारी अब भी करते हैं । उन पारसी महाशयों ने राजा के कहने से अपनी स्त्रियों को साडी पहनायी समयानुसार अपनी भाषा भी उन्हों ने छोड़ दी । फारसी से गुजराती मिलाकर जो भाषा बनती है उसी में बातें करने लगे और अन्त को उनकी भाषा बिलकुल गुज-राती हो गयी । "सज्जन" में कुछ दिन रहने पर पारसियों में एक व्याह हुआ । उसमें राजा को निमन्त्रण दिया । राजा नवागत प्रजा को प्रसन्न करने के लिये स्वयं उस विवाहोत्सव में उपस्थित हुए । व्याह के मन्त्रादि सब जन्द भाषा में कहगये थे । राजा उनको कुछ भी समझ नहीं सके इस कारण कृतज्ञ हृदय पारसियों ने विवाह सभाही में मंत्रों का संस्कृत अनुवाद कर दिया । राजा उनके विवाह में स्वयं उपस्थित हुए इस बात की यादगारी में उन्हों ने यह नियम कर दिया कि वैवाहिक मंत्र जिन्द भाषा में कहे जाने के बाद फिर संस्कृत में कहे जाया करें । आज तक अनेक पारसी उस नियम को पालते आते हैं ॥

जयपुर एजेन्सी।

यदि आपको जयपुर की प्रसिद्ध दस्तकारी की चीज़ें मंगानी हों तो उचित है कि और जगह व्यर्थ अधिक व्यय न करके हमारे यहाँ से अच्छी चीजें मंगवा लें। दाम उचित लगेगा, चीज ऐसी मिलेगी कि जिस से जयपुर की कारीगरी का नमूना जाना जाय। सांगानेरी छीटें, पत्थर मकराने और पीतल की मूर्त्तियाँ और बरतन, लकड़ी का काम सोने की मीना कारी प्रभृति सब चीजें उचित मूल्य पर भेजी जा सकती हैं। यदि आप यहां से मंगवायेंगे तो हम विश्वास दिला सकते हैं कि आप धोखा न खायेंगे और सदा के लिए गाहक हो जायेंगे। जयपुर के सुन्दर दृश्यों के सुन्दर चित्र, अजन्य और ऐतिहासिक चित्र और फोटो, हाथ की बनाई बढ़िया तसवीरें, आपकी आज्ञानुसार भेजी जा सकती हैं। एक बेर मंगाइए तो। हमारे यहां के चित्र प्रायः प्रकुलेख भी छापा करते हैं, और सुप्रसिद्ध सचित्र पत्रों ने उनकी अच्छी कदर की है॥

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को।
जौहरी बाजार जयपुर।

समालोचक

मासिक पत्र ।

सम्पादक ।

बाबू गोपालराम गहमरनिवासी ।

वर्ष १ला | जून, जुलाई १९०३ | अङ्क ११, १२

मुद्रित विषय ।

प्रोप्राइटर और प्रकाशक ।

श्रीयुत मि० जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर ।

Chandraprabha Press, Benares City.

नियमावली ।

१—"समालोचक" हर अङ्गरेज़ी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करता है ॥

२—दाम इसका सालाना १॥) है, साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा न =) का टिकट भेजे बिना नमूना पा सकेगा ॥

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी; कोई विज्ञापन बिना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा ॥

४—आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी. किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी जो समालोचना न्याय पूर्ण और पक्षपात शून्य होगी वही छापी जायगी ॥

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा । जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होंगी उसके प्रचार का उचित प्रयत्न किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसा पत्र व पुरस्कार प्रदानादि से भी उत्साहित किया जायगा ॥

६—जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होती है वही छापी जाती है समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझनी चाहिये ॥

७—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाज़ीपुर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र विज्ञापन के मामिले की चिट्ठी पत्री सब समलोचक के मेनेजर मिस्टर जैनवैद्य (जौहरी बाज़ार जयपुर) के पते पर भेजना चाहिये ॥

मैनेजर ।

समालोचना।

(१)

निबन्धमालादर्श।

यह पुस्तक पं० विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूनकर जी के लिखे हुए कई एक मरहठी निबन्धों का अनुवाद है इसके मूल लेखक तो बड़े प्रौढ विद्वान् और स्पष्ट वक्ता थेही, इसके अनुवादक पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री जी भी कृत विद्य और गवेषणा शाली पुरुष हैं इससे उक्त आदर्श हिन्दी भाषा के लेखकों के लिये आदर्श ही है। पुस्तक मुन्शी नवल किशोर (लखनऊ) के छापेखाने की छपी है। क्रय करनेवालों को छापेखाने के मैनेजर के निकट मूल्य और चिट्ठी भेजनी चाहिये। टाइटिल पेज पर मूल्य लिखा हुआ नहीं है किन्तु अनुमानतः ज्ञात होता है कि आठ आना मूल्य होगा क्योंकि उक्त प्रेस की पुस्तकों का मूल्य अधिक नही होता॥

(२)

कुछ लोग मुझ से कहा करते हैं कि आप की आलोचना कड़ी होती है उसमें दोषही की अधिक चर्चा होती है और गुण की थोड़ी। जो झूठी प्रशसा करने में असमर्थ है और अच्छी पुस्तक उसको नहीं मिलती उसे वाक्य वाणों के लक्ष्य बनने में कुछ भी सन्देह नहीं। आज ऐसी पुस्तक की समालोचना का भार हम पर है जिसमें गुण ही गुण दिखाई पड़ता है। इस पुस्तक पेटिका में पाँच निबन्धरत्नों की माला रखी हुई है जो पाठक इन्हें कण्ठ में धारण करेगा वह अवश्य सभ्य समाज में गण्यमान्य समझा जायगा। सब से प्रथमः—

विद्वत्व और काव्यत्व ।

शीर्षक लेख में यह बातें प्रामाणित हुई हैं:—

(१) "कविका प्रधान गुण सहृदयता है। हृदय की शृंगार वीर करुणादि जो वृत्तियाँ हैं वे उसे अत्यन्त सूक्ष्म एवं स्पष्ट रूप से अनुभूत होनी चाहिये। उक्त भिन्न वृत्तियों का विषय इन्द्रिय गोचर होते ही कवि का मन क्षुब्ध हो जाता है और उस क्षुब्धता के आवेग में उसके मुख से जो बातें विनिःसृत होती हैं वही यथार्थ कविता है...हमारे भाषा काव्य के भण्डार में ऐसी सर्वाङ्ग सुन्दर कविता गोस्वामी तुलसीदास जी की ही पायी जाती है"

(२) "यदि हम सम्प्रति काव्य का लक्षण इतना ही समझलें कि रमणीय अर्थ प्रकट करनेवाला शब्द काव्य कहाता है तो बस उक्त लक्षण को समझने से समस्त भ्रम दूर हो सकते हैं अर्थात् तत्क्षण ज्ञात हो जाता है कि काव्य के लिये पद्यरचना, यमक, प्रास, श्लेष सुतरां वर्ण माधुर्य्यादिकों की विशेष रूप से कोई आवश्यकता नही है"

(३) "कवित्व ईश्वर प्रदत्तगुण है। यदि कोई चाहे कि परिश्रम कर उसे प्राप्त कर ले तो नहीं हो सकता साधारण मनुष्य कवि हो सकता है केवल विद्वान ही नहीं। विद्या से सुधार होता है वह कल्पना का बाधक है और कल्पना ही से कविता की सृष्टि है अतएव बड़े २ विद्वान कवि नहीं होते अथवा उनकी कविता अच्छी नही होती। स्वाभाविक कवि कभी २ विद्वान भी हो जाते हैं जैसे कालिदास प्रभृति"।

"(५) काव्य के प्रधान गुण सहृदयता और तज्जन्यवस्तु के प्रकृति सुलभ गुण वर्णन करने की शक्ति ईश्वर प्रदत्त गुण है। साधारण चौपाई में तुलसीदास ने क्या ही अपनी अपूर्व प्रतिभा दिखाई है? जैसेः—

चौपाई।

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिय हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमकि रही घनमाहीं। खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्यापाये॥
बूंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन सन्त सहैं जैसे॥

इत्यादि

बड़े२ कवि यथार्थ अभिमान करते थे जैसे पं० जगन्नाथ। उनकी अभिमानोक्ति से ग्रन्थ की शोभा बढ़ती है।

आज कल के नये समालोचक हर्ष कवि की दर्पोक्ति पर झुलस से गये हैं॥

समालोचना।

शीर्षक द्वितीय निबन्ध में वे बातें कही गयी हैं जिनकी इस समय बड़ी आवश्यकता है। इसके शीर्षस्थान में एक श्लोक भामिनी विलास का लिखा हुआ है जो योग्य समालोचकों को समझा रहा है ऐसा जान पड़ता है वह श्लोक अर्थ सहित यहाँ पर उद्धृत किया जाता है।

श्लोक।

नीर क्षीर विवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतंपालयिष्यति कः॥

भावार्थ । हे हंस जल और दूध को पृथक करने के लिये यदि तूही आलस्य करेगा तो संसार में तेरे उक्त कुलव्रत का पालन और कौन करेगा । सच है समालोचक यदि पुस्तकों के दोष गुण विचार करने में आलस करे तो दूसरा इस काम को कौन करेगा। जो जिस काम के करने में समर्थ होता है वही उसे करता है अथवा उसी के ऊपर उस काम के करने का भार है । इस निबन्ध में बहुत सी समालोचना सम्बन्धी अच्छी बातें वर्णित हैं उन में से कई एक का उल्लेख किया जाता है । जिस से पाठक निबन्ध की उत्तमता समझ जायँ ।

(१) हिन्दी भाषा में पुस्तकों की संख्या बढ़ती जाती है क्योंकि उपयोगी पुस्तकें बहुतही कम प्रकाशित होती हैं । इसके प्रकाशक दोही प्रकार के मनुष्य हैं एक व्यापारी और दूसरा नाम चाहने वाले । व्यापारी जिस पुस्तक की बिक्री अधिक देखता है उसी को छपवाता है उसके प्रयत्न से अच्छी पुस्तकों का प्रकाशित होना असम्भव अथवा दुर्घट है क्योंकि अच्छी पुस्तकों को चाहने वाले कम हैं। दैवात् किसी व्यापारी ने किसी अच्छी पुस्तक को प्रकाशित किया है तो उसने हानिही उठायी है अतएव अच्छी पुस्तकों का दूसरा संस्करण होता ही नही । (यही कारण है कि इस निबन्धमालादर्श का भी दूसरा संस्करण अभी तक नही हुआ) । नाम चाहनेवाले बिना कुछ बिचार किये टूटे फूटे अशुद्ध शब्दों (जैसे पठित समाज, मनोकामना, स्यात् और अतिउत्सव आदि) की वाक्यावली से दो चार पन्ने काले कर पुस्तक प्रकाशित करता है फिर ऐसी पुस्तक कैसे अच्छी हो

सकती है। कभी२ लोग अच्छी पुस्तकों का आदर करना चाहते हैं किन्तु जिस प्रकार इंग्लैण्ड में बड़े आदमी ग्रन्थ कर्त्ताओं की श्रेणी में पाये जाते हैं उस प्रकार हमारे देश में इस समय एक भी नहीं दिखाई पड़ते और वैसे लोग हमारे देश में कब उत्पन्न होंगे इसकी ठीक२ तर्कना भी नहीं हो सकती।

(२) जिस यूरप में इतिहास पदार्थ विद्वान और चिकित्सादि विषयों के ग्रन्थ मानो लड़कों के खेल हैं वहाँ के लोगों के साथ पार्लीमेण्ट में बैठने की इच्छा करनेवाले तथा उनके समान अपने स्वत्व के प्रार्थी लोगों को मन में सोचना चाहिये कि वे साहब लोग इस देश की भाषा की स्थिति जानकर कितना हँसेंगे! भाषा की वर्त्तमान स्थिति और ग्रन्थ प्रणेतृगण का आदर दोनों देश स्थिति के समीचीन सूचक हैं। जो लोग यह निश्चयपूर्वक जानते हैं कि देशभाषा का और उसमें उत्तमोत्तम ग्रन्थों की अधिकतादि का देश हित से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है उन्हें हमारा कथन ठीक जान पड़ेगा।

(३) देश भाषा के सुधार के हेतु ग्रन्थों के यथार्थ परीक्षकों का होना अत्यावश्यक है क्योंकि उनके द्वारा भाषा को बहुत लाभ पहुँचता है। ग्रन्थ परीक्षकों में निम्न लिखित गुणों का रहना बहुत उचित है (१) मूल ग्रन्थ का ज्ञान (२) सत्य प्रीति (३) शान्त स्वभाव (४) सहृदयता।

(४) आजकल के समाचार पत्रों के अग्र भाग में एक लम्बी चौड़ी प्रतिज्ञा लिखी रहती है किन्तु उसके अनुसार

काम होता दिखाई नहीं पड़ता कूड़ाकर्कट लेखों से समाचार पत्रों का कलेवर भरा जाता है। देश भाषा के सुधार करने वाली समालोचना के विषय में यह लिखा रहता है कि अमुक ग्रन्थ हमें प्राप्त हुआ इसके लिये हम तद्रचयिता को धन्यवाद देते हैं। इसकी समालोचना आगामी अंक में प्रकाशित की जायगी। सम्पादक इस प्रकार रसीद लिख कर अपना पिण्ड छुड़ाते हैं अथवा जिल्द क़ागज और छपाई आदि अच्छे हैं यह लिख डालते हैं। कसाई लोग जैसे पशुओं की परीक्षा उनका अंग स्पर्श करके किया करते हैं वही हिसाब ग्रन्थों का भी है।

(५) प्रति वर्ष जो नवीन ग्रन्थ मुद्रित होते हैं। समाचार पत्रों के द्वारा उनकी थोड़ी बहुत चर्चा होती है और इसी (समालोचना) उद्देश से मासिक पत्रों की सृष्टि हुई है क्योंकि इन पत्रों का मुख्यतम विषय भाषा और विद्याही है। जितने नवीन ग्रन्थ प्रस्तुत हों उनमें से लाभ दायक कौन और अपकारक कौन हैं यह सूचित करना मासिक पत्र सम्पादकों का प्रधान कर्तव्य है॥

(६) भले बुरे की विवेचना न कर मन माना अन्न खाने से जैसे शरीर का पोषण होना तो एक ओर रहा पर उलटे उससे नाना प्रकार के रोग लग जाते हैं वैसेही ग्रन्थो का पठन भी है। जो ग्रन्थ यथार्थ में पढ़ने योग्य हों अर्थात् जिनकी भाषा प्रणाली उत्तम, विषय प्रतिपादन प्रौढ एवं सुरस जिनसे मनोरंजन वा उपदेश एकही साथ प्राप्त होते हैं। उन्हें ही पढ़ना चाहिये। पर ऐसा होने के लिये उक्त प्रकार के ग्रन्थ कौन से हैं पहले ही ज्ञात हो जाना कठिन अथवा असम्भव

है . जैसे डाक्टर लोगों की खाद्यवस्तुओं की परीक्षा कर उन्हें खाने देते हैं वैसेही विज्ञ लोगों की आलोचना करलेने पर उनकी सम्मति से किसी ग्रन्थ को पढ़ना चाहिये। नहीं तो हानि की पूरी सम्भावना है।

(७) जिस के ग्रन्थ की आलोचना द्वारा प्रशंसा नहीं हो उसको कुपित होना नहीं चाहिये, क्योंकि जिस में जो गुण नहीं हैं उसमें उन गुणों का निरूपण ही निन्दा जनक है।

इस निबन्ध की एक २ बातें आज कल के हिन्दी रसिकों के जानने योग्य हैं। इस निबन्ध को पढ़कर यदि ग्रन्थकार और समालोचक ग्रन्थ प्रणयन और समालोचना करे तो हिन्दी भाषा थोड़े ही दिनों में बंगला तथा मरहठी के सामने खड़ी होने के योग्य हो जाय और अपने सुपुत्रों को उन्नति के शिखर पर बिठाने में न चूके।

(हर्ष का विषय है कि आरा नागरी प्रचारिणी सभा ने इस कार्य्य के लिये अपनी "प्रणेतृ समालोचक सभा" की पद्धति ठीक करली है)।

अभिमान

शीर्षक तीसरे निबन्ध के प्रारम्भ में निम्न लिखित श्लोक अर्थ सहित लिखा हुआ है।

श्लोक।

अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थाणु यशश्चिचीषतः
अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्।

भावार्थः—नश्वर प्राणपणा के चिरकाल तक रहने वाले यश की प्राप्ति की इच्छा करनेवाला अभिमानी मनुष्य सम्पत्ति

तृणप्राय: समझता है क्योंकि एक तो वह बिजली के समान चञ्चल और वह उसकी वीरता का आनुषङ्गिक फल है ।

इस निवन्ध में निम्नोक्त कई एक आश्चर्य कारक वातों का वर्णन है ।

यह मानस शास्त्र का विषय । अङ्गरेजी भाषा में इसके ऊपर कई एक निवन्धमय ग्रन्थ हैं । मनोविकार विशेषको अभिमान कहते हैं इसकी निन्दा प्राय. सभीधर्म ग्रन्थों में पायी जाती है । कामादि छ:विकारो में इसकी भी निन्दापूर्वक गणना है । महर्षिगण इसे नरक अथवा अनर्थ का मूल कहते है सारॉश यही है कि कोई इसकी प्रशंसा नही करता क्योंकि प्रसिद्ध है कि अभिमानी शीघ्रही विनष्ट होता है ।

(२) यह सुनकर सव को वडा आश्चर्य होगा कि अभिमान सर्वथा त्याज्य और हानिकारक नहीं है क्योंकि वह स्वयं अनर्थ का कारण नही है किन्तु उसकी भलाई वुराई मनुष्य की भलाई वुराई पर निर्भर रहती है इससे यह सिद्ध हुआ कि अभिमान दो प्रकार का है एक चतुर विज्ञ पुरुष में तथा दूसरा मूर्ख और अवोध में पाया जाता है । अर्थात् विज्ञ पुरुष के अभिमान से भलाई और मूर्ख के अभिमान से वुराई होती है ।

(३) मूर्खों में से किसी को वल की किसी को धन किसी को वस्त्राभरण और किसी को अपने सौन्दर्यादिका अभिमान रहता है पर इनसे उनकी अपनी भलाई भी नहीं होती और दूसरोंकी वुराई होजाने की सम्भावना होती है । यथार्थ ज्ञान के अभाव से मनुष्य को अभिमानादि घेर लेता

है क्योंकि भर्तृहरि जी ने लिखा है कि "जब मैं योंही थोड़ा बहुत समझने बूझने लगा था तब हाथी की नाईं मदांध (अभिमान और मदजल सेवक) होगया था और यही समझता था कि मै सर्वज्ञ हू पर जैसे २ मुझे पण्डित लोगों के ससर्ग से थोडा २ ज्ञान प्राप्त होता गया वैसे २ मुझे विश्वास होता गया कि मैं मूर्ख हूं" इसी प्रकार का बल धनादि विषयक भी अभिमान है।

(४) व्यक्तिविशेष में जो यथार्थ गुण है उन के विषय में यथायोग्य गर्वधारण करने से मनुष्य सर्वथा दोष पात्र नहीं होता इसके लिये उदाहरण लीजिये। प्रत्येक मनुष्य जो अपनी आय के अनुसार वस्त्रादि धारण करता है उसे कोई अभिमानी नहीं कहता। महाराज अपने सामर्थ्य के अनुसार ठाट से सब काम करते हैं इससे उन की प्रशंसा ही होती है पण्डितराज जगन्नाथ, मिल्टन, वर्ड्स वर्थ आदि कवियों की गर्वोक्ति पर रसिक जन न्योछावर होजाते हैं सच्ची बात यह है कि जब कोई किसी को व्यर्थ में दबाया चाहे तब उसे उचित है कि उसके अज्ञान एवं दुराग्रह जन्य दूषणों का खण्डन कर अपनी साभिमान रक्षा करे। ऐसा करने से उसकी निज की भलाई होवेहीगी इस के अतिरिक्त जग के और भी बड़े २ उपकार होंगे।

सम्पत्ति का उपभोग

शीर्षक चौथे निबंध में पहले यह बात दिखलायी गयी है कि धन अनर्थ का मूल है इस के लिये मनुष्य अत्यन्त नीच

काम करता है वह धन पाकर विषयासक्त होजाता है और बड़ी भारी आपत्ति में फंसता है अतएव बुद्धिमान् पुरुष अपने को इसके फेर में डालते नहीं इत्यादि । इस वर्णन के अनन्तर सिद्धान्त यह किया गया है कि मनुष्य कैसाही परमतत्ववेत्ता क्यों न हो पर क्षुधादि की शान्ति के उपाय की शरण लिये बिना उसका काम नहीं चलता अथवा दरिद्र पुरुष को सब तुच्छ समझते हैं और धनिक उस पर अत्याचार करते हैं इत्यादि बातों को विचार कर मीमाँसक कहते हैं कि न्याय से धन उपार्जित करना चाहिये और उसे अच्छे काम में व्यय करना चाहिये यही धन की यथार्थ शोभा है इस निबन्ध में मूल लेखक ने विलायती वस्तुओं पर लट्टू होने वालों को खूब फटकारा है ।

वक्तृता ।

शीर्षक पांचवे प्रबन्ध में निम्न लिखित अर्थ का एक श्लोक प्रारम्भ में लिखा हुआ है ।

सभा में उपस्थित हो वक्ता को ऐसी वक्तृता देनी चाहिये कि जिसे सुनकर श्रोताओं के अन्तःकरण प्रसन्न हों कर्ण बचन माधुरी से भर जायँ, नेत्र आश्चर्य्य से विकसित हों तथा क्षुधा, निद्रा, श्रम, दुःख और समय का ज्ञान न रहे । अन्य सब कामों की विस्मृति हो बराबर वक्तृता सुनने के लिये उनका चित्त उत्कण्ठित होता रहे और उसकी समाप्ति पर उन्हें शोक हो ।

(१) वक्तृता का आदि पीठ जो ग्रीस देश है वहाँ उत्पन्न हो इसका प्रसार कैसे हुआ वहां इसने कहाँ लौ उन्नतिलाभ किया और वहां से अन्य देशों में इसका प्रचार कैसे हुआ और इसका उत्कर्ष कहाँ तक हुआ ।

(२) हमारे देश में यह वर्त्तमान रूप से थी वा नहीं आदि का निरूपण।

(३) वक्तृता की उन्नति के लिये सम्प्रति जिन उपायों की शरण ली जाती है उनकी आलोचना।

उक्त विषय की विवेचना कर वक्ता के आवश्यक गुणों का निरूपण, वक्तृता जनित उपयोगितादिक की मीमांसाआदि।

इस निबंध में वक्तृता विषयक बातों का विचार उक्त रीति से चार भागों में बांटकर किया गया है।

इसके सभी निबन्ध अत्युत्तम हैं उन में से एक भी निन्दा भाजन नहीं जान पड़ता।

(३)

(दोष)

इस ग्रन्थ की भाषा कुछ कठिन हो गयी है। कहीं २ व्याकरण की भी अशुद्धियां हैं। पुनरुक्ति बहुत है अथवा ग्रन्थकार की ऐसी शैली है कि गूढ़ बात दुहरा भी जाती है। जया और इला से कुछ अंश उद्धृत करके प्रथम निबन्ध में लिखे गये हैं वे दोषों के भण्डार हैं। इसमें चन्द्रकान्ता की एक स्थान में प्रशंसा है वह भी ठीक नहीं इत्यादि।

(स्वतंत्र सम्मति)

ऐसा ग्रन्थ हिन्दी में एक भी नहीं है। अभी बनने की सम्भावना भी नही है। जो विद्वान हिन्दी रसिक हैं उन्हें सौ काम छोड़कर यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिये। हिन्दी लेखकों के लिये कोई पुरस्कार यदि नियत होता तो अग्निहोत्री जी सब

से अधिक उनके योग्य समझे जाते। हिन्दी बोलनेवाले अपनी भाषा को यदि कुछ समझते तो पचासों संस्करण इस के हुए होते। अन्त में अग्निहोत्री जी और मुंशी नवलकिशोर (लखनऊ) प्रेस के अध्यक्ष अनाथा हिन्दी की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं जिनके प्रयत्न से यह असहाया कुछ न कुछ ससहाया हुई है।

सूचना।

इसमें अस्मच्छब्द का एक वचन आलोचक का और बहुवचन ग्रन्थ कार का है।

उपन्यास में स्त्री चरित्र।

(गताङ्क से आगे)

इसमें भी बाङ्कीमबाबू को दोष दिया जाता यदि यह देखा जाता कि उनके उपन्यासों में स्त्री चरित्र का मूल हम लोगों की जातीयता में निहित नहीं है। यदि बाङ्कीमबाबू के यह सब (उनके उपन्यास लिखित) स्त्री चरित्र केवल विलासिनी, सुरसिका रूपयौवन विकार ग्रस्ता सङ्गिनी गण का चित्रमात्र होता, प्रेम, धर्म, भक्ति और कर्त्तव्यज्ञान में उन्नत सहधर्म्मिणी का चित्र नहीं होता तो भी समझा जाता कि उनके रचे हुए स्त्री चरित्र ने हमलोगों के समाज और धर्म के प्रतिकूल में परिजातिलाभ किया है॥

किन्तु वह बात तो हुई नहीं। बाङ्कीम रचित स्त्री चरित्र तो प्रवृति के पथ से भ्रष्ट होकर निवृत्ति भावही में सुन्दररूप

से प्रस्फुटित हो उठा है। समाज और धर्म्म को लाँघकर वह खूब पिसा और प्रायश्चित के भीषण अनल में एक दम दग्ध हो गया है। यह चित्र बाङ्कीमबाबू के स्त्री चरित्र में बहुत अच्छा फूटा है। इसी से कहना चाहिये कि बाङ्कीम बाबू केवल पतीत्वही को नही अङ्कित कर गये हैं उन्हों ने हिन्दू पत्नीत्व का चित्र उतारा है। जो कुछ दिखाना चाहा था सो उन्होंने सम्पूर्ण दिखा दिया है। इसके पीछे उन पर और कुछ दावा करना निरर्थक है॥

किन्तु उनके रचेहुए स्त्री चरित्र के प्रभाव से यदि हमारे देश का अनिष्ट हो तो यह हमलोगों की फूटी प्रारब्ध का विषभरा फल है। लेडी मेकबेथ Lady Macbeth का चरित्र अङ्कीत करने पर सब अङ्गरेज़ रमणी यदि लेडीमेकबेथ का चरित्रानुकरण करें कार्डेलिया, डेसडिमोना प्रभृति का चरित्र अप्रसन्न हो कर छोड़ दें तो उसके लिये शेक्सपियर को दोषी कहना बुद्धिमान का काम कैसे होगा? लोग रस्सी से गला फांसकर प्राण त्याग करते हैं इस कारण रस्सी का रोज़गार तो नहीं न उठा दिया जायगा?

सब लोग नारी चरित्र की एकही पृष्ठ नहीं आंकते। हमारे देश में मातृमूर्त्ति भी कम नही अङ्कित हुई है। प्राचीन आर्य्य रमणियों की बात छोड़ दें तो भी सम्प्रति रवीन्द्रबाबू की राजारानी में काश्मीर राज्य की भूखी प्रजामण्डली के लिये विगलिता करुणामयी मातृमूर्त्ति और औपन्यासिक श्रीशचन्द्र की "हैमवती" अन्नपूर्णा, फूलकुमारी" और सरला सरीखे स्त्रियों का चरित्र भी बङ्गसाहित्य में विद्यमान है।

इन सब नारी चित्रों के विभिन्न पार्श्व में विभिन्न परिणति देखकर भी यदि पढ़ने वालियों का मन उनकी ओर आकर्षित न हो तो उनको उपन्यास पाठ का ही प्रथम देना भूल है और उन पूज्य उपन्यास लेखकों को दोष देना तो महा भूल है इससे विहतर वात यह कि उपन्यास पढ़ने से पहले उनका ज्ञान समधिक उन्नत, रुचि सम्यक मार्जित और हृदय हिन्दू नारी के आदर्श से गठित होने की ओर दृष्टि रखना आवश्यक है ।

वाङ्कीम वावू के उपन्यासों में

स्त्री चरित्र ।

स्त्री चरित्र का चरम विकाश केवल पतीत्व में नहीं मातृत्व में होता है इसका अनुभव जगत में सब से पहले भारतवर्ष के पूजनीय विशुद्धात्मा ऋषिगण ने ही किया था । इसी कारण मनुजी ने कहा था:—

"प्रजनार्थं महाभागा पूजार्हा गृहदीप्तयः स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु नविशेषोस्ति कश्चन"

"प्रजनार्थ महाभागा" मातृत्व ही के कारण स्त्रियों का गौरव है सन्तान जननी होने के कारणही वह श्रद्धाधिकारिणी हैं ।

इसी परम पवित्र मातृभाव का ब्रह्मचर्य्य भित्तिभूमि और पतिसेवा इसका मध्य विन्दु है। इस मातृत्व को अकलङ्क और अक्षुन्न रखने के लिये ही विवाह होता है और पूर्ण मातृत्वलाभही विवाह का चरमलक्ष्य है ।

यह साहसपूर्व्वक कहा जा सकता है कि इस परिपूर्ण मातृत्व का महिमोज्ज्वल आदर्श भारतवर्ष में जैसे सुस्पष्टभाव से अङ्कित और सर्वत्र सुप्रतिष्ठित हुआ था वैसा और कहीं नहीं हुआ।

वृद्धमुनि बाल्मीकि ने आदर्श जननी मूर्त्ति जनक दुहिता का मातृत्वचित्र ऐसा परिस्फुटित किया है कि उनको "मातु जानकी" के सिवाय और तरह से पुकारने में मन को तृप्ति नहीं होती पति पर उनके अविचलित अनुराग, उनके अनन्त अपरिमेय प्रेम ने उनके परिपूर्ण मातृहृदय की गुहा में प्रच्छन्न रहकर उनके उच्छलित मातृस्नेह को सैकड़ों धाराओं में प्रवाहित कर दिया है। उनका दाम्पत्य प्रेम, लक्ष्मण के प्रति सरल वात्सल्य, हनुमान पर कोमलस्नेह भाव, अत्याचारी परम पापिष्ठ दशानन तक पर मातृ हृदय की अन्तहीन क्षमा में कहाँ डूब गया है सो सहजही नहीं लक्ष्य किया जा सकता। यही भारतवर्षीय रमणी प्रेम का अपूर्व्व चित्र है। इस प्रेम में उच्छृङ्खलता नहीं होती, असंयम नहीं रहता न अभिमान वा आत्महत्या की आशङ्का होती।

प्रेम का सबल और अहित कर आवेग अमङ्गल कर चञ्चलता, स्वार्थ पर विलासिता मातृत्व के प्रशान्त अविचल समुद्र गर्भ में डूबकर अदृश्य हो जाती है। केवल मातृत्वही जागता और पत्नीत्व भीतर छिपा रहता है।

इसी कारण अङ्गरेज़ों की तरह आवेग के मारे सब के सामने स्त्री का चुम्बन वा आलिङ्गन करके प्रेमोच्छ्वास व्यक्त करने में हम लोग सकुचाते हैं और अङ्गरेज़ जहाँ

स्वच्छन्दचित्त से पर स्त्री को अँकवार में लेकर नाचने लगते हैं वहां हमारे यहां पर स्त्री का स्पर्श तक करने को लोग साहस नहीं कर सकते। हिन्दू नारी के मुख से मातृत्व का ऐसा कोमलभाव सुस्पष्टता से फूटता है कि उसके सामने किसी प्रकार चञ्चलता वा उच्छृङ्खलता दिखलाने की किसी को हिम्मत नही होती। कुछ लोग नशे की चीजें खा पीकर बाहर बेशरमी करें भी तो उस अपवित्र उच्छृङ्खलता को घर में लाने का साहस नही करते। यही सुपवित्र मातृभाव आज भी इस अधःपतित समाज में बिलकुल अशिक्षित पाषण्ड से भी आकर्षण करने में समर्थ है। अतिदुराचारी भी सहसा स्त्री गण का शरीर छूने का साहस नही कर सकता झट उनका पथ छोड़कर अलग हो जाता है।

किन्तु मातृत्व के निर्मल, सुपवित्र और महोच्च शिखर से केवल पत्नीत्व के सानुदेश पर उतरने से स्त्रियों की विपुल मर्य्यादा बिलकुल घट जाती है।

यूरोप अब तक मातृत्व के आदर्श की धारणा नहीं कर सका है। रमणी को वह सङ्गिनी से उन्नत नहीं देखता। वहाँ स्त्रियों की मर्य्यादा भी कम है। यूरोप में सुरापान से उन्मत्त अवस्था में स्त्री को लाठी आदि से मारने की घटना अकसर हुआ करती है। यहां वैसी घटना विरलेही होती है। स्त्रियों के सौन्दर्य्य की सराहना करके उनको आप्यायित करना यूरोप के खुश अख़लाक में दाखिल है। और उनके साथ सभ्यता रखकर रसिकता करना भी बड़ाई की वस्तु है।

किन्तु रमणीकी मातृमूर्त्ति जिनकी आँखों के सामने

विद्यमान है वह लोग उसकी शारीरिक सौन्दर्य्य की आलोचना ही करने में कुण्ठित होते हैं। और ऐसी आलोचना से पीछे उनकी हृदय स्थित मातृमूर्त्ति की मोहनच्छवि कलङ्कस्पृष्ट होगी इसी भय से दूरदर्शी शास्त्रकारों ने स्त्रियों के रूप वा हाव भाव के सम्बन्ध में चिन्ता करने से भी निषेध किया है।

किन्तु दुर्भाग्यवश पाश्चात्य प्रभाव के फल से रमणी की यह मङ्गलमयी मातृमूर्त्ति हम लोगों की आंखों से धीरे धीरे अन्तर्हित हो रही है और रमणीगण को भी ऐसी कोई शिक्षा नहीं दी जाती जिससे वह मातृत्व की मर्य्यादा रक्षा कर सकें।

आजकल बङ्गदेश में स्त्रियों की शिक्षा अधिकांश में उपन्यासादि पढ़ने ही पर समाप्त होती है किन्तु वर्त्तमान उपन्यासों में से अधिक ऐसे हैं जो उनको मातृत्व लाभ में सहायता नहीं करते जिसके उपन्यासों का प्रभाव बङ्गनिवासियों के अन्तःपुर में वहुविस्तृत और दृढ़प्रतिष्ठित है वह स्वनाम धन्य वङ्किमबाबू भी इस देश की वदनसीबी के मारे इस विषय में उनकी कुछ सहायता नहीं कर सके।

वङ्कीम वाबू ने बङ्ग भाषा का इतना उपकार इतना समृद्धि साधन किया है कि उनके विरुद्ध कुछ कहने से कृतज्ञता व्यथित होती है। और उनका दोषोद्घाटन न करके जो कुछ उन्हों ने हम (बङ्ग निवासियों) को दिया है उसी के वास्ते उनको अशेष धन्यवाद देने की प्रवृति होती है। किन्तु मनुष्य की आशा असीम और अतर्पणीय है। जो

जितना पाता है वह उतनाही माँगता है। इसी कारण बङ्किमबाबू पर भी अनुयोग करने की इच्छा होती है। यह अनुयोग स्नेह का अनुयोग है। सब लोग इसको मानेंगे या नही, सो नही कह सकते किन्तु हम जहां तक समझते हैं बङ्किमबाबू के उपन्यासों में पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट भाव से विद्यमान है। मन में यह आता है कि उन्हों ने अपने स्त्री चरित्र के आदर्श में कुछ पाश्चात्य भाव डाला है किसी में मातृ-भाव का पूर्ण विकाश नही हुआ।

अशोक का काल निर्णय ।

अशोक के आविर्भाव काल में बड़ा मत भेद है। अशोकावदान और दिव्यावदान के मत से बुद्धनिर्वाण के सौवर्ष पीछे अशोक ने राज्य लाभ किया था। महा वंश के मत से इस अशोक का नाम कालाशोक है। कालाशोक के पीछे प्रथम उनके दस फिर नव पुत्रों ने मिलकर २२ वर्ष राज्य किया इन पिछले नव में से अन्तिम राजा का नाम धननन्द था। चाणक्य ने उनको मार कर चन्द्र गुप्त को उनका सिंहासन दान किया। उसके बाद उनके पुत्र बिन्दुसार ने २८ वर्ष राज्य किया। अशोक उन्हीं के लड़के थे। बुद्धनिर्वाण के पीछे इन अशोक के अभिषेक काल तक २१८ वर्ष बीत गया था *

महावंश के मत से ५४३ वर्ष ईस्वी से पहले बुद्धदेव ने निर्वाण लाभ किया था। अतएव महावंश के अनुसार ३२५ वर्ष ईस्वी से पहले अशोक का राज्याभिषेक हुआ था †

ऐसी दशा में सन ईस्वी से ३५३ वर्ष पहले बिन्दुसार का और ३८१ वर्ष पहले चन्द्र गुप्त का राज्याभिषेक काल लिया जा सकता है किन्तु पाश्चात्य पुराविद गण में से कोई महावंश पर आस्थावान नहीं हैं इसका कारण यही है कि बुद्ध के निर्व्वाण से महावंश में जो अब्द गणित हुए हैं वह सम्पूर्ण

---

* "जिननिब्बाणतो पच्छापुरे तस्साभिसेकतो अट्ठार संवस्सतंद्वयमेव विजानीय।" [महावंश पञ्चम परिच्छेद]

† पहले के बौद्धों में अशोक के अभिषेक काल सम्बन्ध में मत भेद है। ग्रन्थ बढ़ जाने और उसकी ऐतिहासिकता में संदेह होने के भय से वह सब नहीं लिखा गया।

विश्वास जनक नहीं हैं। क्योंकि बुद्ध निर्वाण काल के विषय में नाना देशीय बौद्ध गण में बहुत कुछ मत पार्थक्य है। इसी कारण उन्होंने बुद्धनिर्वाण पर निर्भर न करके चन्द्रगुप्त को लक्ष्य किया है जस्टिनस् प्रभृति किसी किसी पाश्चात्य ऐतिहासिक ने महावीर अलेक्जेण्डर के समसामयिक जिस सैण्ड्रोकोट्स (Sandrocottus) का उल्लेख किया है पाश्चात्य पुराविद्गण को विश्वास है कि वही मौर्य्यराज चन्द्रगुप्त हैं। ३२५ वर्ष सन ईस्वी से पहले अलेक जेण्डर (सिकन्दर) पञ्जाब में आया था। पश्चात्यगण को विश्वास है कि उस समय चन्द्रगुप्त ने आकर उन से भेट किया था। अलेकजेण्डर ने अप्रसन्न होकर उन्है प्राणदण्ड की आज्ञा दी थी। अन्त को भागकर उन्होंने रक्षा पायी थी *इसी प्रकार भारत के आधुनिक अङ्गरेज ऐतिहासिकों ने अलेक्जेण्डर और चन्द्रगुप्त पर भित्ति स्थापन करके भारत के कालकार्मक इतिहास का छप्पर डाला है।

अशोक जब चन्द्रगुप्त के पौत्र ठहरे तब उनके अलक्जण्डर वा चन्द्रगुप्त के बहुत पीछे सिहासन लाभ करने में किसी को कुछ सन्देह नही हो सकता। विशेषत: प्रियदर्शी के अनुशासन काल में अन्तिओक (Antiochus), तूरमय (Plolemdeus) अन्तिकिनि (Antigonus) मक (Mogas) और अलेकसूद्र (Alexsuder) प्रभृति कई दूर देश वासी यवन (Greek) राज का नाम पाया जाता है। इन पांचों के काल सम्बन्ध में अध्यापक लैसन ने लिखा है:—

*विश्वकोष में "चन्द्रगुप्त" का विस्तर विवरण द्रष्टव्य है।

(Antiochus of Syria सीरिया) का अन्तिओक राज्यकाल २६० से २४७ वर्ष सन ईस्वी से पहले

Plotenny Philadelphus तूरमय का राज्यकाल २८५ से २४७ वर्ष ईस्वी से पहले।

Antigonus Gonatus of Macedonia अन्तिकिनी मेसिडोनिया का राज्यकाल २७८ से २४२ वर्ष ईस्वी से पहले।

Magas of cyrene मक राज्यकाल २५८ वर्ष ईस्वी से पहले मरा Alexander of Epirus का राज्य काल २६२ से २५८ वर्ष ईस्वी से पहले।

उक्त पाँचो राजागण २६० से ५५८ वर्ष (ईस्वी से पहले) के भीतर जीवित थे। इस कारण सेनर्ट का कथन है कि प्रियदर्शी के राजत्व काल में तेरहवें वर्ष जो लिपि खोदी गयी थी उसमें जब इन पांचो का नाम पाया जाता है तब सम्भवतः यह लिपि भी २६० से २५८ (सन ईस्वी से पहले) के मध्य में प्रचारित हुई थी। इस तरह २६९ वर्ष इस्वी से पहले उनका अभिषेक हुआ और उस से चार वर्ष पहले २७३वें वर्ष (सन ईस्वी से पहले) राज्यलाभ घटा"। रिसडेविड् बुह्लर, कार्न प्रभृति सब ने इस मत को स्वीकार किया है किन्तु हम लोग क्या इस राय को मानसकते हैं? मौर्य्यराज चन्द्रगुप्त क्या सचमुच अलेकजेण्डर के समय में थे? क्या सचमुच वह उसके समीप इसी तरह अपमानित हुए थे?

हम लोगों ने दिओदोरस प्रभृति पूर्व्वतन पाश्चात्य ऐतिहासिकों के बयान से जाना है कि अलेकजेण्डर जब पञ्जाब में आया था तब चन्द्रमा वा चान्द्रमस (Xandrames)

नाम का एक राजा पूर्ण प्रताप से पूर्व भारत का शासन करता था *

इन प्रमाणों से निसन्देह रूप से यह क्योंकर कहा जाय कि चन्द्रगुप्त महावीर अलेकजेण्डर के पीछे मगध के सिंहासन पर बैठे थे। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में जैसे बुद्ध और अशोक के काल निर्णय में भिन्न भिन्न मत है चन्द्रमा (Xandraines) वा चन्द्रगुप्त (Sandrocottu-) के परिचय काल में भी प्राचीन ग्रीक ऐतिहासिक गण सब एक मत नहीं हैं! ऐसी दशा में अवश्य ही दोनो मत निस्सन्देह भाव से ग्रहण नहीं किये जा सकते। यहाँ उक्त दोनों मत छोड़ कर और किसी उपाय से चन्द्रगुप्त और अशोक का काल निर्णय हो सकता है या नही इसी को विचार करेंगे।

जैन लोगों के मत से महावीर के निर्वाण के पीछे १५५ वर्ष बीतने पर चन्द्रगुप्त राजा हुए † श्वेताम्बर जैन लोगों के मत से विक्रम के ४७० वर्ष पहले और दिगम्बर जैन लोगों के मत से शक राज के ६०५ वर्ष पहले महावीर ने निर्वाण लाभ किया था ‡ बुद्ध निर्वाण में जैसें भिन्न भिन्न मत हैं वीर निर्वाण में वैसे मतान्तर नहीं हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर उभयसम्प्रदायों में मिलान देखाजाता है। अर्थात् दोनों

---

*उनको दो लाख पैदल २० हजार घुड़ सवार दो हजार रथ और चार हजार हाथी थे।

[विश्वकोष "चन्द्रगुप्त शब्द]

† " एवञ्च श्री महावीर मुक्तं वर्ष शते गते। पञ्च पञ्चाश दधिके चन्द्रगुप्तो भवन्नृपः। "

‡ विश्व कोष का 'जैन' शब्द पृष्ठ १६२।

मत से ५२७ वर्ष ईस्वी से पहले वीर निर्वाण घटा था। इस तरह उनके १५५ वर्ष पीछे अर्थात् सन ईस्वी से ३७२ वर्ष पहले चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक काल होता है। प्राचीन शिलालिपि से प्रगट होता है कि चन्द्गुप्त श्रुतकेवली भद्रवाहु के साथ उज्जयिनी धाम में पधारे थे। स्वर्ग बासी कवि हेमचन्द्र ने लिखा है कि वीरमोक्ष से १७० वर्ष पीछे अर्थात् सन ईस्वी से ३५७ वर्ष पहले भद्रवाहु का स्वर्ग लाभ हुआ †

उस समय चन्द्रगुप्त का विद्यमान रहनाही सम्भव है चन्द्रगुप्त और चाणक्य का प्रभाव भारतेतिहास में प्रसिद्ध है। चाणक्य के कौशल से चन्द्रगुप्त ने बिलकुल थोड़े समय तक राजत्व नहीं किया था। महावंश में उनका ३४ वर्ष और उनके पुत्र विन्दुसार का २८ वर्ष राज्य काल लिखा हुआ है। उधर ब्रह्माण्ड पुराण के मत से चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष और विन्दुसार ने २५ वर्ष राज्य किया है। ऐसी दशा में दोनों राजाओं का राजत्व काल सब ५५ वर्ष धरा जा सकता है। अतएव चन्द्रगुप्त के अभिषेक काल से ५५ वर्ष पीछे अर्थात् सन ईस्वी से ३१७ (वर्ष प्रथम) के लगभग किसी समय राजा अशोक का राज्यारम्भ काल धरा जायगा अब जैन मत से देखा जाता है कि जिस समय अलेक्ज़ेण्डर पञ्जाब में आया था उस समय मगध के सिंहासनपर बैठकर विन्दुसार समस्त पूर्व्व भारत का शासन करते थे। सम्भव

† " वीर मोक्षाद् वर्ष शते सप्तत्यग्रे गते सति। भद्रवाहु रपि स्वामी ययौ स्वर्ग समाधिना " परि शिष्टपर्व्व १०। ११।

है कि वही ग्रीक लोगों के निकट चन्द्रमा वा चान्द्रमस (Xandrames) नाम से परिचित हुए हों। दिओ दोरस सिल्यूकस ने लिखा है " अलेक्जेण्डर ने फिज़ियस के मुंह से सुना था कि सिन्ध नदी के उस पार वारह दिन का रास्ता ते करने पर गङ्गा के किनारे पहुँचा जा सकता है उसी के वाद चन्द्रमा (Xandrames) का राज्य है उनको लाखों सेना है सुनकर अलेक्जेण्डर ने पहले विश्वास नहीं किया फिर पुरूराज (Porus) ने उनका सन्देह भञ्जन किया पुरूराज ने यह भी कहा कि गाङ्ग्य प्रदेश का वह राजा महानीच वशोद्भव नाई का पुत्र है। वह नाई वड़ा भला आदमी था। रानी उसके रूप पर मोहित होगयी उसी से उसके एक पुत्र जन्मा। उसी दुष्टा ने फिर राजा को मारडाला तव उसका वेटा राजा हुआ उसी का नाम डाइ डोरस सिल्यूकस (Diodorms Siculus) था।

क्वीण्टस् कार्टियास ने भी दिओ दोरस की तरह उक्त-राजा की विपुलसमृद्धि का परिचय देकर अन्त में कहा है कि प्रजागण उस राजा को तुच्छ कहते और अपमानित करते थे।

बीर अलेक्जेण्डर के समकालीन जिन गाङ्ग्य प्रदेशीय राजा का परिचय ऊपर लिख आये हैं, हिन्दू, जैन वा बौद्ध किसी ग्रन्थ में चन्द्रगुप्त वा अशोक के सम्बन्ध में ऐसा कुछ परिचय नही दिया गया है।

उक्त चन्द्रमस राज सम्भवत: चन्द्रगुप्त का वही सिंहासनाधिकारी विन्दुमार है। विन्दुसार की सुख्याति की वात कहीं नही लिखी है। यहां तक कि अवदान ग्रन्थ में भी विन्दुसार

चन्द्रगुप्त की सन्तान कहकर गृहीत नहीं हुआ। इस से भी जान पड़ता है कि कुछ लोग उनको अवैध रूप से उत्पन्न समझते हैं। अशोकावदान से जाना जाता है कि अशोक की माता को एक समय राजान्तःपुर में बहुतेरे नायन कह कर जानते थे * अधिक सम्भव है कि इसी नायन के अपवाद से विन्दुसार को सब लोग अवज्ञा का पात्र समझते थे। पुरुराज से अलेकजेण्डर ने भी वही बात सुनी होगी। किन्तु ग्रीक ऐतिहासिकों के निकट इस घटना का कुछ रूपान्तर हुआ है। वास्तविक क्षौरकर्म्मकारिनी विन्दुसारमहिषी के गर्भ से ही अशोक का जन्म है यह अशोकावदान में ही मिलता है।

प्रसिद्ध बौद्ध शास्त्रविद् रिस डेविड के मत से चन्द्रगुप्त अमित्रघात विन्दुसार या प्रियदर्शी यह सब व्यक्ति विशेष के नाम नहीं, उपाधि मात्र है † यदि ठीक हो तो विन्दुसार का चन्द्रमा वा चन्द्रमस उपाधि होना विचित्र नहीं है। अवदान ग्रन्थ में लिखा है कि तक्षशिला विद्रोहकाल में विन्दुसार ने अशोक को वहीं विसर्जित कर दिया था। अलेकजेण्डर के निकट तक्षशिल राज ने युद्ध में पराजय स्वीकार किया था यह बहुतों को विदित है तक्षशिल राज के पराभव से तक्षशिला प्रदेश में विद्रोह उपस्थित होना असम्भव नहीं था इस समय अशोक ने तक्षशिला को सुशासन में लाने की चेष्टा की थी इस वास्ते उनको अलेकजेण्डर का विरुद्धाचरण करना पड़ा। जष्टिन्स ने लिखा है "सण्ड्रो

* विश्वकोष में "प्रियदर्शी" शब्द देखो।

† Rhys David's Buddhism P. 221

कोतस् ने अलेकजेण्डर से भेंट की थी। अलेकजेण्डर ने उसे प्राणदण्ड की आज्ञा दी थी। अन्त को उन्होंने भागकर अपनी जान बचाई। नाना स्थानों में घूम फिर कर जब खूब थक गये तब एक जगह बैठ रहे। उसी समय वहां एक बड़ा सिंह लाल जीभ निकाले उनके सामने आ पहुंचा। किन्तु उनको सामने पाकर भी पशुराज उनका कुछ अनिष्ट न करके चला गया। उसको देखतेही उक्तवीर के हृदय में बड़ी आशा हुई। उन्होंने साम्राज्यस्थापन के लिये अनेक डाकूओं का दल इकट्ठा किया। और उनकी ही सहायता से ग्रीक सैन्य को परास्त करके सिन्धुनद प्रवाहित प्रदेश पर अधिकार करने की चेष्टा करने लगे * अलेकजेण्डर, यूडिमस और तक्षशिल को पञ्जावशासन का भार दे गये थे। ३२३ वर्ष ईस्वी से पहले अलेकजेण्डर के मरने पर यूडिमस ने स्वाधीन राजा होने की चेष्टा की और अपने सेनापति यूमेनिस के द्वारा पूरूराज को मार डाला † कोई २ कहते हैं कि सण्ड्रो कोतस भी इस खून में शामिल था। ३१७ वर्ष ईस्वी से पहिले यूडिमस सेनापति यूमेनिस की सहायता के लिये तीन हज़ार पैदल, चार हज़ार घुड़सवार और कोई सवा सौ हाथी लेकर गविनी रणक्षेत्र में आ पहुंचा। इधर घात पाकर सैण्ड्रोकोतस ने जातीय स्वाधीनता उद्धार के लिये देशीय सामन्त वर्ग को उत्तेजित करके ग्रीक लोगों को भारत से निकाला और पञ्जाव पर अधिकार कर लिया। अलेकजेण्डर ने भारत सीमान्त प्रदेश स्थित जो जनपद समूह प्रियसेनानी

---

* Justinus XV. 4.

† Diodorus. XIX. 5.

सिल्यूकस को सौंप गया था सैण्ड्रोकोतस ने वह सब जय कर लिया * ष्ट्राबो लिखता है "थोड़े ही दिनों पीछे सिल्यूकस निकेनर फिर ग्रीक राज्य स्थापन करने की आशा से सैण्ड्रोकोतस के साथ युद्ध करने को तैयार हो गये। फिर युद्ध भूमि में सुभीता न समझ कर उनके साथ मित्रता पाश में आवद्ध हुए।" मेगेस्थिनस लिखता है 'सिल्यूकस ने सैण्ड्रोकोतस को अपनी कन्या दी थी'।

पाश्चात्य ग्रीक ऐतिहासिक गण का उक्त विवरण पढ़ने से अशोक ही उक्त घटनाओं का नेता जान पड़ते हैं अशोक के प्रथम वयस की निर्दय प्रकृति, कूटनीति, दल बल संग्रह, तक्षशिला गमन, वहाँ प्रतिपत्ति स्थापन, बड़े भाई को धोखा देकर राज्यग्रहण इत्यादि विषय की आलोचना करने से ग्रीक वर्णित दस्युपति सैण्ड्रोकोतस का ही छवि स्मृति पट पर अङ्कित हो आती है।

हिन्दू बौद्ध और जैन तीनों सम्प्रदाय के ग्रन्थों में चाणक्य को ही चन्द्रगुप्त की राज्य प्राप्ति का मूल कहा गया है। उनका प्रभाव पञ्जाब से वङ्ग पर्य्यन्त सर्वत्र प्रसिद्ध था। सर्व-जन परिचित चाणक्य का नाम तक भी किसी ग्रीक ऐतिहासिक ने उल्लेख नहीं किया है। विशेषतः इस चन्द्रगुप्त के साथ यदि ग्रीक रमणी का व्याह होता और उसकी सभा में ग्रीकदूत अवस्थान करता तो क्या वह ग्रीकदूत कभी चाणक्य का नाम छोड़ जाता? इससे साफ़ जाहिर होता है कि ग्रीक वर्णित सैण्ड्रोकोतस् और चाणक्यपालित चन्द्रगुप्त दोनों

* Justinus. X.V.C. 4.

भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं। और दिओ दोर्स के पूर्वोद्धृत वाक्यों से यह भी समर्थित हुआ है कि अलेकजेण्डर के समय चन्द्रमस (Xamdrames) नाम के एक राजा ने पूर्व भारत मे आधिपत्य विस्तार किया था। उसी समय सेण्ड्रोकोतस नाम का एक जवान पञ्चनद प्रदेश (पञ्जाब) में डाकुओं की सहायता से अपनी भविष्य उन्नति का मार्ग ढूंढ़ता था। वही युवक विन्दुसार का पुत्र अशोक जान पड़ता है।

जष्टिनस् ने लिखा है—दैव वश वह युवक राजा हुए थे। वास्तविक अशोक के राज्य पाने की बात नही थी क्योंकि उनके पिता के मृत्यु काल में बड़े भाई सुसीम विद्यमान थे। डाकू लोग जैसे बेदर्द होकर पराया माल हर लेते हैं अशोक ने भी वैसे ही निर्दय व्यवहार करके भ्रातृहत्या करने पीछे सिंहासन पर अधिकार किया था। अशोक का दूसरा नाम प्रियदर्शी है। किन्तु यह नाम जैसे अधिकांश बौद्ध जैन, वा हिन्दूग्रन्थ में न रहते भी अशोक का नामान्तर मानने में आपत्ति नहीं है वैसे ही ग्रीकवर्णित सेण्ड्रोकोतस् वा चान्द्रगुप्त * वा चन्द्रगुप्त नाम भी उनका एक नामन्तर मान लेने में क्या आपत्ति है? भारतवर्ष के इतिहास में कई चन्द्रगुप्त आये हैं। ग्रीस के इतिहास में भी कई अलेकजेण्डरों का नामोल्लेख है। पितामह का नाम चन्द्रगुप्त और पौत्र का नाम भी चन्द्रगुप्त इसका अधिक हाल गुप्त वंश का इतिहास पढ़ने से मिलता है जब देखा

---

*चन्द्रगुप्त का वंशधर वा उनका सम्बन्धी होने से भी तो चान्द्रगुप्त हो सकता है। चान्द्रगुप्त शब्द का उल्लेख असाधु नहीं है। जैसे "चान्द्रगुप्त रथवरमारोढुमुपचक्रमे।"

(परिशिष्ट पर्व ८।३२२)

जाता है कि बहु संख्यक राज पितामह और उनके पौत्र एकही नाम से पुकारे जाते थे, तब ग्रीक ऐतिहासिकों के निकट प्रियदर्शी चान्द्रगुप्त वा चन्द्रगुप्त नाम से पुकारे जायगे इसमें क्या आश्चर्य है?

पहलेही कह आये हैं मौर्य्य राज चन्द्रगुप्त के साथ किसी यवन (ग्रीक) का सम्बन्ध हुआ था या नही उसका हिन्दू बौद्ध वा जैन किसी ग्रन्थ से प्रमाण नहीं मिलता। ग्रीक वा यवनों के साथ अशोक राज विशेष रूप से संश्लिष्ट था इसका प्रमाण गिरिनार से आविष्कृत शिला लिपि पढने से पाया जाता है।—"मौर्य्यस्य राज्ञियेण वैश्येन पुष्य गुप्तेन कारितम्, अशोकस्य मौर्य्यस्य ते (तत ?) यवन राजेन तुषास्यनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलङ्कृतम्।" * अर्थात् मौर्य्य राज चन्द्रगुप्त के श्यालक वैश्य जातीय पुष्यगुप्त ने यह सरोवर तैयार कराया था। मौर्य्य राज अशोक के प्रसिद्ध यवन राज्य तुषास्य ने उस ह्रद को अलङ्कृत कराया था।

यहाँ मौर्य्य राज चन्द्रगुप्त के श्यालक वैश्य है किन्तु अशोक के साथ यवन राज तुषास्य का क्या सम्बन्ध है सो स्पष्ट उल्लेख न होने पर भी पहला सम्बन्ध देखने से यवन राज को अशोक का श्यालक मानना अनुचित नहीं है। अशोक ने यवन (ग्रीक) गण के साथ मिलकर अपनी उन्नति करना चाहा हो तो आश्चर्य नहीं है।

यह रोम और मिस्रादि दूर देश के राजाओं तक की खबर रखते थे। धर्म्म प्रचार के लिये उन देशों में आदमी

* "विश्व कोष" में गुप्त राज वंश देखो।
Indian Antiquary Vol. VII. P. 260.

भेजे थे। यह सब उनकी अनुशासन लिपि से जाना जाता है पहले कहा जा चुका है कि उन्होंने राजत्वकाल के तेरहवें वर्ष में जो अनुशासन प्रचार किया उसमें अन्ति ओक तुरमय, अन्ति किनि, मक और अलिकसूर इन्हीं पांच यवन (ग्रीक) राज्यों का उल्लेख है। यह पांचो यवन राज सम्राट अशोक के समसामयिक थे। इन पांचो यवन राजाओँ का आविर्भाव काल निर्णीत होने से अशोक के काल निर्णय में कुछ सन्देह नही रहेगा। ग्रीस के प्राचीन इतिहास में इन पांचों का परिचय और काल इस प्रकार दिया गया है:—

अन्तिओक (Antiocus) यह शिल्यूकस के वेटे सिरीय राज और एसिया राज कहे जाते थे। २९१ वर्ष इस्वी से पहले मरे। राज्य काल ३१०-२९१ वर्ष ईस्वी से पहले।

तूरमय— (Ptolemœus Lagus)—पलेमी फिलाडेल्फस के पिता इजिप्ट के राजा की मृत्यु २८४ वर्ष ईस्वी से पहले। राज्यकाल ३२३-२८४- वर्ष ईस्वी से पहले।

अन्तिकिनि—(Antigonus) अलेक्जेण्डर के प्रसिद्ध सेनापति। मालिक के मरने पर कई वर्ष पीछे पम्फइलिया लाइसिया प्रभृति स्थानों के राजा हुए। ३०१ वर्ष ईस्वी से पहले मरे।

मक (Magus) काइरिन (Cyrene) का एक प्रसिद्ध राजा। ५५७ वर्ष ईस्वी से पहले मरे। राज्यकाल ३०७-२५७ वर्ष ईस्वी से पहले।

अलिकसूर (Alexander) एपिरस का प्रसिद्ध राजा। महावीर अलेक्जण्डर का मामा और ओलिम्पिया के सहोदर भ्राता। अलेक्जण्डर के मरने से कुछ दिन पीछे राजा हुए।

अब देखना होगा कि उक्त पांचो राजा किस समय एक साथ जीवित थे। देखा जाता है कि उक्त पांच में अन्तिकिनि ३०१ वर्ष ईस्वी से पहले गत हुए थे। और मक (Mugus) ३०७ वर्ष ईस्वी से पहले गद्दी पर बैठे थे। अतएव ३०७ से ३०१ वर्ष (पहले ईस्वी से) के भीतर उक्त पांचों राजाओं का जीता रहना समझा जाता है। ऐसा होने से इस समय अशोक प्रियदर्शी भी राजत्व करते थे इस में सन्देह नहीं है। पहले लिख आये हैं ३१७ वर्ष ईस्वी से पहले पूडिमस और सिल्यूकस के अधीनस्थ पञ्जाब और सीमान्त वर्ती सब भू-भाग ग्रीक लोगों के हाथ से निकल गये थे। इसी के कुछ समय पीछे अशोक ने पाटलिपुत्र में पिता के सिंहासन पर अधिकार किया। सम्भवतः प्रायः ३१६-३१५ वर्ष ईस्वी से पहले उनको सिंहासन लाभ ३१२-३१५ ई० प्र० अभिषेक और ३०३-३०२ वर्ष ईस्वी से पहले पञ्च यवन सम्वलित उनकी अनुशासन लिपि खोदी गयी थी। *

श्री एन. एन. बोस।

* विश्वकोश में प्रियदर्शी शब्द का विस्तृत विवरण देखो।

भारतवर्षीय ईसफ्स फेवल ।

अर्द्ध सताब्दी पहले स्वर्गवासी पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय ने ईसफ्सफेवल नाम के प्रसिद्ध अङ्गरेज़ी ग्रन्थ के कुछ किस्से वङ्गभाषा में अनुवादित करके कथामाला के नाम से प्रकाशित किये थे। बालकों की शिक्षा के लिये वङ्गभाषा में जो उपयोगी पुस्तक हैं उनमें कथामाला भी एक है। अहमद नगर गवर्नमेण्ट हाई स्कूल के शिक्षक श्रीयुक्त नारायण कृष्ण गाउपोल बी. ए. महाशय ने अङ्गरेज़ी ईसफसफेवल का संस्कृत में अनुवाद करके खूब अर्थोपार्जन किया है। थोड़ेही दिनों में उनके संस्कृत ईसफ़सफेवल के चार पांच संस्करण विके गये हैं। कुछ दिन पहले गिलक्राइष्ट (J. Gilchrist) नामक अङ्गरेज ने ईसफ़सफेवल के कितनेही किस्से हिन्दी, फ़ारसी, अरवी, बॅगला और संस्कृत में अनुवादित करके रोमन अक्षरों में मुद्रित किये थे। अव भारत वर्ष के प्रायः सव प्रदेशों में अङ्गरेजी ईसफ़सफेवल प्रचारित है। यूरोप की प्रत्येक भाषाओं में ईसफ़सफेवल लिखा गया है। अर्थात् पृथ्वी पर ऐसा कोई सभ्यजनपद नहीं है जहाँ इस ग्रन्थ का प्रचार नही देखा जाता हो।

लेकिन आज कल का यह ईसफ़सफेवल यूसुफ का वनाया नहीं है। ईसफ़ (यूसुफ़) नाम का एक नीतिविद् पण्डित सन ईस्वी से पूर्व छठी शताब्दी में ग्रीस देश में विद्यमान था इस में कुछ सन्देह नहीं है। प्लेटो (Plato) ने लिखा है कि सक्रेटिस (Socratis) ने क़ैद होने पर ईसफ के किस्सों को पद्य में अनुवाद करके ही अपना दिन बिताया था।

आरिस्टोफेनिस (Aristophanes) ने ईसफ़ के किस्सों का बार बार उल्लेख किया है। एरिस्टोटल (Aristotle) ने ईसफ़ का एक किस्सा एक तरह से उद्धृत ही कर लिया है। लुसियन (Lucian) ने उसी किस्से को और भाव से उद्धृत किया है। इन प्रमाणों के देखने से जान पड़ता है कि ईसफ़ ने बहुतेरे किस्से रचे थे। लेकिन उनको उन्होंने लिखा नहीं था और बहुत दिन बीतने पर उनके रचे हुए किस्से लोगों की याद से बीत गये हैं। केवल ईसफ़ नाम मात्र अवशिष्ट रहा है।

यूरोपीय भाषा में ईसफ़सफेबल कहाँ से आया इसका खोज करके इङ्गलैण्ड देशीय अध्यापक रीज़डेविड्स (Rhys Davids) ने निर्धारित किया है कि वह तुर्किस्तान से लिया गया था। सन ईस्वी की चौदहवीं सदी के शुरू में कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) नगर के प्लानुडिज (Planudes) नामक एक कृतविद्य धर्म्मयाजक ने कुछ किस्से संग्रह करके एक पुस्तक तैय्यार की। उसने उसका नाम ईस-फ़सफेबल रखा। प्लानुडिज़ ने सुना था कि ग्रीस में प्राचीन काल से ईसफ़ नामके एक नीतिविद् पण्डित का जन्म हुआ था। उनका नाम चिरस्मरणीय करने के अभिप्राय से उन्होंने अपने ग्रन्थ का ईसफ़सफेबल नाम जाहिर किया। पन्द्रहवीं सदी के अन्त में इटली के अन्तर्गत मिलन नगर में पहले पहल उसका मुद्रण कार्य्य सम्पन्न हुआ। उसके पश्चात् क्रमशः यूरोप की सब भाषाओं में प्लानुडिज़ कृत ग्रन्थ अनुवादित और मुद्रित हुआ था। प्लानुडिज ने नाना स्थानों

से किस्से ढूंढ़ खोज कर अपने ग्रन्थ में डाले थे। सन ईस्वी से पूर्व्व प्रथम शताब्दी में बाब्रियस (Babrius) नाम के एक ग्रीक कवि ने पद्य में कुछ किस्से बनाये थे उन से भी कई किस्से प्लानुडिज़ कृत ईसफ़सफेबल में मिलते हैं। फिड्रस (Phaedrus) नाम के लैटिन कवि उद्भावित कुछ किस्से भी रूपान्तरित करके प्लानुडिज़ ने लिये थे। और बाक़ी किस्से प्लानुडिज़ ने भारतवर्ष से पाये। यहां तक कि पाश्चात्य पण्डितों ने बड़ी गवेषणा पर यह अवधारण किया है कि ग्रीक कवि बाबियस और लैटिन कवि फिड्रस दोनों ही ने भारतवर्षीय गल्पों को ग्रीक और लैटिन पद्यों में अनुवादित करके अपने अपने ग्रन्थ विरचित किये थे।

भारतवर्षीय गल्प (किस्से) भिन्न भिन्न समय यूरोप में पहुंचाये गये जैसेः—

१—अलेकजेण्डर (बड़े सिकन्दर) के भारत में आने से पहले कई जरिए से कितनेही किस्से यूरोप में पहुंचे और वह सब ईसफ़सफेबल के नाम से प्रचारित हुए।

२—जब अलेक्जेण्डर ने भारत पर चढ़ाई की तब (सन ईस्वी से पहले) चौथी सदी में अनेक किस्से भारत वर्ष से ग्रीस को पहुंचाये गये बेब्रियस और फिड्रस आदि कवियों ने उन किस्सों को ग्रीक और लाटिन आदि भाषाओं में अनुवादित किये।

३—बीच में कुछ किस्से भारतवर्षीय गल्प फारसी अनुवादित हुए। उनका फिर अरबी में अनुवाद हुआ। ज्यूगण ने उन अरबी ग्रन्थों का ग्रीक, हिब्रू लैटिन प्रभृति भाषाओं में प्रचार किया।

४—सन् ईस्वी की आठवीं सदी में सेण्ट जान आफ डामस्कस्, (St. John of Damascus) नाम के किसी पण्डित ने बौद्ध जातक ग्रन्थ के अनुकरण में बार्लेम-जोसफेट (Barlaam and Josaphet) नाम की एक आख्यायिका रची। ग्यारहवीं शताब्दी में वह पुस्तक लैटिन भाषा में अनुवादित हुई। फिर तो उसका सारे यूरोप में प्रचार हो गया।

५—जब अरब वालों ने स्पेनदेश में आधिपत्य लाभ किया तब बहुतेरे गल्प यूरोप में प्रविष्ट हुए। धर्म संग्राम (Crusades) के युग में भी अनेक गल्प देशान्तरों में सञ्चारित हुए।

६—हूण जातीय लोगों ने अनेक भारतीय गल्पों का यूरोप के पूर्व्व प्रान्त में प्रचार किया। जेङ्गिस खाँ के समय (सन् १२१९ ई०) में अनेक हूणों ने यूरोप पर धावा मारा था।

जिन किस्सों के अवलम्ब से ईसफसफेबल की सृष्टि हुई थी उनमें जातक नामक पालिग्रन्थ के किस्से ही अधिक उल्लेख योग्य हैं। यद्यपि पञ्चतंत्र प्रभृति ग्रन्थों के साथ ईसफस् फेबल का बहुत कुछ मिलान है किन्तु वास्तविक वह सब पालिजातक ही से जन्मे थे। वस्तुतः पञ्चतंत्र प्रभृति ग्रन्थ भी जातक ग्रन्थ से उत्पन्न हुए थे।

पञ्चतंत्र पहले त्रयोदश तंत्र में विभक्त था सन ईस्वी की छठी सदी से कुछ पहले पाँच तंत्र अलग करके पञ्चतंत्र की सृष्टि हुई। ५३१—५७९ ई० में खुसरो नौशेरवां के हकीम बर्जुये ने पञ्चतंत्र ग्रन्थ पह्लवी (प्राचीन फारसी) में अनुवादित

किया। ७५० ई० में उस ग्रन्थ का सिरियक (Syriac) भाषा में अनुवाद होकर कलिलग और दमनक (Kalilag and Damnag) नाम हुआ। कर्कटक और दमनक नाम के दो शृगालों का उपाख्यान पञ्चतन्त्र के आदि भाग में वर्णित है। उन्हीं के नामानुसार सिरियक भाषा में अनुवादित ग्रन्थों का नाम कलिलः और डिमन. (Kalilah and Dimnah) हुआ। सिमियन सेथ नामके एक जिउने सन् १०८० ई० में कलिलः और डिमनः ग्रन्थ ग्रीक भाषा में अनुवादित किया। सन् १२५० ई० में अन्य एक जिउने कुछ बदल कर उस ग्रन्थ को हिब्रू भाषा में अनुवादित किया। सन् १२६३-१२७८ ई० में जान आव केपुआ (John of Capua) ने उक्त हिब्रू ग्रन्थ को लैटिन भाषा में अनुवादित किया। आरबिक अनुवाद ग्रन्थ इसी समय स्पेनिश और लैटिन दोनों भाषाओं में रूपान्तरित हुआ। इस दूसरी वार के अनुवादित लैटिन पञ्चतंत्र का नाम " ÆSOP THE OLD" है। आरबिक पञ्चतंत्र के मुखबन्ध में लिखा है कि बड़े अलेक्जेण्डर (Alexander, the Great) भारत अधिकार कर के Dabschelim नामक व्यक्ति को भारतीय ग्रीक साम्राज्य अधीश्वर कर गया। विद्पई (Bidpai) नाम के किसी पण्डित ने उन को नीतिशिक्षा देने के लिये पञ्चतन्त्र ग्रन्थ विरचन किया। पञ्चतंत्र के प्रथम तीन तंत्रों के किस्से कथा सरित् सागर और हितोपदेश दोनों ग्रन्थों में रूपान्तरित भाव से विन्यस्त हैं। पहलेही कह आये हैं मूल पञ्चतंत्र पालि भाषा के जातक ग्रन्थ से सङ्कलित हुआ था।

पञ्चतंत्र, ईसफसफेवल प्रभृति सब ग्रन्थों का मूल प्रस्त्रवण जातकग्रन्थ है वह पालि भाषा में लिखा है उसमें बुद्धदेव के पूर्व्व जन्मों का विषय वर्णित है। गौतम बुद्ध ने निर्वाणलाभ के पहले असंख्य जन्म परिग्रह किया था। किसी जन्म में दान, कभी शील, किसी समय प्रज्ञा, कभी वीर्य्य, कभी शान्ति, कभी मैत्री इत्यादि सद्‌गुणों की पराकाष्ठा प्रकाश की। बुद्धदेव शृगाल, कुत्ते, सिंह, कच्छप, गृध्र, मर्कट इत्यादि योनि में जन्म लेकर भी सद्‌गुणों से विच्युत नहीं हुए। बुद्धदेव ने नानायोनि परिभ्रमण करते समय जिन सब घटनाओं में अपने सद्गुण दिखाये थे वह सब घटनाही जातक के वर्णनीय विषय हैं॥

बौद्धगण कहते हैं कि जातकग्रन्थ बुद्धदेव की जीव दशा में रचा गया था। और सन ईस्वी से ५४३ वर्ष पहले बोधिसद्रुम के समय वह वर्त्तमान था। सिंहल देशीय प्रवाद के अनुसार यह जाना जाता है कि द्वितीय बोधिसद्रुम काल में ४४३ वर्ष ईस्वी से पहले इस ग्रन्थ का प्रचार है। मेजर कनिङ्गहम ने दक्षिण भारत के भरुत् (भड़ौच) नामक स्थान में एक स्तूप आविष्कार किया, जो सन ईस्वी से पहले तीसरी सदी में अशोक की अमलदारी में निर्मित हुआ था उस पर घाताग्र-सैन्धव जातक का गल्प खोदा गया है। खृष्टीय चतुर्थ शताब्दी में लिखित दीपवंश नामक पालिग्रन्थ में जातक का उल्लेख है। सुमङ्गल विलासिनी अंगुत्तर निकाय, सद्धर्म्म पुण्डरीक प्रभृति ग्रन्थों में भी जातक का उल्लेख देखा जाता है॥

जातक ग्रन्थ में गद्य और पद्य दोनों ही विद्यमान हैं। गल्प सब गद्य में लिखे हैं बीचबीच में प्रमाण स्वरूप श्लोक उद्धृत हुए हैं॥

सिंहचर्म्म जातक, कच्छप जातक इत्यादि गल्प ईसफस फेवल का अविकल प्रतिरूप हैं। किसी किसी क़िस्से में कुछ रूपान्तर देखा जाता है। इसका कारण यह कि पाली भाषा के किस्से संस्कृत भाषा में अनुवादित होकर कुछ परिवर्त्तित हुए थे। जिन्हों ने मिश्र, आरबिक, ग्रीक प्रभृति भाषा में इन किस्सों का तरजुमा किया था उन्होंने भी उसमें बहुत कुछ हेरफेर करदिया। काल पाकर पञ्चतंत्र, हितोपदेश प्रभृति संस्कृत ग्रन्थों के साथ मूल पाली जातक का अनेक वैषम्य हो गया है किन्तु अब भी उन दोनों का सौ सादृश्य सुस्पष्ट भाव से दीख पड़ता है। दोनों ग्रन्थों के वर्णनीय विषय प्रायः एकही है अनेक स्थानों में भाषा भी उनकी आपस में मिलती है। उदाहरण स्वरूप जातक ग्रन्थ के गृध्र जातक नामक गल्प से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया ॥

यन्नु गिज्झो योजणसतं कुणपानि अवेक्खति।
कस्माज्जालञ्च पासञ्च आसज्जापि ण बुज्झसीति॥

इसके जोड़ा का श्लोक हितोपदेश के जरद्गव गृध्र के उपाख्यान से लीजिये——

योधिकाद् योजनशतात् पश्यतीहामिषं खगः।
स एव, प्राप्तकालस्तु पाशबन्धं न पश्यति ॥

हितोपदेश।

डेन्मार्क देशीय कोपेनहींगन विश्वविद्यालय के संस्कृत और पाली भाषा के अध्यापक डाक्टर फज़बल पाली जातक रोमन में छपवा रहे हैं बारह खण्ड (XII Volumes) पहले छपे हैं पहला खण्ड अध्यापक रोज़ डेविड्स और दूसरा खण्ड विलियम राउस प्रभृति पण्डित ने अङ्गरेज़ी भाषा में अनुवादित किया है। अध्यापक कावेल कैम्ब्रिज में इस अनुवाद कार्य्य के तत्वाधान में व्रती हुए हैं ॥ S. C. B.

हिन्दी भाषा और उसका साहित्य ।

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी का कथन ।

"सरस्वती" में हिन्दीभाषा विषयक कोई लेख, आज तक, प्रकाशित नहीं हुआ ॥

जान पड़ता है "हिन्द" ही से अङ्गरेजी "इण्डिया" शब्द की उत्पत्ति हुई है ।

यूरोप से पहले पहल पोर्तगीज़लोग आए । उन्हौंने भी कुछ शब्द हिन्दी में प्रविष्टकर दिए । उनके द्वारा प्रयोग किए गए 'केमरा' (Camera) का 'कमरा' हो गया और 'आक्शन' (auction) से 'नीलाम' ।

हिन्दी साहित्य का काल निर्णय करने के विषय में हिन्दी लेखकों में कईबार वाद विवाद हुआ है । इस प्रकार के वाद विवाद में हम कोई विशेष लाभ नहीं देखते । यह एक अत्यन्त गौण विषय है ।

मेरा कथन ।

प्रकाशित हुआ—जनवरी और जून १९०१ और सितम्बर १९०२ की "सरस्वती" देखिये । 'सिन्ध' से "हिन्द" और Indus से India ।

"कैमेरा" और "ओक्शन" दोनों अङ्गरेज़ी हैं, लेटिन से बने हैं । वेब्स्टर की डिक्शनरी देखिये । 'लीलाम' (Leilam) शब्द पोर्तगीज़ से 'नीलाम' हुआ है । मेरे हिन्दी व्याकरण (बिहार-बन्धु प्रेसका छपा हुआ) का पृ० ४८ देखिये । मेरी डायरी के पृष्ठ २१ में पण्डित श्रीधर पाठक की चीठी छपी है । उस में उन्हौंने मुझे लिखा था कि "हमारे निकट काल-निर्णय गौण विषय है । उसमें हम अधिक चित्त नहीं लगाते ।" उसी डायरी के पृष्ठ ३३ में पण्डित केशवराम भट्ट की भी

महावीर प्रसाद द्विवेदी का कथन ।

मुख्य विषय साहित्यकी उन्नति करना है । हिन्दी का साहित्य बड़ी ही दुरवस्था को प्राप्त हो रहा है । उसकी अभिवृद्धि करने की इच्छा से अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखना इस समय अत्यावश्यक है । हिन्दी बोलने वालों का यह परम धर्म्म है । कालनिर्णय के सम्बन्ध में शुष्क विवाद करते बैठना व्यर्थ कालक्षेप करना है ।

("सरस्वती", फेब्रुअरी-मार्च सन् १९०३ ।)

जिस समय व्रजभाषा के रूपमें हिन्दी अपना आधिपत्य जमा रही थी, उसी समय उसकी एक दूसरी शाखा उस से पृथक हो गई । इस शाखा का नाम उर्दू है । उर्दू कोई भिन्न भाषा नहीं है । वह भी हिन्दी है । उस में चाहे कोई जितने फ़ारसी, अरबी और तुर्की के शब्दभर

मेरा कथन ।

चौठी छपी है । भट्टजी लिखते हैं "पाठकजी के मस्तिष्कमें कविताकी ज्योति है, अन्वेषण और अनुसन्धान की खुजलाहट नहीं है । Period स्थिर करने को जो आपने उनको लिखा था उसके उत्तर में कुछ चिड़पिड़ाहट की झलक है।"

इतिहास लिखना और कविता करना दो भिन्न डिपार्टमेन्ट के काम हैं । इतिहास लिखनेवालों के लिये कालनिर्णय बहुत ही आवश्यक विषय है । कवियों के लिये गौण और शुष्क हो सकता है । उसी डायरी के पृष्ठ ३७, ३८ और ३९ में Behar Times नामक पत्र से उद्धृत Literary note बांचिये ।

"In the advanced sheets that have reached me, I find at one place the proposed classification of Hindi literature into different periods. This question is an impor-

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का कथन ।

दे, उसकी क्रियायें हिन्दी ही की बनी रहती हैं, उसकी रचना हिन्दी ही के व्याकरण का अनुसरण करती है ।'

* * *

फ़ारसी और अरबी शब्दों से मिली हुई उर्दू नामधारिणी हिन्दी अभी कल उत्पन्न हुई है । उर्दू नामधारिणी हिन्दी में फ़ारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता होने और देवनागरी अक्षरों को छोड़कर फ़ारसी अक्षरों में उसके लिखे जाने से जो लोग उसे एक भिन्न भाषा समझते हैं, वे बहुत बड़ी भूल करते हैं। वह कदापि भिन्न भाषा नहीं है । वह भी सर्वथा हिन्दी ही है संस्कृत शब्दों की प्रचुरता होने से जैसे हमारी विशुद्ध हिन्दी कोई भिन्न भाषा नहीं हो सकती, वैसे ही फ़ारसी आदिक विदेशी शब्दों की प्रचु-

मेरा कथन ।

tant one; and it is one which should engage the attention of all literary men interested in the development and culture of the vernacular of Upper India. The classification or to speak more logically, the division of the Hindi literature into different periods must be based on a consistent and natural basis. Artificial, arbitrary, and capricious division is always misleading and never correct. There must be nothing of the nature of dogmatism in division and classification. There are two proposals before us. One is tendered by Pandit Sridhar Pathak of Agra, and the other by Badu Ayodhya Prasad of Muzaffarpur. Badu Ayodhya Prasad's idea of division is more natural, more significant and more comprehensive than that of the Pandit of Agra. Babu Ayodhya Prasad has divided Hindi

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का कथन ।

रता होने से उर्दू नामधारिणी हिन्दी भी कोई भिन्न भाषा नहीं हो सकती ।

(सरस्वती, फेब्रुअरी-मार्च १९०३)

पण्डित श्रीधर पाठक के मतानुसार तीन काल-प्राचीन, माध्यमिक और आधुनिक । परन्तु पण्डित श्रीधर पाठक का नाम नहीं ।

पण्डित श्रीधर पाठक का कथन ।

["खड़ी बोली आन्दोलन", पृष्ठ १९ ।]

अङ्गरेज़ी की भांति हिन्दी हमारी समझ में कालानुक्रम से तीन भागों में विभक्त हो सक्ती है ।

(१) प्रथम-प्राचीन । चन्द के समय से मलिक मुहम्मद जाइसी तक अथवा कहिये पृथ्वीराज से हुमायूं तक ।

(२) द्वितीय-मध्यकालीन

मेरा कथन ।

into three natural periods—periods when Hindu, Mahomedan and English sovereigns respectively occupied the throne of India, and commanded the current of language; again he has subdivided each into different sub-periods, and classified each period into different groups.

I call upon my brother of BENARES who leads the Nagri Sabha and edits that well known intelligent and undoubtedly useful magazine, *Saraswati* of Allahabad to initiate this eventful discussion."

मैं अपनी पुस्तक "खड़ी लोली का पद्य" में हिन्दी के पांच स्टाइल लिख चुका हूं । (१) ठेठ हिन्दी, (२) पण्डितजी की हिन्दी, (३) मुंशीजी की हिन्दी, (४) मौलवी साहिब की हिन्दी और (५) यूरेशियन हिन्दी ।

(१) ठेठ हिन्दी वह है

पं० श्रीधर पाठक का कथन	मेरा कथन
वा व्रजभाषा। इसका सूरदास अर्थात् अकबर के समय से आरम्भ है और कविता में यह अभी तक जीवित है यद्यपि हरिश्चन्द्र के साथ इस की समाप्ति कही जासकी है। (३) तृतीय—नवीन वा खड़ी हिन्दी। यह हिन्दी यद्यपि बोलचाल में न्यूनाधिक तब से व्यवहृत है जब से दिल्ली आगरे में उर्दू बोली जाने लगी परन्तु लेख के रूप में लल्लूजी के प्रेमसागर ही में पहले देखने में आई। इस लिये तभी से इसका जन्म समझना चाहिये।	जिसमें न विदेशी शब्द हों और न संस्कृत के कठिन। इसमें तद्भव और देशज शब्द अधिक रहते हैं। (२) पण्डितजी की हिन्दी में संस्कृत के बड़े बड़े और कठिन शब्द रहते हैं, विदेशी शब्द प्रायः नही रहते हैं। (३) मुंशी जी की हिन्दी पंडित जी की और मौलवी साहिब की हिन्दी के बीच की हिन्दी है। (४) मौलवी साहिब की हिन्दी फ़ारसी अरबी (कठिन तत्सम) सञ्ज्ञाओं से भरी रहती है। (५) यूरेशियन हिन्दी में अङ्गरेज़ी के तत्सम संज्ञा शब्द आते हैं। (अपनी डायरी पृष्ठ १८, १९ २० और २१ से।) मुज़फ़्फ़रपुर ३०-४-१९०१। मेरे पूज्यपाद पाठकजी, प्रणाम "खड़ी बोली आन्दोलन" पृष्ठ १९, २० और २१ में हिन्दी

के Period लिखे गये हैं। Pe1iod के मानने में मेरे आपके बीच में भेद पड़ता है। इसलिये मैंने आप से प्रार्थना की कि हिन्दी के Period को settle कर दीजिये। उत्तर में आपने लिखा I think the question of Hindı has already been settled by several w11te1s. Let the first number of youı paper issue, if necessaıy the question can be again dealt with ın futuıe issues. "खड़ी बोली आन्दोलन" के पृष्ठ ३२ की टिप्पनी में एडिटर ने लिखा है "हिन्दी की उत्पत्ति विषय में इस पुस्तक की भूमिका देखिये।" इसकी भूमिका में हिन्दी का इतिहास लिखा जायगा। हिन्दी के Perıods लिखे जायगे। इसलिये हिन्दी के pe11ods का settle हो जाना अत्यावश्यक है।

"खड़ी बोली आन्दोलन"

मेरा कथन।

का अंग कभी न मानते। लल्लू लाल ने ऐसी भूल की है कि लोग अभी तक भ्रम में पड़े हुए हैं। आप का वाक्य "यह हिन्दी यद्यपि बोलचाल में न्यूनाधिक तब से व्यवहृत समझनी चाहिये जब से दिल्ली आगरे में उर्दू बोली जाने लगी परन्तु लेख के रूप में यह लल्लूजी के प्रेमसागर ही में पहले देखने में आती है इस लिये तभी से इसका जन्म समझना चाहिये" यों होना चाहिये "यह हिन्दी बोल-चाल में तब से व्यवहृत है जब से दिल्ली आगरे में मुस-लमानों का राज्य हुआ और इसका नाम उर्दू पड़ा। परन्तु नागरी अक्षरों में लल्लूजी के प्रेमसागर से देखने में आती है। इसलिये आधुनिक हिन्दी का जन्म तभी से समझना चाहिये।

ब्रजभाषा कविता सम्वत्

मेरा कथन।

(३) पण्डित श्रीधर पाठक, पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू हरसहाय लाल की हिन्दी।	अयोध्या प्रसाद के आन्दोलन से सुधरी हुई हिन्दी

आप मेरे माने हुए period को approve करें अथवा difference का reason दें। आपस में मत भेद रहना ठीक नहीं।

अयोध्याप्रसाद।